अंक १५३व १५४

जनवरी-जून २०२१

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

- डॉ. रमाकांत शर्मा
- नीरजा हेमेंद्र
- प्रकाश कांत
- वीणा विज 'उदित'
- डॉ. मनोज मोक्षेंद्र
- शुभदा मिश्र
- नीतू मुकुल
- योगेंद्र शर्मा
- शुभ्रा ओझा
- सतीश सिंह
- शिवानी शर्मा
- काव्या कटारे

आमने-सामने
एम. जौशी हिमानी

सागर-सीपी
डॉ. विद्याभूषण

२० रुपये

anuvi
Innovate the next

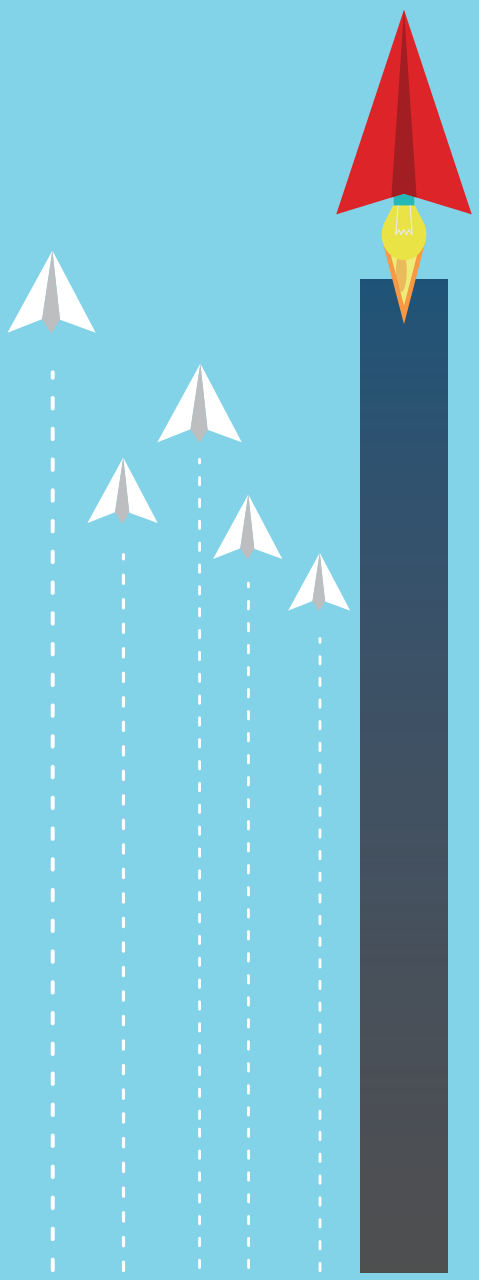

CHOOSE SMART. STAY AHEAD.

GIVE YOUR PAINTS A SMART QUOTIENT WITH EMULSIONS FROM ANUCRYL.

Paint is not just for aesthetics. Now, with Anucryl emulsions, you can make your paint smart with the ability to make it dust resistant, stain-resistant, eco-friendly, healthy and so much more!

Our range of Emulsions include:
- Stain Resistant
- Dust Resistant
- Elastomeric
- Nature Friendly
- Nano-Emulsion
- Multicolor Paint

Give a missed call on 99991 01669

www.anuvi.in @sales@anuvi.in

ANUCRYL®

Make Your Paint Smart

- Pure Acrylic
- Styrene Acrylic
- VAM Acrylic
- Specialty Emulsions
- Acrylic Thickeners
- Wetting and Dispersing Agents

(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

जनवरी-जून २०२१
१५३ व १५४
संयुक्तांक

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,

कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल "**कथाबिंब**" के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो. : ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

कहानियां

।। ७ ।। अंतरिक्ष से – डॉ. रमाकांत शर्मा
।। ११।। गुड बॉय, मैं ख़ुश हूं ! – डॉ. मनोज मोक्षेंद्र
।। १७।। थैंक यू दोस्त ! – शुभ्रा ओझा
।। २१।। सलीब पर सपने – नीरजा हेमेंद्र
।। २९।। पन्ने की अंगूठी – शुभदा मिश्र
।। ३७।। पिताजी – सतीश सिंह
।। ४३।। अपने-अपने विदेह ! – प्रकाश कांत
।। ५१।। मुफ़लिसी पर रहमत – नीतू मुकुल
।। ५७।। पासे अपने हाथ में, दांव न अपने हाथ – शिवानी शर्मा
।। ६४।। मोह के धागे – वीणा विज "उदित"
।। ६७।। बो फिर आयेंगे – योगेंद्र शर्मा
।। ७२।। काली लड़की – काव्या कटारे

लघुकथाएं

।। १०।। स्ट्रीट सिंगर / कृष्ण चंद्र महादेविया
।। २५।। समाज सेवा / कमलेश भारतीय
।। ३६।। फ़र्क / राम मूरत "राही"
।। ५०।। माद्दा / नीना सिन्हा
।। ७१।। विरासत / शुभम वैष्णव
।। ८०।। कोरोना / पारस कुंज

ग़ज़लें / कविताएं

।। १६।। बेरोज़गार लड़के (कविता) / अशोक कुमार
।। १९।। कुर्सियां (कविता) / राजेंद्र निशेश
।। २०।। ग़ज़ल / ईश्वर सिंह बिष्ट "इशोर"
।। २८।। कविताएं / ऋचा सिन्हा
।। ३६।। ग़ज़लें / राजेंद्र निशेश
।। ४९।। ग़ज़ल / सतपाल "स्नेही"
।। ८६।। कविता / हौसला अन्वेशी, गीत / सतपाल "स्नेही"

स्तंभ

।। ३ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"

।। ५ ।। लेटर बॉक्स

।। ७७।। "आमने-सामने" / एम. जोशी हिमानी

।। ८१।। "सागर-सीपी" / डॉ. विद्याभूषण

।। ८७।। "औरतनामा" : वीरांगना झलकारीबाई / डॉ. राजम पिल्लै

।। ९०।। पुस्तक-समीक्षा

● न्यूयॉर्क संपर्क ●

नरेश मित्तल
(M) 845-367-1044

● कैलीफ़ोर्निया संपर्क ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222

●"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी ●

facebook.com/kathabimb

आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

आवरण चित्र : मुख्य स्तूप के भग्नावशेष,सारनाथ, ८ नवंबर २०१९.
फ़ोटो : मंजुश्री

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

"कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०२०"

*"**कथाबिंब**" के प्रकाशन का यह ४२वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०२० "कथाबिंब" के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं "**कथाबिंब**" की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१५०० रु.) :

● **काठ की हांडी** - डॉ. हंसा दीप

: श्रेष्ठ कहानी (१००० रु.) :

● **काल कोठरी और कंदीलें** -शैलेंद्र शर्मा ● **सुमन-सहवास** -डॉ. निरुपमा राय

: उत्तम कहानी (७५० रु.) :

● **फ़ौजियों की पत्नियां हैं हम** - सुधा थपियाल

● **मां की वजह से ज़िंदा हूं** - अर्चना पैन्यूली ● **पिंजड़ा** - डॉ. पूरन सिंह

● **रुकी हुई यात्रा** - निरुपम ● **और नदी बहती रही** - सत्या कीर्ति

कुछ कही, कुछ अनकही

कोरोना का प्रकोप एक भयंकर महामारी के रूप में सामने आया है. साल के शुरू में लग रहा था कि स्थितियां सामान्य हो रही हैं. विश्व के किसी भी देश की अपेक्षा हमारे देश में कोरोना से मरने वालों की दर नगण्य हो गयी थी. लेकिन हम सबकी लापरवाही के कारण दूसरी लहर की ख़बरें सुनाई दे रही हैं. कहा जा रहा है कि कोरोना के नये परिवर्धित रूप ने भी दस्तक दी है. टीकाकरण से उम्मीद की जा रही है कि शीघ्र हमारा देश कोरोना पर पूरी तरह विजय पा लेगा. इस बीच कई पत्रिकाएं बंद हो गयीं. कुछ मात्र ई-वर्ज़न निकाल रही हैं. विवश हो १५३ व १५४ अंक मिलाकर यह संयुक्तांक प्रस्तुत है. इसे पाठक "कथाबिंब" वेबसाइट पर जून के दूसरे सप्ताह तक पढ़ सकेंगे. प्रिंट वर्ज़न भी पाठकों को जल्दी उपलब्ध होगा. पाठकों से पुन: निवेदन है कि यदि स्वयं या अपने संपर्क द्वारा "कथाबिंब" के लिए विज्ञापन दिला पाना संभव हो तो कृपया हमें बतायें. विज्ञापन दरें इस प्रकार हैं : पिछला आवरण पृष्ठ – रु. २०,०००, दूसरा अथवा तीसरा आवरण पृष्ठ – रु. १५,०००, पूरा पृष्ठ (श्वेत-श्याम) – रु. ५,०००. विज्ञापन ही ऑक्सीज़न का कार्य कर सकते हैं.

इस बार *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०२०"* के पुरस्कारों की घोषणा पृष्ठ २ पर प्रकाशित की गयी है. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई. प्रशस्ति-पत्र के साथ पुरस्कार की राशि चैक द्वारा शीघ्र भेजी जायेगी.

●

इस अंक की कहानियों पर एक नज़र : कोरोना की बात न भी करें तो पायेंगे कि वर्तमान में विश्व का कोई भी देश ऐसा नहीं है जहां उथल-पुथल, तख़्ता पलट, मार काट न मची हो. पर क्या धरती ऐसी ही है ? किंतु पहली कहानी के लेखक डॉ. रमाकांत शर्मा ने *"अंतरिक्ष से"* में पृथ्वी का एक अलग ही नज़ारा दिखाया है. बहुधा आदमी जैसा सोचता है स्थितियां सर्वथा भिन्न होती हैं. अगली कहानी *"गुड बॉय, मैं ख़ुश हूं !"* (डॉ. मनोज मोक्षेंद्र) में शादी के कुछ दिनों बाद ही बड़े भाई दुष्यंत को विदेश जाना पड़ता है. वह छोटे भाई कलरव से कह कर जाता है कि उसकी अनुपस्थिति में भाभी की देखभाल करना, वह जल्दी लौटने की कोशिश करेगा. लंबे समय बाद ही दुष्यंत भारत लौट पाता है. परंतु शीघ्र ही उसे मालूम पड़ता है कि पत्नी और भाई अब पति-पत्नी की तरह रहते हैं, उनके दो बच्चे भी हैं. वह सबको गुड बॉय कह कर वापस विदेश लौट जाता है. तीसरी कहानी *"थैंक यू दोस्त !"* की लेखिका शुभा ओझा अमेरिका निवासी हैं. पत्नी की मृत्यु के बाद कहानी के नायक के पास दो ऑप्शन थे, या तो शेष ज़िंदगी अकेले काट ले या बेटे-बहू के साथ अमेरिका चला जाये. वह दूसरा विकल्प चुनता है. थोड़े दिन विदेश में समय काटने के लिए पार्ट टाइम जॉब करता है लेकिन लॉकडॉउन में काम छूट जाता है, फिर वही अकेलापन. ऐसे में देखता है कि पड़ोस की महिला टेरी अकेली रह कर भी ख़ुश है. टेरी से दोस्ती हो जाती है. टेरी से प्रेरणा पाकर वह भारत लौटकर पत्नी सरला के नाम पर बच्चों के लिए संस्था खोलने का निर्णय करता है. अगली कहानी *"सलीब पर सपने"* (नीरजा हेमेंद्र) अपने देश की कटु सच्चाई बयान करती है. गांव के अधिसंख्य युवा शहर में रहने का सपना पालते हैं. संदीप भी इन्हीं में से एक है. माता-पिता गांव में रहते हुए किसी तरह संदीप की पढ़ाई के लिए और मासिक ख़र्च हेतु पैसे भेजते हैं. बार-बार उससे गांव वापस आने के लिए आग्रह करते हैं. पढ़ाई के बाद संदीप की छोटी-सी नौकरी भी लग जाती है. वह क़िराये पर एक छोटा घर लेता है. इस बीच उसकी शादी भी हो जाती है. मां-बाप को लगता है लड़का शहर में रह रहा है, अच्छे इलाक़े में बड़ा-सा मकान होगा. वे कुछ दिन रहने के इरादे से शहर आते हैं, लेकिन हालात देख कर दूसरे दिन ही लौट जाते हैं, संदीप को बताते हैं कि गांव में रह रहे बड़े भाई की हालत बहुत बेहतर है. अगली कहानी *"पन्ने की अंगूठी"* (शुभदा मिश्र) अलग धरातल की कहानी है. नायिका एक कोचिंग क्लास चलाती है. एक मरगिल्ला-सा लड़का क्लास में आने लगता है. लड़के के घर की स्थिति ठीक नहीं है, धीरे-धीरे शिष्य से मैडम का एक आत्मीय रिश्ता बन जाता है, उसे अपना लड़का मानने लगती हैं. प्रोत्साहन पाकर लड़का भी एम. एससी. कर लेता है. अच्छी नौकरी लग जाती है और अपने से बड़ी तलाकशुदा लड़की से शादी कर लेता है. मैडम लड़के का घर आने का इंतज़ार करती हैं कि उसे अपने दिवंगत पति की निशानी, पन्ने की अंगूठी भेंट कर दें. भारतीय स्टेट बैंक में कार्यरत सतीश सिंह कहानी *"पिताजी"* के माध्यम से बिहार की स्वास्थ्य सेवा की वस्तुस्थिति बयान कर रहे हैं. संजीव के पिता बिहार पुलिस में इंस्पेक्टर थे. वे एक मीटिंग से लौट रहे थे कि ज़ीप का एक्सीडेंट हो जाता है और उन्हें गंभीर चोटें आती हैं. पिताजी को ज़िला अस्पताल में भर्ती करना पड़ता है, सर्ज़री में काफ़ी पैसा लगता है. आड़े समय में एक पड़ोसी मदद करता है. ऑपरेशन ठीक हो जाता है लेकिन ब्लीडिंग नहीं रुकती. बताने के बाद भी डॉक्टर इस ओर ध्यान नहीं देता. अंतत: पिताजी की मौत हो जाती है.

अगली कहानी *"अपने-अपने विदेह !"* (प्रकाश कांत) पिता और पुत्री के बीच असंवाद की कहानी है. इकलौती पुत्री शुभा मां-बाप की बचपन से चहेती रही थी. मां के गुज़रने पर घर में अकेलापन पसर जाता है. शुभा मित्र सुमीत से कोर्ट मैरिज़ कर लेती है, पिता कोर्ट में उपस्थित रह कर आशीर्वाद अवश्य देते हैं पर दोनों ओर ठंडापन है. शुभा-सुमीत दूसरे शहर में रहते हैं. एक बार शुभा अकेली कुछ दिनों के लिए पिता जी से मिलने आती है. लेकिन बर्फ पिघल नहीं पाती. अगली कहानी *"मुफ़लिसी पर रहमत"* (नीतू मुकुल) में भाई-बहन को जेएनयू के छात्र ज़बरदस्ती धरने के लिए ले जाते हैं. लेकिन कई दिनों तक दोनों लौटकर नहीं आते. ग़रीब पिता परेशान है. वह रोज़ पुलिस थाने के चक्कर लगाता है कि मेरी लड़की ढूंढ़ दो. पुलिस वाले उसका मज़ाक बनाते हैं. कहते हैं कि लड़का पुलिस थाने में है, उसे घर ले जाओ. अंत में बात खुलती है, पिता कहता है कि लड़की मेरी कमाई का जरिया थी!

अगली कहानी *"पासे अपने हाथ में, दांव न अपने हाथ"* (शिवानी शर्मा) में बाबोसा महिला सीट घोषित होते ही अपनी बहू रश्मि का नाम घोषित कर देते हैं. परंतु रश्मि चुनाव नहीं लड़ना चाहती. वह सास के साथ मिलकर चुपचाप ऐसा खेल खेलती है जिससे बाबोसा का दांव चारों खानों चित्त पड़ जाता है. अगली कहानी *"मोह के धागे"* (वीणा विज "उदित") में शानी के पति अंभुज कुछ दिनों के लिए विदेश गये हैं. खाली समय में वह पुराना एलबम उलट-पुलट के देखने लगती है. सहसा एलबम में से वैभव की तस्वीर गिरती है, उसे सारा कुछ याद आने लगता है. कुछ क्षणों के लिए वह मोह के धागों में उलझ जाती है. अगली कहानी *"बो फिर आयेंगे"* (योगेंद्र शर्मा) इंदिरा गांधी की हत्या के बाद दिल्ली में हुए कत्लेआम और दहशत का बयान है. ज़ख़्म आज तक भी नहीं भरे हैं. अंतिम कहानी *"काली लड़की"* की लेखिका काव्या कटारे मात्र १४ वर्ष की हैं. संभवत: यह उनकी पहली कहानी है. हमारी शुभकामनाएं! खेद है कि पिछले अंक में प्रेस की ग़लती से एक कहानी का अंतिम भाग नहीं जा पाया था. यह "गतांक से आगे.." के रूप में पृष्ठ-७५ पर दिया गया है.

●

अभी हम कोरोना से उभरे नहीं हैं. सबने ऐसी महामारी अपने जीवन में पहली बार देखी है, किस दवाई से संक्रमण समाप्त हो सकता है यह न ही डॉक्टरों, और न वैज्ञानिकों को पता था. यहां तक कि बीमारी के सही लक्षणों से भी हम अनजान थे. एक मात्र उपाय मास्क का उपयोग, शारीरिक दूरी, क्वारंटाइन और लॉकडॉउन. तमाम असुविधाओं एवं दिक्कतों के बाद इस वर्ष के शुरू में महामारी पर हमने काफ़ी कुछ नियंत्रण पा लिया था. तभी चार राज्यों और यूनियन टेरिटरी पुडुचेरी में संपन्न होने वाले चुनाव की तारीख़ें घोषित हो गयीं, बड़ी संख्या में गांवों से लोगों का आना-जाना शुरू हो गया. हरिद्वार में कुंभ के कारण लोगों का जमावड़ा, रमज़ान के महीने में लोगों की भीड़ और चुनावी रैलियों के कारण हम घूम फिर कर वहीं पर आ गये. पश्चिमी बंगाल का चुनाव ममता बनर्जी और भाजपा के लिए प्रतिष्ठा का मुद्दा बन कर सामने आया. दस साल सत्ता में रहने के बाद तृणमूल कॉन्ग्रेस पर इनकम्बेन्सी का असर पड़ सकता था वहीं भाजपा के लिए नयी ज़मीन पर पैर जमाने की कोशिश थी. दोनों तरफ से ध्रुवीकरण का ज़बरदस्त प्रयास किया गया. भाजपा ने अपने दिग्गज नेता चुनाव प्रचार में उतारे. एक दिन में तीन-तीन रैलियां. बड़े पैमाने पर लगातार हिंसा और आगजनी की घटनाएं होने लगीं. चुनाव प्रचार में ममता बनर्जी के बांये पैर में मोच आगयी, इस सुनहरे मौक़े को ममता दीदी ने बख़ूबी भुनाया. दीदी लगातार व्हील चेयर पर विराजमान रहीं. ममता बनर्जी नंदी ग्राम से अपनी सीट हार गयीं किंतु राज्य के परिणाम दीदी के पक्ष में आये. तृणमूल कॉन्ग्रेस को २१५ और भाजपा को ७८ सीटें मिलीं लेकिन कॉन्ग्रेस और वामदल ठनठन गोपाल. शेष राज्यों के परिणाम अपेक्षा के अनुरूप ही रहे. आश्चर्य है इस बार किसी ने भी ईवीएम को दोष नहीं दिया! असम में और पुडुचेरी में भाजपा, तमिल नाडु में डीएमके और केरल में लेफ्ट डेमोक्रेटिव फ्रंट (एलडीएफ). कॉन्ग्रेस बड़ी तेज़ी से सिमटती जा रही है. अनेक वरिष्ठ कॉन्ग्रेसी नेता इस संबंध में अपना मत व्यक्त करते हैं लेकिन नेतृत्व ध्यान नहीं देना चाहता.

मई के शुरू में हमारी लापरवाही के कारण कोरोना ने पुन: पैर फैलाना शुरू किये. अचानक केसेज़ बढ़ने लगे. फिर वही लॉकडॉउन और कर्फ्यू. ऐसा लगने लगा कि जीती हुई बाजी कहीं हम हार न जायें. दुनिया भर में कई देश वैक्सीन ईज़ाद करने के प्रयासों में लगे थे. भारत के भी वैज्ञानिक अहर्निश कोशिश कर रहे थे. वैक्सीन की खोज करने में रिकॉर्ड समय में हम सफल हुए. शीघ्र ही वैक्सीन का उत्पादन देश की आवश्यकता से अधिक होने लगा तो सरकार ने सहायता के रूप में ६० से कुछ अधिक देशों को वैक्सीन भेजी. इसमें "सार्क" के देश भी शामिल थे. इधर अपने देश को कोरोना की दूसरी लहर ने चपेट में ले लिया. मरीज़ों की संख्या इस क़दर बढ़ जायेगी किसी को अनुमान नहीं था. अस्पतालों में मरीज़ों के बिस्तर कम पड़ने लगे. पूरे देश के अस्पतालों में ऑक्सीजन के लिए त्राहि-त्राहि मच गयी. वेंटीलेटर कम पड़ने लगे. स्थिति इतनी भयंकर हो जायेगी इसकी कल्पना किसी को न थी. पूरा सरकारी तंत्र फौरन हरकत में आया. लेकिन मीडिया और विपक्ष ने यह कहना शुरू किया कि पहले से इंतज़ाम क्यों नहीं किये गये. सेना ने रातों रात दिल्ली, मुंबई में जहां जगह मिली आवश्यक उपकरणों सहित बेड स्थापित किये. रेल्वे द्वारा, सड़कों के माध्यम से जहां-जहां से संभव हो सकता था ऑक्सीजन मुहैय्या करायी, कई देशों ने वायुयान द्वारा ऑक्सीजन के टैंकर भेजे. दिल्ली में कई संस्थाओं ने ऑक्सीज़न लंगर लगाये. सिख समुदाय ने गुरूद्वारों में लंगर चलाये. सुनने में आया है कि अमृतसर गुरूद्वारा ने एक अस्पताल बनाया है जिसमें हर किसी के लिए निशुल्क रहने, खाने और इलाज की सुविधा है. दूसरी तरफ ऑक्सीज़न और दवाइयों की कालाबाज़ारी करने वालों की भी कमी नहीं है. रैमदेसिविर नामक इंज़ेक्शन ब्लैक में चार-पांच हज़ार के बजाय साठ-सत्तर हज़ार में बिका. दूसरी ओर अनेक लोगों और संस्थाओं ने लोगों के मध्य खाना बांटा. सरकार ने भी करोड़ों लोगों में राशन बांटा और योजना है कि ज़रूरतमंदों को नवंबर तक प्रतिमाह राशन दिया जाता रहेगा. यह सुखद है कि खाद्य के मामले में देश आत्मनिर्भर है, अन्यथा जैसी आपदा है उसमें भोजन न मिलने के कारण दंगे-फ़साद शुरू हो जाते, लोग सड़क पर उतर आते. किसान आंदोलन अभी भी ज़ारी है. इसने शाहीन बाग आंदोलन जैसा रूप ले लिया है. कुछ लोग अपने फ़ायदे के लिए हवा दे रहे हैं. मिल बैठकर बीच का रास्ता निकालना चाहिए.

अप्रैल के आरंभ से टीकाकरण सारे देश में शुरू हो गया है, पहला टीका प्रधानमंत्री मोदी ने लगवाया. कुछ लोग टीके की उपयोगिता को लेकर सशंकित थे. कोरोना से पार पाने के लिए यह आवश्यक है कि अधिक से अधिक लोग, शीघ्र से शीघ्र टीका लगवायें. सरकार ने घोषणा की है कि हर किसी को निशुल्क टीका लगाया जायेगा. समाजवादी नेता अखिलेश यादव ने कहा कि यह भाजपा का टीका है मैं नहीं लगवाऊंगा. किंतु वे भारतीय सरकार का टीका लगवाने के लिए तैयार हैं!

●

इस महामारी ने हमसे कई मित्रों, लेखकों और सगे-संबंधियों को असमय ही छीन लिया. सबके प्रति हमारी संवेदना!!

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▸▸ कथाबिंब का अक्तूबर-दिसंबर २० अंक मिला. हमेशा की तरह काफ़ी कुछ पढ़ गया. आपका संपादकीय हमेशा पठनीय होता है. इस तरह की संसक्ति संपादक की अपने सहयोगी रचनाकारों एवं सामान्य पाठकों के साथ बहुत कम देखने को आती है. इतना ही नहीं, आप अपने रचनाकारों के सहयोग को संपादकीय में ही रेखांकित करते हैं – ऐसा बहुत कम देखने में आया. इससे आपके दायित्व-प्रवण और निष्ठावान स्वभाव तथा कर्मठता की विरल-सी छाप पाठकों के मन पर पड़ती है. इस प्रकार की संसक्ति और कार्यकौशल का अपना महत्व है – आज के जमाने में इस ख़ूबी की विरलता के कारण भी. अंक में अभी दो ही कहानियां पढ़ीं – सुधा थपलियाल और मंगला रामचंद्रन की. दोनों बड़ी संवेदन प्रवण कहानियां हैं. अपने परिवेश से सचमुच जुड़ी, उनकी वास्तविकता में पैठ रखने वाली कहानियां. हां, गरिमा संजय दुबे की कहानी भी पढ़ ली है – यह भी ऐसी ही जानकारीभरी पैठ का प्रभाव डालती है.

डॉ. राजम पिल्लै की 'काठ में छिपी चिंगारी' भी मार्मिक रचना है जिसके लिए उनके पाठक कृतज्ञ होंगे. यह गुण प्रवणता हिंदी में कम मिलती है. इसलिए उनकी लगन विशेष ध्यान खींचती है.

आशा है, उनको पाठकों से पर्याप्त प्रेरक प्रोत्साहन और संरक्षण मिलता रहा है. तभी न इतनी सुदीर्घ कालावधि से वह एक स्तर बनाये रखने और रचनाकारों का भी सहयोग हासिल करती रही हैं. देश में ही नहीं विदेश में भी उनके गुणग्राही लोग हैं, यह देखकर आश्वस्ति होती है. वह भी ऐसे वातावरण में जो अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में ऐसी लगन से किये गये कल के प्रति पर्याप्त सजग नहीं लगता. तो भी आपका परिश्रम रंग लाया है –यह बात मन को प्रसन्न करती है, आशा जगाती है.

– रमेश चंद्र शाह,

एम-४, निराला नगर, भदभदा रोड, भोपाल-४६२००३

▸▸ 'कथाबिंब' का १५२ वां अंक प्राप्त हुआ. हर एक अंक के तेवर एक से बढ़कर एक, नये और पुराने कलेवर को यथावत समेटे हुए.

सभी छः कहानीकारों की कहानियां अपने-अपने अंदाज़ की, अनूठी और विश्वसनीय. इन सभी कहानियों में से एक कहानी 'पिंजड़ा', कहानीकार डॉ. पूरनसिंह बाबत पाठकों का ध्यानाकर्षण कराना चाहूंगा. अभी तक हमने पंचायतों/खाप पंचायतों की एक से बढ़कर एक फ़ैसलेवाली कहानियां लघुकथाएं पढ़ी हैं, पर यह 'पिंजड़ा' कहानी उन सभी से बिल्कुल एक अलग अंदाज़ की कहानी साबित हुई है जो किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं है.

यह उन दो सहेलियों के बीच की कहानी है जिसमें एक सहेली को दूसरी सहेली के पति द्वारा यौन प्रताड़ना दी गयी. इसी शिकायत पर पंचायत बैठी... और पंचों ने एक अद्भुत फ़ैसला सुना दिया... दूसरी सहेली का पति भी उसकी सहेली के साथ वही सब करे. मैं पूछता हूं क्या यह न्यायसंगत फ़ैसला है और क्या यह मानवीय है? क्या इसे न्यायोचित मान लिया जायेगा. निरंकुशता का प्रतीक नहीं है क्या यह. 'टिट फॉर टैट' क्या इस केस में भी न्यायसंगत होगा. अपरिपक्व बच्चों की तरह... 'तूने मेरा खिलौना तोड़ा है तो बदले में तेरा खिलौना मैं तोड़ूंगा'.

कहानीकार डॉ. पूरनसिंह से मैं यह नहीं पूछूंगा कि यह कहानी 'पिंजड़ा' सच थी या काल्पनिक. कहानी कैसी भी हो, और इतिहास में न जाने कैसे-कैसे फ़ैसले न्यायाधीशों द्वारा किये गये हों... पर यदि एक भी फ़ैसला किसी ने ऐसा देखा-सुना-पढ़ा हो तो बताये.

मैं कहानी की खोज के लिए कहानीकार और कहानी प्रकाशित करने के लिए संपादक जी को बधाई देना चाहता हूं जो उनके साहस का प्रतीक बन गयी है.

- डॉ. कुंवर प्रेमिल

एम. आई. जी., ८ विजयनगर,
जबलपुर-४८२००२. मो. ९३०१८२२७८२.

▸▸ 'कथाबिंब' के अक्तूबर-दिसंबर २० अंक में प्रकाशित कहानियों में मुझे 'निपटारा' कहानी ने सर्वाधिक प्रभावित किया जिसमें वृद्धा मां के तीन समर्थ पुत्र अपने पास रखने और सेवा करने में मुंह चुराते हैं, जबकि एक

नौकरानी उनकी औकात बता देती है. यह आज की विडंबना है कि जो माता-पिता अपना सब कुछ देकर संतति का पालन-पोषण करते हैं वही संतति अपने कर्तव्य और दायित्व का पालन नहीं करती. 'जिजीविषा', 'पिंजड़ा','मुझे वापस लौटना है' कहानियां भी अच्छी हैं और मन में देर तक ठहरती हैं. 'पिंजड़ा' कहानी में माया ने भरी पंचायत में जो अपना निर्णय सुनाया, वह अकल्पित ही नहीं, नारी के स्वाभिमान और पौरुष का परिचायक है. पुरुष प्रधान समाज में पंचायत के निर्णय पुरुषवादी ही होते हैं. इनका विरोध किया जाना चाहिए. पंचायत ने जो निर्णय दिया था वह न्याय नहीं, अन्याय था. माया ने सत्य का दिग्दर्शन कराकर अपराधी को दंडित करने की बात कही.

'आमने-सामने' में ताराचंद मकसाने का वक्तव्य मार्मिक है. कितनी असुविधाओं-अभावों से उन्हें गुज़रना पड़ा. संकल्प आगे बढ़ने का था. अतः जहां 'चाह, वहां राह' वाली कहावत चरितार्थ हुई. राष्ट्रकवि गुप्त जी ने लिखा है –'जितने कष्ट कंटकों से हैं, जितना जीवन सुमन खिला. गौरव गंध उन्हें उतना ही सर्वत्र मिला.' मकसाने जी का जीवन इसका प्रमाण है.

'औरतनामा' में डॉ. रखमाबाई भिखाजी राउत का जीवन प्रेरक है. नारी शक्ति पुंज है. आदर्श है. पढ़कर मन प्रसन्न हो गया. नयी जानकारी मिली.

- डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया

१०३, गोयल विहार, खजराना गणेश मंदिर के पास, इंदौर-४५२०१६. मो. ९४२५३७६४१३.

▶▶ लंबे अरसे से 'कथाबिंब' मुझे प्राप्त हो रही है. बहुत अच्छे से आप पत्रिका के हर अंक को पाठकों को परोसते हैं. मुझे पढ़कर खुशी मिलती है. कोरोना काल में अलग-अलग अनुभव मिल रहे हैं. विभिन्न परिस्थितियों से वृद्ध, युवा, बच्चे जूझ रहे हैं– सामान्य जीवन की प्रतीक्षा में. विश्वास है कि यह प्रतीक्षा शीघ्र ख़त्म होगी.

कमलेश बक्क्षी,

८-ए, आनंद नगर, फोर्जेट स्ट्रीट, ताड़देव. मुंबई-४०००३६. मो. ९९२०४५०८५५.

▶▶ 'कथाबिंब'का अक्तूबर-दिसंबर २०२० अंक प्राप्त हुआ. आपका संपादकीय 'कुछ कही, कुछ अनकही' सामयिक घटनाओं/समस्याओं पर बहुत कुछ कह जाता है. कहानियां विशेषकर 'फ़ौजियों की पत्नियां हैं हम' एवं 'मुझे वापस लौटना है' अंतर तक छू गयीं. अन्य कहानियां भी पठनीय हैं.

- राजेंद्र निशेश

२६९८, सेक्टर ४० सी, चंडीगढ़-१६००३६. मो. ९४१७१०८६३२.

▶▶ कथाबिंब का १५१ वां अंक मिला, इस एक वर्ष के कोरोना काल के दर्मियान सारी लघुपत्रिकाएं लगभग स्थगित हो गयी थीं. फिर जब हालात कुछ सामान्य हुए तो पिछले महीने 'किस्सा' पत्रिका आयी तो लगा कि हमारा साहित्यिक समाज जागृत हुआ है... फिर यह कथाबिंब का सिलसिला... लगा कि क़लम में भी रवानी आ गयी है. पत्र-पत्रिकाओं की आमद से भी लेखक समाज की शिथिलता टूटती है और लिखने-पढ़ने की ललक जागती है. इस अंक में डॉक्टर अभिज्ञात की फैंटेसी सहित सभी कहानियां बड़े गंभीर लेखकों की हैं. इन कहानियों में समय का बदलाव है, ज़िंदगी की गहराई और समय की धार है. लघुकथाओं में आनंद बिल्थरे और मित्र मार्टिन जॉन की लघुकथा 'मज़हबी खुराफात', इस मज़हबी जुनूनी दौर का भरपूर अक्स है.

हां एम. हिमानी जोशी की कविता 'ईश्वर से एक मुलाकात', ईश्वर के तिलिस्म को तोड़ती, अंधविश्वासों को रेजारेजा करती कविता है, जोशीजी को इस साहस के लिए बधाई.

आमने-सामने स्तंभ के तहत आचार्य नीरज शास्त्री की आत्मरचना और सागर-सीपी में वरिष्ठ साहित्यकार धीरेंद्र अस्थाना से मधु अरोड़ा की बेबाक, बिना लाग-लपेट और स्पष्ट संवाद इस अंक की उपलब्धि है. इस कोरोना काल में जहां ज़िंदगी जीना ही मुश्किल हो रही है, वहां आप कथाबिंब का स्तर बरकरार रखते हुए इसके प्रकाशन को जारी रखे हुए हैं, यह कम साहस की बात नहीं है. आपके ज़ज्बे को सलाम !

मित्र अकबर हुसैन अकबर का यह शेर आप जैसे जुनूनी लेखक, बुद्धिजीवी, संपादक के लिए सटीक बैठता है,

'नहीं है आमादा इस सफ़र पर कोई, मगर हम,
सफ़र समंदर का और कछुए की पुश्त,पर हम '

सेराजखान 'बातिश'

३/बी, बंगालीशाह वारसी लेन, खिदिरपुर, कलकत्ता-७०००२३ मो.: ९३३९८४७१९८

अंतरिक्ष से

डॉ. रमाकांत शर्मा

कथाबिंब के हितैषी एवं नियमित लेखक

कितनी अजीब बात है, जब बचपन हमारे भीतर हमारे साथ रह रहा होता है, तब हम जल्दी से बड़े होने और भविष्य के सपने बुनने में लगे होते हैं. उस समय अहसास भी नहीं होता कि ज़िंदगी के सुनहरे पलों से भरे उस घड़े के पेंदे में एक बड़ा-सा छेद होता है जो उसे तेज़ी से रीता करता चला जाता है. न जाने कब हम ज़िंदगी की जद्दो-जहद और वास्तविकता के सागर-तट पर स्वयं को खड़ा पाते हैं. एक ऐसा सागर जिसमें कूदने के अलावा और कोई विकल्प नहीं होता, एक ऐसा प्रवाह जो अपने साथ बहा कर लेता चला जाता है और हम उसके साथ बहने के लिए नियति-आबद्ध होते हैं.

उसे भी अपना बचपन उतनी ही शिद्दत से याद आता है. स्कूल से आते ही बस्ता फेंक कर मोहल्ले के बच्चों के साथ खेलने भाग जाना और फिर लौटकर मां की मीठी झिड़कियां खाना, अभी भी उसके चेहरे पर मुस्कान ला देता है.

उन दिनों गर्मियों की रातों में छत पर खाट बिछा कर सोने का आनंद ही कुछ और था. खाट पर लेटा वह काले आकाश में चमकते असंख्य तारों और लट्टू से चमकते चांद को मंत्रमुग्ध निहारा करता. सोचता लपक कर इन चांद तारों को अपने आगोश में समेट लूं और फिर उनसे जम कर खेलूं. पापा उसे ध्रुव तारे, सप्त ऋषि और अन्य तारों के बारे में और उनके पीछे की कथाओं के बारे में बताते तो उसकी उत्सुकता चरम पर पहुंच जाती. कितना बड़ा रहस्य छिपा रखा था आसमान ने अपने अनंत फलक में.

फिर स्कूल की क़िताबों में उसने पढ़ा कि चांद भी पृथ्वी जैसा ग्रह है और तारे हमसे करोड़ों-अरबों मील दूर हैं और इतने बड़े हैं कि उनमें हमारी जैसी कितनी ही पृथ्वियां समा जाएं, तो मन रहस्य और रोमांच से भर उठता. मन में कई सवाल भी उठते, कितनी बड़ी है हमारी पृथ्वी, कैसी दिखती होगी ऊपर से, क्या सचमुच ये छोटे-छोटे तारे, दूसरे ग्रह और थाली जैसा गोल चमकता चंद्रमा — 'एक थाल मोतियों से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा' जैसी पहेली से भी बड़ी

कोई रहस्यमय पहेली है? बाल मन की कल्पनाएं उड़ान भरतीं और फिर न जाने कब वह नींद के आगोश में समा जाता.

ऐसे ही उस रात भी सृष्टि की उस अदम्य सुंदरता को निहारते-निहारते वह सो गया था. सुबह जब सोकर उठा तो उसने घर में एक अजीब सी शांति और बेचैनी महसूस की. उनका घर सड़क के बिलकुल किनारे था, सुबह-सुबह ही आने-जाने वाले लोगों और वाहनों की आवाज़ें चिल्ल-पौं मचाए रखती थीं. उनके शोर का वे सब आदी हो चुके थे. आज वे आवाज़ें भी ग़ायब थीं. वह नीचे बाज़ार का हाल देखने के लिए छत की मुंडेर से झांकने ही लगा था कि पीछे से घबराई-सी मां ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया और झटके से उसे पीछे खींच लिया. वह इसके लिए तैयार नहीं था. उसने मां की पकड़ से भरसक छूटने का प्रयास करते हुए पूछा था — 'क्या हुआ, मां?'

'बस बाहर नहीं झांकना है.'

'क्यों? मैं तो हमेशा यहां से बाज़ार देखता हूं.'

'कैसे समझाऊं तुझे? रात से शहर में दंगा फैला हुआ है.'

'तो क्या हुआ? दंगा तो अच्छी बात है.'

मां ने उसे हैरत से देखा तो उसने कहा था — 'पापा नहीं कहते कि बच्चे तो दंगा मचाते ही अच्छे लगते हैं तो फिर दंगा अच्छा ही हुआ न?'

'तू नहीं समझेगा बेटे, यह बच्चों का नहीं, बड़ों का दंगा है. लोग एक-दूसरे को जान से मारने पर तुले हुए हैं. बस, तुझसे कह दिया चुपचाप जाकर अंदर बैठ.'

उसे वाकई कुछ समझ में नहीं आया था — 'अरे, जब हमने किसी का कुछ बिगाड़ा ही नहीं है तो कोई हमें क्यों जान से मारेगा, मां?' वह कहता रहा था, पर सब कुछ अनसुना करते हुए मां खींचती हुई-सी उसे कमरे तक ले गयी थी. कमरे तक जाते-जाते उसने देखा उसके पापा, चाचा और दोनों बड़े भाई दालान में एक साथ बैठे किसी गंभीर मंत्रणा में व्यस्त थे.

कमरे के भीतर ही बने डब्ल्यु. सी. में वह फ्रेश हुआ था. मां, वहीं उसे दूध-नाश्ता दे गयी थी और यह हिदायत भी कि वह भूले से भी न तो खिड़की से बाहर झांके और न ही घर से बाहर निकले.

वह नाश्ता ख़त्म करके उठ ही रहा था कि उसे भीड़ के उन्मादी नारों की आवाज़ें सुनायी दीं. 'मारो, काटो, जाने न पाए, आग लगा दो.' जैसी आवाज़ें सुनकर वह तेज़ी से उठा और दूसरी मंजिल पर बने उस कमरे की खिड़की का पल्ला थोड़ा-सा खोल कर बाहर देखने लगा. उसने जो कुछ देखा उससे उसके होश उड़ गये. हाथों में हथियार और मशालें लिये लोगों की भीड़ वहशी बनी हुई थी. तभी पुलिस की गाड़ियों और एंबुलेंसों की आवाज़ें पास आती सुनायी देने लगीं. वे दरिंदे इधर-उधर भागने लगे. वह बुरी तरह डर गया था. उसके हाथ-पैर कांपने लगे और वह भाग कर कमरे के सबसे अंधेरे कोने में जाकर घुटनों में मुंह छुपा कर बैठ गया. पहली बार उसे मां की बातों में सच्चाई नज़र आयी थी. तीन दिन तक शहर का माहौल वैसा ही बना रहा. उन ख़ूनी झड़पों ने उसके बाल मन को उधेड़ कर रख दिया और वह बुरी तरह सहम गया था.

धीरे-धीरे सब कुछ सामान्य होता चला गया. बाज़ार खुल गये थे, वाहनों और लोगों की आवाजाही ने चहल-पहल लौटा दी थी, बच्चे फिर से अपने में मगन हो गये थे. पर, कभी-कभी रात में सपने में वही दृश्य उसके सामने साकार हो उठते तो वह घबरा कर उठ बैठता और फिर बड़ी देर तक सो न पाता.

बचपन से किशोरावस्था तक की सीढ़ियां चढ़ते-चढ़ते और फिर जवानी की दहलीज तक आते-आते उसके सामने समाज की विद्रूपताएं और भी खुल कर सामने आने लगीं. पत्रिकाएं, अख़बार, टीवी सभी तो झगड़े-फसाद और आये दिन होती आतंकी घटनाओं की ख़बरों से भरे रहते. उसे समझ में नहीं आता था कि जाति, धर्म, भाषा और रंग को लेकर लोग क्यों खामख़्वाह एक-दूसरे के ख़ून के प्यासे हो जाते हैं.

देश और दुनिया के सबसे सुरक्षित समझे जाने वाले शहरों में होने वाले बड़े-बड़े धमाकों में बेमौत मारे जाने वाले लोगों की ख़बरें उसे सचमुच आतंकित कर देतीं. स्कूलों के मासूम बच्चों तक को यूं ही गोलियों से भून कर अपनी ख़ूनी प्यास बुझाने वाले दहशतगर्द उसे कहानियों के राक्षस बन डराते और वह अंदर तक हिल जाता. उसकी समझ से परे था कि सिर्फ़ और सिर्फ़ आतंक फैलाने के मकसद से निर्दोष लोगों को मार डालने और फिर अपने वीभत्स कृत्य को सैद्धांतिक जामा पहनाने की कोशिश करने वाले लोग क्या पृथ्वी पर रहने वाले उसके जैसे ही हाड़-मांस के मनुष्य हैं? पता नहीं, क्यों और कैसे वे ये जघन्य काम करने के लिए ख़ुद को तैयार कर पाते होंगे? मासूमों की हत्या करके कैसे

चैन से सो पाते होंगे? वह बहुत बेचैन हो उठता और घबराहट उसकी रग-रग में फैल जाती.

पापा का प्रमोशन और उसके साथ ट्रांसफ़र होने की वजह से उन्हें अपना वह क़स्बा छोड़कर बड़े शहर में रहने आना पड़ा. उस बड़े शहर में उसे बड़ा अजनबीपन लगता. छत पर सोने और आसमान निहारने का सुख उससे अनायास छिन गया था, पर आसमान के उन चमकते चांद-सितारों के प्रति उसका आकर्षण वैसा ही बना हुआ था. अब भी उसका मन चांद-सितारों को छूने और अपनी झोली में भर लेने के लिए मचलता रहता. अवचेतन में जमी बचपन की इसी सोच ने उसे एयरोनॉटिक्स की पढ़ाई करने के लिए प्रेरित किया. वह हमेशा विशेष योग्यता के साथ पढ़ाई की सीढ़ियां चढ़ता गया और फिर उसे 'नासा' में नौकरी मिलते देर नहीं लगी.

नासा में नौकरी मिलने के बाद उसके सपनों को पंख लग गये. अंतरिक्ष में जाने, चांद तारों को और क़रीब से देखने और सबसे बढ़कर पृथ्वी को ऊपर से निहारने की उसकी तमन्ना खुल कर अंगड़ाई लेने लगी. बचपन के अपने सपने को पूरा करने के इतने नज़दीक पहुंच कर वह उसे पाने के लिए जी-जान से जुट गया.

उसकी योग्यता, लगन और परिश्रम ने आख़िर उसे उस मुकाम तक पहुंचा ही दिया जहां से वह बस हाथ बढ़ाकर अपने सपनों को छू सकता था. वह विश्वास नहीं कर पा रहा था कि दो अन्य लोगों के साथ उसे भी अंतरिक्ष में एक माह तक रहने वाली टीम में चुन लिया गया था. उसके दिल की धड़कनें बढ़ गयी थीं. उसके भीतर उठती उत्साह, उमंग और आनंद की लहरें उसे एक ऐसी मीठी बेचैनी से गुज़ार रही थीं, जिसमें आकाश को जल्दी से जल्दी अपनी बांहों में समेट लेने की अकुलाहट भरी थी.

लंबे और कड़े प्रशिक्षण के बाद आज उन्हें अंतरिक्ष के लिए निकल जाना है. सारी तैयारियां पूरी हो चुकी हैं. पूरे विश्व की नज़रें उनके अभियान पर टिकी हैं. रॉकेट में प्रवेश करते ही वह रोमांच से भर उठा है. उल्टी गिनती शुरू हो चुकी है और फिर रॉकेट तीव्र गति से ऊपर उठने लगा है. ऊपर उठते यान के साथ उस पर अनूठा सुरूर तारी होता जा रहा है. पृथ्वी से वे पल-पल दूर और दूर होते जा रहे हैं. उसकी उत्सुकता और जिज्ञासा चरम पर पहुंच रही है. यह सब तो उसकी कल्पना से भी अद्भुत और रोमांचकारी है — कितना भव्य, कितना मनमोहक और कितना रहस्यमय.

कुछ ही समय में वे पृथ्वी की कक्षा से बाहर निकल

आये हैं. आकाश के समुद्र में मछली-सा तैरता उनका यान तीव्र गति से उस अंतरिक्ष स्टेशन की ओर बढ़ा चला जा रहा है जहां उन्हें एक माह का समय गुज़ारना है और अनजाने अनुभवों से गुज़रना है. तभी उसने जो दृश्य देखा उसने उसे स्तंभित कर दिया है. दूर होती पृथ्वी गोलाकार रूप में साफ़ नज़र आने लगी है. वह आवाक, अपलक उस अद्भुत नजारे को देख रहा है. नीली आभा लिये पृथ्वी ऊपर से इतनी सुंदर लग रही है कि उसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता. नीलमणि-सी चमकती अप्रतिम धरा कितनी सौम्य और कितनी शांत लग रही है.

आनंदातिरेक से उसके शरीर में कंपन होने लगा है. पर, मंत्रमुग्ध कर देने वाले उस दृश्य में डूबा उसका मन अचानक खिन्न और उदास हो आया है, ऊपर से इतनी ख़ूबसूरत, सौम्य और शांत दिखने वाली पृथ्वी भीतर से कितनी अशांत है. हर जगह मरने-मारने की बातें, पृथ्वी को विद्रूप बनाने और उसके वातावरण को बिगाड़ने में लगे लोग. उसे कितनी ही बार नष्ट करने के लिए परमाणु और हाइड्रोज़न बमों के भंडार लिये बैठे, सिरफिरे राजनेता. नष्ट होती पृथ्वी की कल्पना से ही उसका पूरा शरीर सिहर उठा. कुछ भी तो नहीं कर सकता था वह, बेचारगी में उसकी आंखों में भर आए आंसू अंतरिक्ष में टपकने के लिए तरसते रहे. उसने सोचा काश, एक बार सभी पृथ्वीवासी अंतरिक्ष से इस नीले, चमकते शांत अद्भुत ग्रह को देख पाते. शायद स्थितियां बदल जातीं.

४०२-श्रीराम निवास,
टट्टा निवासी हॉउसिंग सोसायटी,
पेस्तम सागर रोड नं.३,
चेंबूर, मुंबई-४०००८९
मो. ९८३३४४३२७४

लघुकथा

स्ट्रीट सिंगर

कृष्ण चंद्र महादेविया

पांव के अंगूठे में खंजड़ी, टांग के नीचे ढोलकी, एक हाथ में मॉउथ आर्गन, सामने माइक स्टैंड के साथ स्पीकर, एंपलीफायर आदि ध्वनि प्रेषण का पूरा जुगाड़ था. पहले तो लोग उसे भिखारी समझते रहे और उससे निश्चित दूरी बनाए थे. किंतु जब उसने खंजड़ी ढोलकी पर हाथ, पांव की थाप दी और मॉउथ आर्गन पर धुन छेड़ी तो गुड़ पर मक्खियों की तरह लोग उसके पास आ-आ कर खड़े होने लगे.

वह क़रीब पैसठ-सत्तर वर्ष का छः फुटिया अधेड़ था. शहर के घंटाघर के साथ बनी मार्केट की छत पर एक ओर बैठ कर अपने गीत-संगीत कार्यक्रम के लिए तैयार हो चुका था. सिर पर हैट, पैंट-कोट, मैले ज़रूर थे पर उस पर फबते ख़ूब थे. शहर में शिवरात्रि मेले पर भीड़ काफ़ी थी और इस ओर तो लोगों की बहुत अधिक चहल-क़दमी थी.

मॉउथ आर्गन एक ओर रखकर जब उसने पुराना गीत गाना शुरू किया तो लोग हक्के-बक्के और सांस थामे सुनते रहे गये. पांच गीत सुनाकर वह शांत बैठ गया था. कुछ लोगों ने उसकी ओर सिक्के और रुपए फेंके पर उसने इन्हें हाथ तक नहीं लगाया.

''लीजिए सर.'' किश्ना ने मुस्कराते हुए बीस रुपए उसके हाथ पर देते हुए आदर से कहा.

''थैंक्स सर!''

किश्ना के साथ लेखक सुरेश और मुरारी भी बंशी बणा को कुछ देना चाहते थे.

किश्ना की देखा-देखी में अनेक लोगों ने गायक के हाथ पर एक-दो, पांच रुपए के सिक्के और दस रुपए अब दिल से रखे थे.

''क्या आपका नाम जान सकता हूं?'' मुरारी ने पूछा.

''बंशी बणा, फ्रॉम गुजरात सर!''

''आप बहुत बढ़िया गाते हैं.'' किश्ना ने प्रशंसा से कहा.

''पापी पेट का सवाल है अब तो सर. समा-समा समरथ.'' बंशीबणा मुस्कराया तो था पर दर्द भरी मुस्कान से.

''एक आध गीत अब नहीं गायेंगे आप?'' सुरेश ने पूछा था.

''नहीं कल, इसी समय, वहीं पर गाऊंगा सर.''

बातें करते बंशीबणा ने सामान समेट लिया था. वह वहां से जाने को तैयार हो गया था.

''आपके लिए नीचे पड़े सिक्के और रुपए तो रह गये हैं, बंशीबणा जी!'' किश्ना ने उसे याद दिलाया.

''सर मैं, भिखारी या मदारी नहीं हूं. ग़रीब हूं तो क्या, स्ट्रीट सिंगर का भी तो आत्मसम्मान होता है न? मैं फेंके हुए पैसे कभी नहीं उठाता सर.''

कुछ ही देर में बंशीबणा भीड़ में गुम था.

डाकघर महादेव, सुंदरनगर, जिला : मंडी (हि. प्र.)-१७५०१८
मो. : ८६७९१५६४५५

गुड बॉय, मैं ख़ुश हूं !

डॉ. मनोज मोक्षेंद्र

जन्म : वाराणसी, (उ. प्र.)
शिक्षा : जौनपुर, बलिया और वाराणसी हाई स्कूल, इंटरमीडिएट और स्नातक बलिया से, स्नातकोत्तर और पीएच. डी.
१२ पुस्तकें प्रकाशित :
शीघ्र प्रकाश्य : 'दूसरे अंग्रेज़' (उपन्यास), महापुरुषों का बचपन (बाल नाटिकाओं का संग्रह).
: संपादन :
महेंद्र भटनागर की कविता : 'अंतर्वस्तु और अभिव्यक्ति'
: सम्मान :
'भगवतप्रसाद कथा सम्मान-२००२' (प्रथम स्थान); 'रंग-अभियान रजत जयंती सम्मान-२०१२'; ब्लिट्ज़ द्वारा कई बार 'बेस्ट पोएट आफ़ दि वीक' घोषित; 'गगन स्वर' संस्था द्वारा 'ऋतुराज सम्मान-२०१४' राजभाषा संस्थान सम्मान; कर्नाटक हिंदी संस्था, बेलगाम-कर्णाटक द्वारा 'साहित्य-भूषण सम्मान'; भारतीय वांग्मय पीठ, कोलकाता द्वारा साहित्य शिरोमणि सारस्वत सम्मान (मानद उपाधि); 'नूतन प्रतिबिंब', राज्य सभा (भारतीय संसद) की पत्रिका के पूर्व संपादक. लोकप्रिय पत्रिका 'वी-विटनेस' (वाराणसी) के विशेष परामर्शक, समूह संपादक और दिग्दर्शक. 'मृगमरीचिका' नामक लघुकथा पर केंद्रित पत्रिका के सहायक संपादक.
राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं, वेब-पत्रिकाओं आदि में प्रचुरता से प्रकाशित.
: संप्रति :
भारतीय संसद में प्रथम श्रेणी के अधिकारी के पद पर कार्यरत

वर्ष २००७ में एक था दुष्यंत, अमेरिकी प्रवास में : दुष्यंत विवाह करने के तुरंत बाद यू एस चला गया और उसके बाद वह वहां लगातार अपनी कंपनी के सीईओ के निर्देशों पर दिये गये प्रोज़ेक्ट्स को पूरा करने में लगा रहा. जाते-जाते अपनी नवब्याहता पत्नी किन्वा से यह वादा करता गया कि वह यथाशीघ्र वापस आ जाएगा. पर, सप्ताह और महीने ही क्या, साल-दर-साल गुज़रते रहे; उसकी घर-वापसी की मंशा पूरी नहीं हो पा रही थी जिस कारण वह मन मसोस कर रह जाता था. लेकिन, वहां ऊब के साथ समय काटते हुए वह एक फ़ैसला बार-बार करता कि वापस इंडिया जाने के बाद वह किसी मल्टी-नेशनल कंपनी की नौकरी कभी नहीं करेगा. भले ही उसे बड़े-बड़े लुभावने ऑफ़र्स ही क्यों न मिलें? आइंदा किसी इंडियन कंपनी का जॉब ही ज्वाइन करेगा ताकि वह किसी लंबे प्रॉजेक्ट पर कहीं विदेश में इतने लंबे समय तक रहने से बच सके. यू एस में पूरे आठ सालों तक रहना और वह भी कंप्यूटरों और मशीनों के साथ, उसे किसी मुर्गी के दड़बे से कम नहीं लग रहा था. वह सोचता, इंडिया के ग्रेजुएट्स अमरीका में नौकरी करने के लिए कितने बेताब रहते हैं? आख़िर, है क्या... इस बेजान अमरीका में जहां लोगों में मानवीय संवेदना का बल्ब फ़्यूज़ है और बातचीत ड्यूटी और डॉलर तक ही सीमित है? इन अप्रवासी भारतीओं का दिमाग़ भी कितना ख़राब है कि बस, काम ही काम और विदेशी करेंसी कमाने की बेचैनी. इन्हीं के लिए इंडियंस अपने नाते-रिश्तेदार, घर-द्वार सभी से तौबा कर लेते हैं. यू एस प्रवास के दौरान, अपने देश से उनका थोड़ा-बहुत संबंध बस उनके रहते ही बना रहता है. उनके बच्चे बड़े होकर न केवल

अमरीका के सिटिज़न होंगे बल्कि हिंदुस्तान की सारी बातों, तौर-तरीक़ों और तहज़ीब से भी किनारा कर लेंगे और बात-बात में हिंदुस्तान का मख़ौल उड़ाएंगे. उनके मरने के बाद उनके बच्चे भूल जाएंगे कि कभी हिंदुस्तान से भी उनके मां-बाप का नाता रहा था. क्रिश्चियन लड़कियों से शादी के बाद तो उनके मन में हिंदुस्तान के लिए कोई जगह ही नहीं रह जाएगी.

पर, दुष्यंत ने कभी भी अमरीका को मन से स्वीकार नहीं किया. उसके अमरीकी दोस्त हमेशा उससे कहते रहते कि 'डुश्यंट, आफ़्टर सो मेनी इयर्ज़ इन यू एस, वाट विल यू गेन रिटर्निंग टू इंडिया? सैटल हियर, बी विद अस एंड इन्ज्वॉय अवर कंपनी.'

जब वह बताता कि हिंदुस्तान में उसके भरे-पूरे परिवार के अलावा उसकी पत्नी भी है तो वे ठठाकर हंस पड़ते, 'लीगली डॉयवर्स योर इंडियन वाइफ़ एंड मैरी ए क्यूट अमरीकन गर्ल. हियर यू कैन आलसो चेंज़ एंड एक्सचेंज़ योर वाइफ़ सेवरल टाइम्स एकॉर्डिंग टू योर टेस्ट...'

उसका मन जुगुप्सा से भर उठता; पर कोई विरोध करने के बजाय सिर्फ़ बनावटी मुस्कराहट के साथ प्रतिक्रिया करता और मन ही मन कहता — तुम लोग क्या जानो कि भारतीय पत्नी का आदर्श कितना ऊंचा होता है! पति के भले के लिए कितने व्रत-अनुष्ठान करती रहती हैं; तीज-करवा चौथ पर उसकी लंबी उम्र की कामना करती हैं.

चल, पलट जा अपने देश की ओर :

बहरहाल, हिंदुस्तान वापस आने के लिए उसके छुट्टी के आवेदनों को बार-बार अस्वीकृत कर दिया जाता रहा. हालांकि उसे इस बात से तसल्ली थी कि छोटे भाई कलरव के पास उसकी पत्नी किन्वा एकदम महफ़ूज़ होगी; फिर भी अपनी नवब्याहता पत्नी से इतने लंबे समय तक दूर रहना उस जैसे जवान मर्द के लिए बहुत मुश्किल से संभव हो पाया. आख़िरकार, एक मुद्दत के बाद जब उसकी छुट्टी मंजूर हुई तो उसका मन कुलांचे भरने लगा. तब, उसने किन्वा को फ़ोन लगाया, किन्नू, मैं अगले हफ़्ते सोमवार को इंडिया वापस पहुंच रहा हूं.

इस ख़बर पर किन्वा की तरफ़ से जिस गर्मजोशी से अपनी ख़ुशी ज़ाहिर की जानी चाहिए थी, वैसा उसने नहीं किया. दुष्यंत चिंता में पड़ गया. आख़िर, क्या बात है, किन्वा ने चहचहाती आवाज़ में रेस्पॉन्स क्यों नहीं दिया? शुरू-शुरू में तो वह बड़ी उत्कंठा से खिलखिला उठती थी — कब आओगे, कब आओगे? तुम्हारे बग़ैर तो...

तब, उसने कलरव को फ़ोन किया, 'कलरव, तुम्हारी भाभी के साथ सब कुछ ठीक-ठाक तो चल रहा है, ना? उसने मेरे आने की ख़बर सुनकर बहुत ख़ुशी ज़ाहिर क्यों नहीं की?'

कलरव ने गला साफ़ करते हुए कहा, 'भइया, आप क्यों चिंतित हैं? सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा है. हम आपका वेलकम करने के लिए बेताब हो रहे हैं. हां, किन्नू यानी भाभी की थोड़ी तबीयत ठीक नहीं है. शायद, इसी वजह से....'

कलरव ने किन्वा को किन्नू कहकर क्यों संबोधित किया? इस नाम से तो मैं यानी उसका पति ही संबोधित कर सकता है. बड़े भाई की पत्नी से उसे अदब से पेश आना चाहिए. ऐसा किसी भी तरह से जायज़ लगता है क्या? दुष्यंत के मन में तरह-तरह की चिंताएं-आशंकाएं उठने लगीं. जब वह कोई आठ साल पहले यू एस के लिए रवाना होते समय, कलरव से मुख़ातिब हुआ था तो उसने क्या कहा था.... हां, भाभीजी को मैं संभाल कर रखूंगा. वे तो मेरी मां-समान हैं....

साल २०१५ में एयरपोर्ट पर :

चुनांचे, कोई आठ सालों के विदेशी प्रवास के बाद निर्धारित समय पर एयरपोर्ट के बाहर इंतज़ार कर रही किन्वा के आगे उछल कर आते हुए उसने सीने से लगाना चाहा तो वह तनिक पीछे हट गयी और बड़े संकोच के साथ उसके सीने से लगी. उसे किन्वा के व्यवहार में इतना संकोच और हिचक का मतलब बिल्कुल समझ नहीं आ रहा था. तभी कलरव ने आगे आकर अपने चेहरे पर बनावटी मुस्कान लाते हुए कहा, 'भइया, कितने सालों बाद आपका दीदार करने का मौक़ा मिला है. किन्नू, ओह मेरा मतलब है कि भाभी तो आपकी याद में दिन-रात खोयी रहती थीं. हां, मैंने ही उसे संभाला और इसके लिए आपको मेरा शुक्रगुज़ार होना चाहिए.'

पलभर को दुष्यंत को झटका-सा लगा क्योंकि कलरव ने फिर से अपनी भाभी को किन्नू कहकर पुकारा था. पर, वह पूरा होठ फैलाकर अपने पुराने अंदाज़ में मुस्कराया तो दुष्यंत के मन का मलाल भी जाता रहा. थोड़ी देर बाद वे अपने फ़्लैट में आ गये. दुष्यंत कुछ देर तक ड्राइंग रूम में

सोफ़े पर टांग पसार कर बैठा रहा. किन्वा ने आकर उसे पानी का गिलास थमाया तो वह पानी पीने के बाद घूम-घूमकर पूरे घर का मुआयना करने लगा. पता नहीं क्यों उसके मन में कुछ अज़ीबो-ग़रीब चल रहा था? कलरव किचेन में ही किन्वा के साथ कुछ बातें कर रहा था. उसे लगा कि किन्वा और कलरव कुछ असहज से लग रहे हैं. वह कुछ पल किचेन के बाहर खड़ा रहा फिर यक-ब-यक उसे बुलाते हुए ड्राइंग रूम में आ गया. जब किन्वा चाय की ट्रे लेकर आयी तो कलरव उसके पीछे-पीछे ही आया. फिर, ड्राइंग रूम में बैठकर चाय पीते हुए किसी ने भी ख़ामोशी नहीं तोड़ी तो ख़ुद दुष्यंत ही बोल पड़ा, 'कलरव, गांव में बाबूजी और अम्मा ठीक-ठाक तो हैं, ना? और वृंदा क्या कर रही है? ग्रेजुएशन और बी. एड. में उसके कितने नंबर आये हैं?'

कलरव ने ज़बरन मुस्कराकर सहज बनने की कोशिश की और बोला, 'भइया, हां, गांव में सब बढ़िया चल रहा है. वृंदा एक स्कूल में ऐड-हॉक टीचिंग कर रही है और बाबूजी-अम्मा का स्वास्थ्य भी सही है.'

'तुम लोग पिछली बार गांव कब गये थे?' उसके पूछने पर कलरव ने कुछ पल तक किन्वा को इस तरह देखा जैसे कि इस सवाल का उत्तर उसकी आंखों में लिखा हुआ है.

कलरव ने कहा, 'हां, मैं और भाभी बारी-बारी से गांव जाते रहते हैं.'

'ऐसा क्यों? साथ-साथ क्यों नहीं?' दुष्यंत तनिक खीझते हुए बोला.

किन्वा ने नाक खुजलाते हुए कहा, 'दरअसल, यहां आसपास के फ़्लैटों में बहुत चोरियां हो रही हैं. नोटबंदी के बाद से दिन-दहाड़े ताले तोड़ने की वारदात आये दिन होती रही हैं. तभी तो....'

'लेकिन, नोटबंदी तो इस साल हुई है. क्या इससे पहले तुम दोनों साथ-साथ गांव जाते रहे हो?' दुष्यंत की भौंहें थोड़ी-सी तन गयीं.

कलरव से कोई बात बनाते हुए नहीं बना तो वह हकला उठा, 'हां-हां, हम नोटबंदी के पहले साथ-साथ ही गांव जाते रहे हैं.'

'पर, बाबूजी तो फ़ोन पर कुछ और ही बता रहे थे...'

'क्या कह रहे थे?' किन्वा का मुंह आश्चर्य से खुला रह गया.

'यही कि मेरे यू एस जाने के बाद, सिर्फ़ एक साल तक ही तुम दोनों साथ-साथ गये थे. मैं पूछता हूं कि आख़िर, क्या मज़बूरी थी?'

इतना कहकर दुष्यंत बड़बड़ाते हुए टहलने लगा.

कलरव ने सिर खुजलाते हुए कुछ देर तक मगज़मारी की, फिर बोला, 'आख़िर, हम दोनों ने एक-साथ गांव न जाकर क्या गुनाह कर दिया? आप तो फ़िज़ूल हम पर उखड़ रहे हैं.'

किन्वा ने टोकते हुए कहा, 'गांव अलग-अलग जाना ही संभव हो पाता था. मुझे भी कॉन्वेंट स्कूल में बच्चों का क्लॉस लेने के अलावा, छुट्टियों में घर पर करने के लिए बहुत काम दे दिया जाता है. कभी जनसंख्या गणना से संबंधित काम तो कभी बच्चों से फ़ीस वसूलने और रखरखाव करने का काम. इसलिए, हम दोनों ने बारी-बारी से ही गांव जाना उचित समझा. इसके अलावा, कलरव जी भी ऑफ़िस से फ़ाइलें लाते थे. रोज़ ही तो दस बजे के बाद इनका घर वापस आना होता है.'

दुष्यंत को लगा कि जैसे उसके दिमाग़ में जो शक का कीड़ा रेंग रहा है, उसका अहसास उसकी पत्नी और भाई को हो गया है. तब वह सहमते हुए किचेन में गया और पानी का गिलास लिए हुए वापस आकर सोफ़े पर टांग पसार कर बैठ गया जबकि किन्वा और कलरव अपराध-बोध से सिर झुकाए हुए ही खड़े थे. उनकी इस हालत पर उसका मन पसीज़ गया; तब उसने नरमी से कहा, 'बैठ जाओ, भाई. मैं तुमसे बस कुछ बातें पूछ रहा हूं. तुम्हें कटघरे में खड़ा तो कर नहीं रहा हूं.'

पर, शाम तक दुष्यंत बेचैन ही रहा. ज़्यादा बातचीत भी नहीं की; फिर रात का भोजन करने के बाद वह ड्राइंगरूम में ही आकर सोफ़े पर लेट गया जल्दी ही खर्राटे भरने लगा. आधी रात को जब किन्वा ने उसे जगाकर बेडरूम में जाकर सोने के लिए कहा तो उसने नींद में ही कहा, 'मत जगाओ, मुझे यूं ही अकेले सोने की आदत पड़ गयी है.'

किन्वा छनछनाकर पैर पटकते हुए बेडरूम में वापस चली गयी जबकि कलरव देर रात तक कोने में लगी चेयर-टेबल पर ऑफ़िस से लाये गये दस्तावेज़ों को पढ़ता रहा और अलग-अलग फ़ाइलों में कुछ मसौदे तैयार करता रहा. रात के कोई दो बजे, दुष्यंत टॉयलट के लिए उठा तो उसने

कलरव को नसीहत देते हुए कहा, 'भाई, सेहत ख़राब करनी है तो बताओ, मैं भी जगकर कोई आर्टिकल लिखूं. कुल तीन हफ़्ते के लिए ही तो छुट्टी लेकर आया हूं, अभी गांव भी जाना है और अपने लोगों से मिलना भी है.'

तब कलरव लैंप बुझाकर ड्राइंगरूम में ही पड़े दीवान पर सो गया. सुबह दुष्यंत देर से जगा तो उसने कलरव को ऑफ़िस जाने के लिए तैयारशुदा पाया. तब उसने किन्वा द्वारा लायी गयी बेड-टी की चुस्की लेते हुए कलरव को आवाज़ लगायी, 'भाई, तुम कुछ दिन के लिए छुट्टी कर लो. हां, जब तक मैं दोबारा यू एस के लिए रुख़सत नहीं हो जाता हूं, तुम मेरे साथ ही रहो. इतने सालों से तुमसे बातचीत न हो पाने के कारण इन चंद दिनों में बातें करनी हैं.'

पर, इसके पहले कि कलरव ना-नुकुर करता और ऑफ़िस के काम को ज़रूरी बताकर छुट्टी न लेने के बहाने बनाता, किन्वा बोल पड़ी, 'अब आपके भइया जब छुट्टी लेने को कह रहे हैं तो छुट्टी कर लो ना.'

'हां-हां, तुम्हारा छुट्टी करना इसलिए भी ज़रूरी है कि मैं तुम्हें और किन्वा को लेकर ही गांव जाऊंगा. वहां, मुझे अकेले देखकर बाबूजी नाराज़ हो जाएंगे. पूछेंगे कि कलरव और किन्वा को साथ लेकर क्यों नहीं आये...'

तब कलरव ने किन्वा की आंखों में झांककर यह जानना चाहा कि वह किस वजह से उसे छुट्टी लेने का आग्रह कर रही है जबकि उसके पति यानी मेरे भाई वापस आ ही गये हैं.

तो भी वह छुट्टी न लेने के निर्णय पर अड़ा रहा. उसने कहा, 'भइया, इतने सालों बाद आप वापस आये हैं तो किन्नू यानी भाभी के साथ ये छुट्टी वाले दिन गुज़ारने का सुनहरा मौक़ा मत चूकिए. दिन में मैं ऑफ़िस में रहूंगा तो आपको भाभी को समय देने का मौक़ा मिलेगा.'

बोलते-बोलते उसका गला भर्रा गया.

'भाई, मैं तो तुम लोगों के साथ आज शाम को ही गांव चलने के बारे में सोच रहा था.'

तब कलरव ने मोबाइल पर ऑफ़िस में फ़ोन लगाया और बॉस से पूरे हफ़्ते छुट्टी पर रहने की अनुमति ले ली.

गांव के अपने पुश्तैनी घर में :

अगले दिन सुबह, वे गांव आ गये. पर, गांव पहुंचकर किन्वा और कलरव ख़ुद में खोये-खोये से थे. उनके इस मिजाज़ पर दुष्यंत बार-बार ग़ौर कर रहा था. वह सुनिश्चित तौर पर समझ चुका था कि उन दोनों की चिंताएं एक ही हैं जिन्हें वे उसे कभी बताना नहीं चाहेंगे.

गांव के पुश्तैनी घर में जिस ढंग से बाबूजी ने उन तीनों की आवभगत की, उसमें कुछ न कुछ तो असाधारण अवश्य था.

दुष्यंत ड्योढ़ी पर अपने पुराने अंदाज़ में बैठते हुए बोल पड़ा, 'बाबूजी, आपके चेहरे पर जो ख़ुशी उतरा रही है, वह मेरे यू एस से इतने वर्षों बाद लौटने की ख़ुशी से कहीं ज़्यादा है. आख़िर, इसका राज़ क्या है?'

बाबूजी अपनी रुई जैसी मूंछों को सहलाते हुए मुस्करा उठे, 'दुष्यंत, तुमने आज भी मेरी मनःस्थिति को भांप लिया. अब तुम्हीं बताओ, कलरव के लिए जिस लड़की को हमने पसंद किया है, उसे आज देखने और अपनी रज़ामंदी देने का सुअवसर तुम्हें देकर मेरी ख़ुशी में इज़ाफ़ा तो होना ही होना है.'

पर, इसके पहले कि दुष्यंत प्रतिक्रिया करता, किन्वा बोल पड़ी, 'बाबूजी, आपने इतना बड़ा फ़ैसला हम सभी से पूछे बग़ैर कैसे ले लिया?'

'मतलब?' बाबूजी की भौंहें तन गयीं.

'मतलब यह है कि मैंने भी एक अच्छी लड़की पसंद की है जिसे कलरव जी ने भी देखा है. वैसे भी कलरव जी किसी शहरी लड़की से ही शादी करना चाहेंगे, गांव-देहात की लड़की से नहीं.'

बाबूजी को बातचीत के बीच में किन्वा का टपकना अच्छा नहीं लगा तो दुष्यंत ने मौक़े की नज़ाकत को देखते हुए कहा, 'हां, बाबूजी! किन्नू ठीक ही तो कहती है. वो भी तो इस परिवार की अहम सदस्य है और इस परिवार की छोटी बहू बनने वाली लड़की के चुनाव में ज़्यादा समझदारी दिखाएगी.'

बातचीत के बीच में चुपचाप बैठा कलरव धीरे से खिसक गया. जाते-जाते उसने किन्वा को ऐसे शिकायताना अंदाज़ में देखा जैसे कि यही बेकार बात करने के लिए हम यहां आये हैं. कुछ मिनट की चुप्पी के बाद दुष्यंत ने किन्वा से कहा, 'अच्छा तो जो लड़की तुमने कलरव के लिए देखी है, वह हमारे मोहल्ले के आसपास की ही होगी?'

किन्वा ने हामी भरी तो वह फिर बोला, 'तब क्यों ना हम भी वापस शहर चलकर उस लड़की को देख लें. हां,

यही उचित होगा क्योंकि मेरे इंडिया में रहते हुए अगर कलरव की सगाई-शादी हो जाये तो मैं सुकून से यू एस जा सकूंगा.'

मां-बाप सहित शहर वापसी जहां लफड़े ही लफड़े :

अगले दिन ही वे शहर वापस आ गये. पर, किन्वा नहीं समझ पा रही थी कि उसे क्या करना चाहिए. दरअसल, कलरव के लिए तो उसने कोई लड़की पसंद ही नहीं की है. उसने यह झूठ तो सिर्फ़ उसकी शादी टालने के लिए बोला था. पर, इस झूठ ने उसे बड़ी दिक्कत में डाल दिया है. बाबूजी ने तो शहर में आकर फ़्लैट में क़दम रखते ही किन्वा से कहा, 'आज का दिन शुभ है. तुम लड़की वालों से बात करके आज शाम को ही लड़की के देखने का कार्यक्रम रख लो. लड़की पसंद आते ही तुरत-फुरत सगाई कर लेंगे और कोई तामझाम किये बिना दुष्यंत की मौजूदगी में शादी भी निपटा देंगे. उसके बाद तुम भी दुष्यंत के साथ यू एस के लिए रुख़सत हो जाना. आख़िर, वह वहां कब तक अकेला रहेगा?'

बाबूजी की जल्दबाज़ी से किन्वा की नाक के ऊपर से पानी बहने लगा. अपना मतलब साधने के लिए उसने जो झूठ बोला, उसका हश्र क्या होगा, उसने इस बारे में तो गंभीरता से सोचा ही नहीं था. दोपहर तक उसके मन में कई बार यह विचार आया कि वह सभी को सच्चाई से अवगत करा दे. अंज़ाम देखा जाएगा. पर, हर बार कलरव कहीं न कहीं से आ टपकता और उसे ऐसा करने से रोक देता. आख़िरकार, वह सभी को यह बताते हुए कि वह आज शाम, लड़की देखने का कार्यक्रम तय करने जा रही है, वह तेज़ी से बाहर निकल गयी. उसे जाते देख, कलरव तो यह सोचता रह गया कि किन्वा इस मुसीबत से दोनों को कैसे उबारेगी. कोई घंटे भर बाद वह वापस आयी तो उसने बताया कि लड़की अपने कॉलेज़ की तरफ़ से एक टूअर पर गयी हुई है और दो दिन बाद ही वह वापस आएगी. किंतु, उसके इस बहाने से कलरव चिढ़ गया तथा उससे यह कहते हुए कि वह सच पर से पर्दा हटाने जा रहा है, सीधे बाबूजी के पास चला गया. उसे ऐसा करते देख, किन्वा के हाथ-पैर सुन्न हो गये.

ठीक उसी समय, दरवाज़े पर जोर से दस्तक हुई. कुछ लोग बाहर परेशान से खड़े किसी हादसे के बारे में बातें कर रहे थे. ड्राइंग रूम में अख़बार पढ़ रहे दुष्यंत ने गैलरी से निकलते हुए दरवाज़ा खोला तो उसे जो सूचना मिली, उसे सुनकर वह हतप्रभ रह गया. एक वृद्ध ने भर्राए गले से पूछा, 'अजी, कलरव जी कहां? उन्हें तत्काल बुलाइए. सेंट मैरी क्रेश में भयंकर आग लगी है और उनके दोनों बच्चे बुरी तरह झुलस गये हैं. वे ज़िला अस्पताल के आईसीयू में ऐडमिट हैं.'

अनबूझ पहेलियों का सच :

ख़बर सुनकर कलरव अवाक रह गया. उसे लगा कि जैसे बिजली के तेज़ झटके ने उसे निर्जीव बना दिया हो. यह ख़बर किचेन से किन्वा भी सुन रही थी जो वहां भागते हुए आयी और बाबूजी-अम्मा को पीछे धकेलते हुए चीख़ उठी, 'अरे, क्या हुआ, मेरे अभि और तन्मया को?' वह बेतहाशा गला फाड़कर रोने लगी.

जब बाहर खड़े लोगों ने उसे बताया कि क्रेश में आग से झुलसे उनके बच्चे अस्पताल में ज़िंदगी और मौत से जूझ रहे हैं तो उसने स्तंभित खड़े कलरव को जोर से झकझोरा और उसे खींचते हुए बाहर भागी. दोनों के जाने के बाद, दुष्यंत को समझ में आने लगा कि उसकी आठ वर्षों तक की ग़ैर-मौजूदग़ी में किन्वा और कलरव ने क्या-क्या गुल खिलाए हैं. लिहाजा, उसने बाबूजी से कहा, 'इस ख़ानदान के वारिस अस्पताल में मौत से लड़ रहे हैं, जल्दी अस्पताल पहुंचिए वरना बहुत बुरा हो जाएगा.'

बाबूजी-अम्मा को यह घटना और सारी बातें अनबूझ पहेली की तरह लग रही थीं. झुलसे हुए बच्चे, ख़ानदान के वारिस और उनका अस्पताल में भर्ती होना तथा किन्वा एवं कलरव का भागकर अस्पताल जाना. इन सारी बातों से वे तो बिल्कुल अनभिज्ञ हैं. आख़िर, दुष्यंत के अमरीका जाने के बाद, जो कुछ यहां किन्वा और कलरव की मौजूदगी में हुआ वह सब किसी अनबूझ पहेली की तरह क्यों लग रहा है. बहरहाल, सभी ने दोनों बच्चों को बचाने के लिए तन-मन-धन से कोशिश की. अंततोगत्वा, उनकी मेहनत रंग लायी. न केवल दोनों बच्चों की जान बची बल्कि उनके झुलसे हुए बदन के दाग भी बहुत गहरे नहीं थे. डॉक्टर कैलाश ने बताया कि जवान होते-होते वे दाग भी नहीं रहेंगे.

अब यू एस ही दुष्यंत का मुकाम है :

उस दिन दुष्यंत को एयरपोर्ट पर छोड़ने बाबूजी-अम्मा के साथ-साथ कलरव-किन्वा और दोनों बच्चे अभि और तन्मया भी आये थे. बाबूजी को कुछ भी अच्छा नहीं

लग रहा था. इन चंद दिनों में जो कुछ अपने ही परिवार में देखा, उस पर उन्हें यक़ीन नहीं हो रहा था. किन्वा जो दुष्यंत से ब्याही थी, अब उसके छोटे भाई कलरव की पत्नी बनकर रहेगी. पर, अब दुष्यंत का क्या होगा? वे सोच रहे थे कि इस पूरे घटना-क्रम में दोषी किसे ठहराया जाए और पीठ किसकी थपथपायी जाए.

दुष्यंत ने अब तक अपराधबोध से ग्रस्त कलरव का कंधा पकड़कर जोर से झकझोरा और कहा, 'दरअसल, तुमने सही किया. किन्वा की कमी को पूरा किया. आख़िर, वह आठ सालों तक अकेली कैसे रह पाती? उसे किसी पुरुष का साथ चाहिए था; यह बात अलग है कि जो पुरुष उसे संस्कारों और कर्मकांडों के जरिए मिलना चाहिए था, वह यूं ही मिल गया. लेकिन, मैं बहुत ख़ुश हूं. तुम दोनों की मन-चाही मुराद तो पूरी हुई ही, मेरी भी मंशा पूरी हो गयी मैं बचपन से स्वामी विवेकानंद की तरह अविवाहित रहकर मानव-सेवा करना चाहता था. दरअसल, मेरे मन में स्त्री के प्रति कोई आकर्षण था ही नहीं. तभी तो मैं स्त्री नाम की बला से बच निकला हूं. मैंने यू एस में वेदांत सोसायटी ज्वाइन कर ली है. वीक-एंड पर और ज़्यादातर छुट्टियों पर मैं वहीं चला जाता हूं. मजे से टाइम पास हो जाता है. वहां मैं लोगों को वेदांत और भारतीय दर्शन के बारे में बताता हूं. लेक्चर देता हूं. हां, मुझे यही अच्छा लगता है. मेरा भविष्य बहुत उज्ज्वल है. तुम मेरे बारे में किसी भी तरह से चिंता मत करना. हां, बाबूजी-अम्मा से मेरा निवेदन है कि वे भी मेरे भविष्य को लेकर आश्वस्त रहें. मैं अपने वर्तमान से जितना ख़ुश हूं, भविष्य से भी उतना ही ख़ुश रहूंगा.'

दुष्यंत की बातें सुनकर किन्वा के साथ-साथ अम्मा-बाबूजी की आंखें भी लगातार बरस रही थीं. आख़िर, वे कर ही क्या सकते थे? उनके बड़े बेटे के जीवन में कोई संन्यासी बचपन से ही घुस आया था.

उन्होंने अश्रुपूरित नयनों से हाथ हिलाकर दुष्यंत को अलविदा किया तो उसने फुसफुसाकर कहा, 'गुड बॉय, मैं ख़ुश हूं....'

सी-६६, विद्याविहार, नई पंचवटी,
जी. टी. रोड, (पवन सिनेमा के सामने),
जिला : गाजियाबाद (उ. प्र.),
मोः ९९१०३६०२४९,
ई-मेल : drmanojs5@gmail.com

कविता

बेरोज़गार लड़के

अशोक कुमार

बेरोज़गार लड़के!
रोज़ मायूस होते हैं –
अपनी बेरोज़गार प्रेमिका से मिलकर.
जिसके सपनों पर भारी है
शादी करने का दबाव,
बेरोज़गार लड़के!
क़िताब पढ़ते,
अख़बार चाटते,
फ़ार्म भरते,
और एग्ज़ाम की तारीख़ों पर
गोले लगाते हैं.
बेरोज़गार लड़के!
परीक्षा परिणामों के इंतज़ार में
नारे लगाते,
लाठियां खाते,
पीठ की चोटों को सहलाते हुए,
फिर से जुट जाते हैं...
अगले एग्ज़ाम के लिए,
बेरोज़गार लड़के!
मम्मी की चाय बनाते,
बहन के साथ जाते,
भाई का सामान ढोते,
पिता की डांट सुनते हुए,
खेलते रहते हैं...
भतीजे-भतीजियों के साथ,
बेरोज़गार लड़के!
डिग्रियों को पलट-पलटकर
यह ढूंढते हैं...
कि आख़िर ग़लती कहां हुई.

ज़िला : चंबा, हिमाचल प्रदेश
(वर्तमान में रोहिणी दिल्ली)
मो. : ९०१५५३८००६

'थैंक यू दोस्त'

शुभा ओझा

जन्म - गोरखपुर, (उ. प्र.)
शिक्षा : जीव विज्ञान में परास्नातक, बी. एड.
लेखन विधाएं - कविता, कहानी और संस्मरण.
: प्रकाशन :
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित.
अभिरुचि - हिंदी शिक्षण और हिंदी साहित्य में लगाव.
रूट्सटू हिंदी की संचालिका.
: संप्रति :
शिकागो (अमेरिका) में निवास.

लॉकडॉउन की दोपहर में अकेले टाइम पास करना कितना मुश्किल हो जाता है, तो मैंने सोचा क्यों ना चाय ही बना लूं. वैसे तो मैं कभी भी दोपहर में चाय नहीं पीता, लेकिन पता नहीं क्यों आज कुछ अच्छा नहीं लग रहा था, तो सोचा थोड़ा मूड चेंज़ करने के लिए चाय ही बना लूं. किचन में जाकर मैंने गैस पर चाय चढ़ा दी. वैसे मैं यहां बता दूं, कि आज तक मैंने किचन में कोई काम नहीं किया, क्योंकि मेरी उम्र के लोग अपने ज़माने में किचन से संबंधित सारे कामों के लिए अपनी मां या पत्नी पर ही निर्भर रहते थे, लेकिन बुढ़ापे में जब बात बेटी या बहू के काम करने की आती है, तो दिल कहता है कि क्यों ना बच्चों की थोड़ी–सी मदद कर दी जाए. बस, आज तक यह नहीं समझ आया कि यही दिल अपनी जवानी में सरला की मदद के लिए क्यों नहीं कुछ कहता था, सरला यानी मेरी धर्मपत्नी, जो कि अब इस दुनिया में नहीं है.

आज से दो साल पहले सरला के गुज़र जाने के बाद मेरे पास दो ऑप्शन बचे थे. एक, मैं अपनी बची-खुची ज़िंदगी भारत में अकेले काट लूं या दूसरा ऑप्शन, अपने बेटे और बहू के साथ अमेरिका चला जाऊं. दोस्त और रिश्तेदारों ने अपने देश में रहने की सलाह दी. साथ में यह भी समझाया, 'विदेश में तुम बिल्कुल अकेले हो जाओगे. बेटा और बहू कुछ दिन तो बहुत खातिरदारी करेंगे फिर उसके बाद तुम्हें पूछेंगे भी नहीं.' मैंने भी सबकी सुनी और फिर उसके बाद दूसरा ऑप्शन चुना. सरला के जाने के बाद मैं अंदर से बहुत टूट चुका था, या ये कहें कि डर चुका था. अब मैं अपने इकलौते बेटे को जीते जी बिल्कुल नहीं खोना चाहता था. जब तक हम किसी के साथ होते है, ज़िंदगी बहुत आसान लगती है कि जैसे नदी में कोई नाव हौले-हौले बहुत आराम से चलती है, लेकिन जैसे ही हम अकेले होते हैं, पूरी दुनिया वीरान हो जाती है. लाखों-करोड़ों लोगों से भरी इस दुनिया में भी हमें अपना कोई नहीं

दिखता. चार दीवारी के बीच में अकेले ज़िंदगी इतनी स्लो हो जाती है कि जैसे घड़ी की मिनट वाली सुई. अकेले घर में बैठे हुए आप अपने दिल की धड़कन आराम से सुन सकते हैं, जो किसी और के साथ रहने पर संभव नहीं है.

जिसने मेरा हाथ पकड़ कर अग्नि के समक्ष साथ फेरे लेते हुए सात जन्मों तक साथ निभाने का वादा किया था, वो इसी जन्म में अधूरे सफ़र में मेरा हाथ छोड़कर चली गयी. जिसने मेरे द्वारा बनाए गये मकान को रहने लायक घर बनाया, जिस घर में हम दोनों ने अपने सभी सुख-दुःख साझा किये, अब उसी घर में अकेले रहने की मेरी बिल्कुल हिम्मत ना थी. विधिपूर्वक सरला का अंतिम संस्कार करने के बाद मैं अपने बेटे, बहू और शिवी के साथ यहां अमेरिका आ गया.

अमेरिका में कुछ महीने तो बहुत आराम से निकल गये लेकिन फिर यहां भी वही अकेलापन महसूस होने लगा जिससे भागते हुए मैं अपने देश से परदेश तक आ पहुंचा था. बेटा और बहू दोनों ऑफ़िस के लिए सुबह ही घर से बाहर निकल जाते, छोटी-सी पोती शिवी भी स्कूल चली जाती, मैं पूरा दिन अकेले बैठा बोर होने लगा.

एक दिन मैंने सुपरस्टोर में सेल्स मैन का एडवर्टाइज़मेंट देखा, उसी दिन शाम को मैंने बेटे से स्टोर में काम करने के लिए पूछा, उसने साफ़ मना कर दिया. वो बोला, 'पापा, आपने ऐसा सोच भी कैसे लिया कि मैं आपको स्टोर पर काम करने दूंगा. यहां अगर आपको किसी चीज़ की कमी हो तो प्लीज़ मुझे बताइए, मैं आपकी सभी ज़रूरतों को पूरा करूंगा. मेरे रहते हुए आपको स्टोर पर काम करने की जरूरत नहीं है.'

'मुझे यहां पर किसी प्रकार की कोई दिक्कत नहीं है, लेकिन इस उम्र में ऐसे घर पर बैठे रहना भी तो सही नहीं है, सिर्फ़ तीन घंटे की ही तो बात है, इसी बहाने मेरे भी हाथ-पैर चलेंगे.' मैंने बेटे को समझाने की कोशिश की लेकिन वह मेरी बात सुने बिना ही अपने कमरे में चला गया.

बेटे के जाने के बाद मैंने बहू से बात की, 'वो बेटा है, मेरी बात सुने बिना ही चला गया, लेकिन तुम तो मेरी बेटी हो, बेटियां तो मां-बाप का सारा दुःख हर लेती हैं. तुम तो मेरी बात को समझो, कुछ देर बाहर निकलने से मेरा मन भी बहल जायेगा.'

'पापा, आप बिल्कुल परेशान ना हो, मैं आपके लाडले से बात करती हूं. आप जो चाहें वो यहां कर सकते हैं. आपकी ख़ुशी में ही हमारी ख़ुशी है.

अगली सुबह बेटा मेरे पास आया और मुझे स्टोर पर काम करने की अनुमति दे दी, शायद रात में बहू ने बेटे को समझाया होगा.

बेटे बहू के ऑफ़िस निकलने के बाद मैं भी सुपरस्टोर में अपनी जॉब के लिए चला जाता और शिवी के स्कूल से वापस आने के पहले वापस आ जाता था. सुपरस्टोर घर के पास ही था तो मैं वॉक करके ही जाता, वहां पर हर उम्र के लोग काम करते थे, कुछ कॉलेज़ में पढ़ने वाले बच्चे थे, तो वहीं कुछ मेरे उमर के बुज़ुर्ग भी थे. यहां अमेरिका में बच्चे हाई स्कूल में पहुंचते ही अपनी ज़िम्मेदारियों को स्वयं उठाने के लिए पढ़ाई के साथ-साथ पार्ट टाइम जॉब भी करने लगते हैं. इसलिए यहां अमेरिका में स्टोर, पार्क और मॉल में काम करते हुए बहुत से युवा दिख जाएंगे जो अपने काम के साथ ही पढ़ाई भी करते हैं.

थोड़ी बहुत इंग्लिश बोलनी मुझे आती थी इसलिए मुझे स्टोर में काम शुरू करने में कोई ख़ास परेशानी नहीं हुई. कुल मिलाकर एक छोटी-सी नौकरी और पोती शिवी के साथ रुकी हुई ज़िंदगी फिर से आगे बढ़ने लगी.

अब जबकि सब ठीक चल रहा था कि तभी ये कोरोना वायरस पूरी दुनिया को तहस-नहस करने आ गया. हमारे स्टेट में जैसे ही कोरोना वायरस से संक्रमित लोगों की संख्या तीन सौ के पास पहुंची, तो यहां के गवर्नर ने लॉकडॉउन घोषित कर दिया, और मेरे बेटे ने मुझे और शिवी को घर से बाहर ना निकलने का सख़्त आदेश दे दिया. इस लॉकडॉउन में स्टोर तो ओपन है, लेकिन मेरी उम्र ज़्यादा होने की वजह से स्टोरवालों ने मुझे छुट्टी दे दी है, साथ में उन लोगों ने कहा कि स्थिति सामान्य होने पर आप फिर से अपनी जॉब पर वापस आ सकते हैं.

कभी-कभी लगता है ज़िंदगी सच में गोल है, जहां से चलना शुरू किया था फिर वहीं आ खड़े हुए. जिस अकेलेपन से मैं भाग रहा था अब लॉकडॉउन की वजह से फिर मेरे सामने खड़ा था.

जहां इस लॉकडॉउन में बेटा और बहू दोनों वर्क फ्रॉम होम कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ़ शिवी लैपटॉप पर ई-लर्निंग कर रही थी. इसी तरह हफ़्ते के पांच दिन निकल जाते थे, लेकिन सप्ताह के अंत में मुझे दो दिन ऐसे मिलते जैसे ग़रीब को महल मिल जाए. इन दो दिनों में शिवी के साथ खेलते हुए कब सोमवार आ जाता था पता ही नहीं चलता.

जब मेरी यादों का परिंदा घूम कर वर्तमान में वापस आया तो मैंने देखा मेरी चाय तो बन चुकी थी तो मैंने अपनी चाय ली और बालकनी में आ गया. चाय पीते हुए मैंने अपना फ़ेसबुक खोल लिया, तो देखा आज तो टेरी का बर्थडे है. 'टेरी' हमारी ही बिल्डिंग में एक छोटे से कुत्ते 'ब्राउनी' के साथ रहती है और उसकी बालकनी मेरी बालकनी से दिखती भी है. अधिकतर वो गर्मियों की लंबी शामों में अपनी बालकनी में बैठे हुए मुझे दिख जाती है.

जब मैंने पहली बार नीली आंखों वाली टेरी को देखा था, तो वो ब्राउनी के साथ वॉक कर रही थी, और मैं शिवी के साथ पास के ही प्ले ग्राउंड की तरफ़ जा रहा था. शिवी ने ही मुझे टेरी से मिलवाया था. उस दिन के बाद जब भी हम, एक-दूसरे से टकराते हाय हैलो के साथ थोड़ी बहुत बातें हो जातीं.

मैंने टेरी के बारे में लोगों से थोड़ी बहुत जानकारी इकट्ठा की, जिससे पता चला कि उसका पति मैक्स उसे छोड़कर किसी और स्त्री के साथ रहता है. टेरी की एक बेटी भी है, जिसकी शादी हो चुकी है और वो अमेरिका की ही किसी दूसरे स्टेट में रहती है.

टेरी इंडिपेंडेंट और हंसमुख महिला थी. स्कूल में जॉब के साथ घर के सभी काम ख़ुद ही करती थी. उसको देखकर मैं अक्सर सोचता था, कि इसकी भी स्थिति काफ़ी हद तक मेरे जैसी ही है, लेकिन मैं अपने डर की वजह से अपना देश और घर छोड़कर परदेश में चला आया जबकि यह औरत घर-बाहर का सारा काम अकेले ही करती है और देखने से ख़ुश भी लगती है.

यहां अमेरिका में आकर पता चला अकेले रहने वाले लोग दुनिया के हर कोने में हैं, लेकिन उन्होंने अपनी बची हुई ज़िंदगी को शानदार तरीक़े से जीने के लिए कोई ना कोई वजह ढूंढ़ ली है, जैसे कि टेरी ने ब्राउनी को अपने साथ रखा हुआ है. हम भारतीय अपने पूरे जीवन को किसी ना किसी रिश्ते में बांधे रखना चाहते हैं, लेकिन किसी भी वजह से अकेले नहीं रहना चाहते और वो भी बुढ़ापे में तो कतई नहीं. हमें बुढ़ापे में बेटा-बहू, पोते-पोतियां साथ में बेटी-दामाद सभी चाहिए. हम बुढ़ापे में अपना आत्म-सम्मान मार कर किसी के भी साथ रह लेंगे लेकिन अकेले नहीं रहेंगे.

वैसे तो हमारी बिल्डिंग में भारतीय परिवार के साथ साथ अमेरिकी परिवार भी रहते हैं, लेकिन उनमें से मुझे टेरी सबसे अलग दिखती थी. शायद उसका अकेलापन मुझे मेरे अतीत से जोड़ता था, लेकिन मैं टेरी की तरह मज़बूत बिल्कुल नहीं था. कहां वो औरत बड़ी मज़बूती से खड़े होकर अपनी ज़िंदगी की आने वाले सभी चुनौतियों का सामना अकेले कर रही है, और कहां मैं अकेलेपन से भागता हुआ रिश्तों की ओट में पनाह लिये बैठा हूं.

एक दिन सुबह वॉक करते हुए मुझे टेरी मिल गयी, वो भी ब्राउनी के साथ वॉक कर रही थी. उसने मुझे 'नमस्ते' बोला और मेरे साथ ही वॉक करने लगी.

उसके मुंह से नमस्ते सुनकर मैं चौंका, पूछने पर उसने बताया कि, 'मैंने इंडिया के बारे में इंटरनेट पर पढ़ा, वहीं

कविता

कुर्सियां

राजेंद्र निशेश

दिलचस्प होता है सत्ता की कुर्सियों का खेल
इनके चाहने वालों की तरह
और आम-जन के लिए
गिरती उम्मीदों का क़ुतुबमीनार,
अक्सर आशाओं का झरोखा दगा दे जाता है
और पसीने से लथपथ समय
बेबसी के दंश को झेलता, बेबस
आत्म-चिंतन का गोलाकार पिंड बन जाता है.
काठ की कुर्सियों में
इतनी ताकत कहां से आ जाती है
जो निर्लज्ज असैद्धांतिक एवं अबौद्धिक ग्रंथियों का
महा-अभिषेक करने लगती हैं,
क्यों काठ की कुर्सी कुनबापरस्ती और
व्यक्ति-पूजा के मोह को त्याग नहीं पाती.
बार बार दोहराया गया झूठ भी
सच लगने लगता है
गिरती हुई आस्थाएं
शीशे के टूटने सा दर्द को अपने भीतर समेटे
सिसकती रहती हैं पुनर्जन्म तक.

२१६८, सेक्टर-४०/सी,
चंडीगढ़- १६००३६. मो.
९४१७१०८६३२

मुझे नमस्ते के बारे में पता चला.'

उसकी बातें सुनकर मैं मुस्कुराया और इधर-उधर की बातें करने लगा. बातों ही बातों में मैंने उसका पूरा नाम पूछ लिया तो उसने बताया 'टेरी ओलिविया'. उसी दिन रात को फ़ेसबुक पर मैंने उसका नाम सर्च किया और उसे फ्रेंड रिक्वेस्ट भेज दिया था, कुछ दिनों बाद उसने मेरा फ्रेंड रिक्वेस्ट एक्सेप्ट भी कर लिया था.

आज फ़ेसबुक पर टेरी का बर्थडे देखते ही, सबसे पहले उसकी बालकनी पर नज़र गयी, लेकिन वहां कोई नहीं था. मैं अपनी चाय बालकनी में छोड़कर, अपने कमरे से कुछ हैप्पी बर्थडे वाले बैलून (गुब्बारे) उठा लाया. मैंने सभी बैलूनों में हवा भरकर अपनी बालकनी में लगा दिये, और अपनी चेयर पर बैठकर चाय पीने लगा. तभी जाने कहां से शिवी बालकनी में आ गयी. बैलूनो को देखकर ख़ुश होकर बोली, 'दादा जी, आज किसका बर्थडे हैं?'

'आज किसी ना किसी का बर्थडे तो होगा ही, और इस लॉकडॉउन में हम कहीं आ-जा नहीं सकते, तो मैंने सोचा बैलून बालकनी में लगा दूं, जिसका बर्थडे होगा वो देखेगा तो ख़ुश हो जायेगा.' मैंने शिवी से कहा.

मेरी बात सुनकर शिवी भागती हुई किचेन से कप केक उठा लायी और एक कप केक मुझे देते हुए बोली, 'अगर आज किसी का बर्थडे है तो क्यों ना बैलून के साथ-साथ कप केक खाकर सेलिब्रेट किया जाए.'

मैंने मुस्कुराते हुए शिवी के हाथ से कप केक ले लिया, और मन ही मन अपने ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि जिसके लिए हम यह बर्थडे बालकनी में सेलिब्रेट कर रहे है वो यह सब देखने के लिए कम से कम एक बार अपनी बालकनी में आ जाए.

जीवन के आख़िरी पड़ाव में कभी-कभी कुछ इंसान आपको ऐसी सीख दे जाते हैं कि आप उन्हें आजीवन अपने साथ अपनी यादों में रखना चाहते हैं. मैं पिछले कई महीनों से टेरी की हर गतिविधियों पर ध्यान लगाए हुए था कि कैसे वो अकेले अपने जीवन को व्यवस्थित किए हुए है. आज उसके बर्थडे पर मैंने यह सोच लिया था कि कोरोना काल ख़त्म होते ही मैं अपने देश वापस लौट जाऊंगा, अपने सेविंग के पैसों से खाली पड़े हुए घर में अनाथ बच्चों के लिए सरला के नाम से एक संस्था खोलूंगा और उन्हें पढ़ाया करूंगा. जहां तक बात रही बेटे-बहू, शिवी और टेरी की, तो उनसे मिलने अमेरिका आता रहूंगा, लेकिन अब अपने अकेलेपन से भागूंगा नहीं बल्कि डट कर सामना करूंगा.

तभी कप केक खाते हुए शिवी ने मेरा ध्यान भंग किया और बोली, 'दादा जी, मुझे लगता है कि आपको पता है कि आज किसका बर्थडे है, प्लीज़ बताइए ना..?'

उसकी बातें सुनकर मेरे मुंह से निकल गया, 'मिस टेरी' का.

शिवी ख़ुश होकर 'मिस टेरी, मिस टेरी' की आवाज़ लगाने लगी. शिवी की आवाज़ सुनकर नीली आंखों वाली टेरी अपने कुत्ते ब्राउनी के साथ अपनी बालकनी में आ गयी. उसे देख कर मैं भी अपनी चेयर से उठ खड़ा हुआ. वो हम दोनों को देख कर मुस्कुराने लगी, शायद उसे हमारा बर्थडे सेलीब्रेट करना अच्छा लगा था. इधर टेरी को देख कर शिवी ने जोर से आवाज़ लगायी 'हैप्पी बर्थडे मिस टेरी, हैप्पी बर्थडे.'

और टेरी को देखकर मेरे दिल से आवाज़ आयी,
'इक नया रास्ता दिखाने के लिए थैंक यू दोस्त.'

द्वारा श्री हर्ष पांडेय,
१०१ ई, अशोक नगर,
आनंद मशरूम्स फार्म,
बशारतपुर, गोरखपुर- २७३००४.
मो. +१ ८४७-३९३-५१२६
ई-मेल : imshubhra.ojha@gmail.com

ग़ज़ल

मैं

ईश्वर सिंह बिष्ट 'ईशोर'

धूप-सी गुनगुनी लगी वो लड़की शाम ढलते मिली।
भीगी-भीगी बारिश पुरकैफ़ ठंडी हवाएं चलते मिली।।
मौसम की मस्ती ज़िंदगी की हंसी ख़ुशी ज़िंदादिली।
नाज़ुक कली के लबों पे मुस्कान हंसी खिलते मिली।।
सांसें सांसों से जब मिलीं जीने की कोई वजह भी है।
ज़िंदगी की ख़्वाहिश को जीने की चाहत पलते मिली।।
ज़िंदगी में आख़िर शून्य के सिवा हासिल क्या होता है ?
ख़ुदा की दुनिया जिस्म की मिट्टी धरती में गलते मिली।

३२, इंदिरा नगर,
रतलाम- ४५७००१. (म. प्र.)
मो. : ७९७४७४०६७०

सलीब पर सपने

नीरजा हेमेंद्र

जन्म : पडरौना, कुशीनगर (उ. प्र.).
शिक्षा - एम. ए. (हिंदी साहित्य), बी. एड.,
: प्रकाशन :
कहानी संग्रह-' अमलतास के फूल', 'जी हां, मैं लेखिका हूं', 'पत्तों पर ठहरी ओस की बूंदें' (प्रेम कहानियां); '....और एक दिन', 'माटी में उगते शब्द' (ग्रामीण परिवेश की कहानियां); उपन्यास- 'अपने-अपने इंद्रधनुष'; 'उन्हीं रास्तों से गुज़रते हुए'.
कविता संग्रह : 'मेघ, मानसून और मन', 'ढूंढ कर लाओ ज़िंदगी', 'बारिश और भूमि' 'स्वप्न'
: सम्मान :
उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान द्वारा प्रदत्त विजयदेव नारायण साही नामित पुरस्कार, शिंगलू स्मृति सम्मान, फणीश्वरनाथ रेणु स्मृति; कमलेश्वर स्मृति (कथाबिंब) कथा सम्मान, लोकमत सम्मान, सेवक साहित्यश्री सम्मान. प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां, बाल सुलभ रचनाएं एवं सम-सामयिक विषयों पर लेख प्रकाशित. रचनाएं आकाशवाणी व दूरदर्शन से भी प्रसारित. अभिरुचियां-पठन-पाठन, लेखन, अभिनय, रंगमंच, पेन्टिंग, एवं सामाजिक गतिविधियां.
: संप्रति :
शिक्षिका (लखनऊ)

बड़े शहर में रहने का स्वप्न मेरी आंखों में कब से पल रहा था. कुछ याद नहीं. कदाचित बचपन से. जब से होश संभाला और अपने गांव के स्कूल में पढ़ने जाने लगा तब से ही शहर को सपनों में देखने लगा था. उसी समय यह विचार मेरे मन में आया कि गांव-देहात की अपेक्षा शहर अवश्य अच्छा होता होगा. शहर में क्या अच्छा होता होगा? वो गांवों से भिन्न कैसे होता होगा? इतनी समझ तो न थी मुझमें. किंतु लोगों से सुना था कि शहर में क्या नहीं होता है? चौड़ी साफ़-सुथरी सड़कें, उन पर दौड़ती चमचमाती गाड़ियां, बड़ी-बड़ी बिल्डिगें, अच्छे-अच्छे पक्के मकान, सब कुछ तो होता है शहरों में. हमारे गांव की भांति थोड़े ही कि कच्ची सड़कें....पगडंडियां, छप्पर...खपरैल.... इक्के-दुक्के पक्के मकान और रोज़मर्रा की आवश्यकताएं पूरी करने हेतु छोटी-छोटी कुछ दुकानें. यही तो था मेरा छोटा-सा गांव. बस....उसी समय से शहर में रहने का स्वप्न मेरी आंखों में पलने लगा था.

मेरे सपने की उड़ान को गति दी गांव के हमारे सरकारी विद्यालय में पढ़ाई जाने वाली हमारे महान व्यक्तित्व की पुस्तक ने जिसमें अनेक वैज्ञानिकों, लेखकों, खिलाड़ियों, नेताओं, अभिनेताओं की जीवनियों ने. उनके संघर्ष करने व लक्ष्य प्राप्त कर प्रसिद्धि प्राप्त करने में शहर की महत्वपूर्ण भूमिका मुझे प्रभावित करती.

मैं भी ऐसा ही कुछ करना चाहता था. मेरे सपनों को पूरा करने के लिए शहर आवश्यक था. मेरे इस छोटे से गांव में न तो बड़े स्कूल-कॉलेज़ हैं, न बड़ी संस्थाएं हैं, न ही बड़े प्रतिष्ठान...जिसमें स्वयं को सिद्ध किया जा सके. यही कुछ वजहें थीं कि गांव से विरक्ति व शहर से मेरी आसक्ति बढ़ती जा रही थी.

प्रारंभिक शिक्षा गांव से पूरी कर मैं शहर में रहने वाले अपने रिश्तेदार

के घर आकर आगे की पढ़ाई करने लगा. गांव की खेतीबारी से मेरे पिता किस प्रकार मेरी पढ़ाई के ख़र्चे निकालते होंगे, उसका मुझे उस उम्र में कतई भान न था. बाद में मुझे ज्ञात हुआ कि मात्र मेरे रिश्तेदार के घर रहने से पिता मेरे उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं हो गये थे जैसा कि मैं उस समय समझ रहा था. बल्कि वो मेरे रहने, खाने-पीने, पढ़ाई-लिखाई आदि के ख़र्चे मेरे उस रिश्तेदार के पास भेजते थे.

अपने पिता के परिश्रम का मूल्य मैंने समझा और मन लगाकर पढ़ने लगा. परिणामस्वरूप मैंने दसवीं की परीक्षा अच्छे अंकों में उत्तीर्ण की. ग्रीष्मावकाश में मैं गांव चला गया.

''छोटका बाबू आ गये का शहर से..?'' पड़ोस के जमुना अंकल ने मेरे आने की बात जानकर बाबूजी से पूछा.

''हां... आ गये. परसों आये हैं.'' बाबूजी ने कहा.

''बाबू ठीक-ठाक हैं?'' जमुना अंकल ने मेरा हाल पूछा.

''हं...ठीक है.'' बाबूजी ने संक्षिप्त उत्तर दिया.

''अब काहे चिंता कर रहे हैं. अब तो छोटका बाबू इहैं रहिहैं.'' जमुना अंकल ने बाबूजी से कहा.

''नहीं जमुना, पंद्रह दिन की छुट्टी में घर आया है छोटका. छुट्टी ख़त्म होते ही शहर चला जायेगा.'' बाबूजी ने जमुना से कहा और उदास मन से भीतर आ गये.

जमुना अंकल और बाबूजी की बात सुनकर भी अनसुना करते हुए मैं अपने काम में लग गया. बस, दो हफ़्ते और गांव में रह कर शहर चला जाऊंगा.

''बेटा, हम सब चाहते हैं कि तुम अब यहीं रहो और खेती-बारी के काम में बड़े भाई का हाथ बंटाओ.'' दिन भर के बाद शाम को बाबूजी खेतों की ओर से लौट कर आये और मुझसे कहा. बाबूजी की बात सुनकर ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने मेरे सपनों को छिन्न-भिन्न कर दिया.

''बाबूजी, अभी तो मैंने पढ़ाई शुरू की है. मैं आगे और पढ़ना चाहता हूं.'' मैंने बाबूजी से कहा.

''क्या करोगे पैसे बरबाद करके? शहर से लौटकर खेतीबारी ही करोगे?'' दो टूक शब्दों में बाबूजी ने कहा.

''बाबूजी, मेरी पढ़ाई पर ज़्यादा पैसे कहां ख़र्च होते हैं? मात्र फ़ीस और क़िताब कापियों के ही तो पैसे ख़र्च होते हैं,'' मेरे मुंह से सहसा निकल गया. मुझे इस बात का एहसास था कि मुझे बाबूजी से इस तरह, ऐसी बात नहीं करनी चाहिए थी. मैं इतना बड़ा तो नहीं हो गया कि बाबूजी से ऐसी बात कह सकूं?

''क्या बोला? बस, कॉपी-क़िताब और फ़ीस के पैसे लगते हैं...?'' हमेशा धीमा और मीठा बोलने वाले बाबूजी की आवाज़ सख़्त हो उठी थी.

''तुम्हें पता है... तुम्हारे वो सगे रिश्तेदार जिनके घर में तुम रहते हो, वे तुम्हारे खाने-पीने, रहने के साथ साबुन-तेल, बिजली-बत्ती तथा उस प्रत्येक चीज़ के पैसे लेते हैं, जिनका प्रयोग तुम करते हो. वहां समीप के मुन्ना पी. सी. ओ. वाले के फ़ोन से उनका संदेश मिलते ही मैं तुरंत पैसों की व्यवस्था कर भेज देता हूं. इतने पैसों में तुम कहीं और भी कमरा लेकर रह सकते हो. रिश्तेदारों के घर रखने का उद्देश्य मात्र यह है कि मुझे और तुम्हारी माई को तुम्हारी चिंता में रातभर जागना न पड़े.'' तेज़ बोलते-बोलते बाबूजी की आवाज़ धीमी पड़ने लगी थी. वो थक गये थे.

आत्मग्लानि के कारण दृष्टि नीची किये मैं चुपचाप खड़ा था. बाबूजी बाहर ओसारे में जाकर चारपाई पर बैठ गये. मैं दीवार से टेक लगाए अभी तक वहीं खड़ा था. रसोई से बर्तन उठाने-रखने की आवाज़ें आ रही थीं. माई रसोई में काम कर रही थी. वह बाहर निकल कर देखने तक नहीं आयी. बाबूजी से ऐसी बात करने के कारण कदाचित माई मुझसे नाराज़ थी. अन्यथा ऐसी पारिवारिक समस्याओं से संबंधित बातों पर माई हम लोगों के साथ खड़ी रहती है.

मैंने वहीं खिड़की से झांक कर बाहर बरामदे में देखा. बाबूजी अभी तक ओसारे में चारपाई पर बैठे थे तथा अंगोछे से बार-बार माथे पर छलक आयी पसीने की बूंदों को पोछ रहे थे. आत्मग्लानि के कारण मैं देर तक वहीं खड़ा रहा. आज मुझे अपनी पढ़ाई पर हो रहे वास्तविक ख़र्चों के बारे में ज्ञात हुआ था. मैं तो अब तक यही समझ रहा था कि बाबूजी मात्र क़िताब-कॉपी और फ़ीस के पैसे देते हैं. शेष सब कुछ रिश्तेदार के घर रहने से हो जाता है. आज मुझे पहली बार रिश्तेदारी का अर्थ और उसकी सीमाओं का यथार्थ पता चला था. यद्यपि रिश्तों और रिश्तेदारी के यथार्थ को और ठीक से समझने के लिए अभी मैं छोटा था.

मुझे पढ़ना था. शहर में रहना था. भले ही किसी रिश्तेदार के यहां न सही, मैं कहीं और रह लूंगा. कोई छात्रावास देख लूंगा. मैंने बाबूजी के भेजे पैसे और हॉस्टल के ख़र्चे का हिसाब जोड़ा और अनुमान लगाया कि जितने

पैसे बाबूजी भेजते हैं उससे कम पैसों में मैं छात्रावास में रह सकता हूं. माई-बाबू जी को समझा लूंगा कि चिंता करने की कोई आवश्यकता नही है. बहुत से बच्चे ऐसे रहते हैं. माई को किसी प्रकार समझा लिया मैंने.

मैं छात्रावास में रहकर पढ़ने लगा. अब पहले की अपेक्षा कम पैसे ख़र्च होते. देखते-देखते दो वर्ष व्यतीत हो गये. मेरा इंटरमीडिएट पूरा हो गया. मैं ग्रेज़ुएशन की तैयारी करने लगा.

''बाबू... संदीप, अब बस करो. घर आ जाओ, खेती बारी का काम सम्हालो.'' एक दिन बाबूजी का फ़ोन आया. बाबूजी जानते थे कि जितनी बड़ी पढ़ाई होगी उतना ही अधिक पैसा ख़र्च होगा.

''बाबूजी, अभी मैं ग्रेज़ुएशन की तैयारी कर रहा हूं. पैसे के लिए आप चिंतित न होइए. मैं यहां एक-दो ट्यूशन कर कुछ पैसों की व्यवस्था कर लूंगा.'' इस प्रकार अपनी आगे की पढ़ाई के लिए मैं बाबूजी को मना पाया.

प्रयत्न कर मैं दो बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने का काम पा गया. अब मेरी दिनचर्या थोड़ी परिवर्तित व व्यस्त हो गयी थी. प्रातः शीघ्र उठकर अपने लिए भोजन के नाम पर कुछ बना लेना. तैयार हो कर नौ बजे तक कॉलेज़ पहुंच जाना. शाम के चार बजे आने के पश्चात कुछ देर शाम के भोजन आदि की तैयारी कर, थोड़ा आराम कर घर से पुनः निकल पड़ना. क्योंकि छः बजे मेरे पहले ट्यूशन का समय निर्धारित था. घंटे, सवा घंटे पढ़ाने के पश्चात मुझे दूसरे ट्यूशन पर जाना रहता था. इस प्रकार दोनों ट्यूशन पढ़ा कर नौ बजे तक कमरे पर आ जाता.

यदि सुबह कुछ अधिक भोजन बनाकर गया होता तो वही खा लेता. अन्यथा तो शाम को भोजन बनाने का काम भी करना पड़ना पड़ता. क्योंकि सीमित बजट में होटल में खाना संभव नहीं था. बाबूजी भी तो समझाया करते थे कि होटल का भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है. इतना कुछ कर के इस समय तक मैं थक जाता.

अब मुझे पढ़ाई पर भी थोड़ा समय देना था. जो कि मेरे लिए अति आवश्यक था. पढ़ने के लिए ही तो मैं यह सब कर रहा था. किंतु कभी मैं पढ़ पाता और कभी थक जाने के कारण यूं ही सो जाता. पुस्तकें सिरहाने रखी रह जातीं. कुछ बनने.....कुछ करने की लगन थी मेरे अंदर अतः पढ़ने के लिए किसी न किसी प्रकार थोड़ा समय निकालने का प्रयत्न करता.

मेरा ग्रेज़ुएशन पूरा हो गया. सैलानियों की भांति छात्रावास का जीवन जीते-जीते मैं पारिवारिक जीवन के लिए तरस गया था. पारिवारिक जीवन से तात्पर्य यह कतई नहीं कि मैं विवाह करना चाहता था, बल्कि माई-बाबूजी, भइय्या तथा गांव के नाते रिश्तेदारों के स्नेह की छांव में रहने की इच्छा होने लगी थी.

जो स्नेह, जो अपनापन, बातों की जो मिठास मुझे गांवों में दिखाई देती, वो शहर में नहीं दिखती. यद्यपि शहर में मेरा अपना कोई नाते-रिश्तेदार तो न था. कुछ परिचित...कुछ मित्र अवश्य बन गये थे. मैं जानता था कि यह शहरी हवा से प्रभावित नकली मुखौटे ओढ़े हुए चेहरे हैं, जो आवश्यकता पड़ने पर मेरे काम नहीं आयेंगे.

''संदीप भइय्या तो ब्याह लायक हो गये हैं. ब्याह करने का मन नहीं है क्या अब भी?'' छुट्टियों में जब भी मैं घर जाता पास-पड़ोस के लोग माई-बाबूजी से कहते.

''हम सब की तो इच्छा है. किंतु संदीप भइय्या माने तब न?'' बाबू जी कह देते.

मुझसे दो वर्ष बड़े भइय्या की तीन वर्ष की एक बिटिया थी. भइय्या दूसरी बार पुनः पिता बनने वाले थे. भइय्या को देखकर प्रतीत होता जैसे वो अपने जीवन से संतुष्ट थे. ख़ूब ख़ुश रहते. बाबूजी के साथ खेतीबारी में हाथ बंटाते. छोटी बच्ची के साथ खेलते.

इस बार गर्मी की छुट्टियों में मैं दस दिनों तक गांव में रुका रहा. मिट्टी से लिपे घर से उठती मिट्टी की सोंधी महक, जेठ माह की तीव्र धूप को परास्त करती पेड़ों की शीतल छांव, महुए की मादक गंध, आम के बागों से उठती मंजरियों के सौरभ तथा छोटे टिकोरों से भरी लहराती आम की हरी-भरी डालियां... शाम होते ही गांव के सीवान पर फैली बंसवारियों में चहचहाती चिड़ियों का संगीत... रात्रि के अंतिम प्रहर में जुगनूओं की जगमग से झिलमिलाते शांत खड़े वृक्ष... नन्हें-नन्हें तारों से सजा स्वच्छ नीला आकाश....सब कुछ मुझे अच्छा लगा.

इन दस दिनों में मानों पहली बार मैंने गांव के सौंदर्य को महसूस किया और गांव को जिया. बचपन गांव में व्यतीत हुआ किंतु कभी इस ओर ध्यान न दिया. शहर में रह कर गांव के प्राकृतिक सौंदर्य का मूल्य समझ में आ रहा था. इन सबके बीच शहर में बसने, रहने तथा कुछ करने की

अदम्य इच्छा सर्वोपरि रही. मैं गांव से वापस शहर आया. गांव का अपना सुकून था. साथ ही परिवार के लिए दो समय की रोटी के लिए संतुष्टि भरा संघर्ष था, तो दूसरी ओर शहर सपनों, असीमित इच्छाओं, रोटी-रोज़गार, छत, साथ ही अपनी पहचान स्थापित करने की जद्दोजहद से भरा था. जब गांव सुकून की नींद सोता, तब भी शहर भागता रहता. इन सबको अनदेखा कर मैं अपने लक्ष्य की ओर देख रहा था, जिसे पाने के लिए मैं शहर में आया था.

मेरी ग्रेज़ुएशन पूरी हो गयी थी. अब यदि मैं आगे और पढ़ाई नहीं करूंगा तो मुझे यह छात्रावास छोड़ना पड़ेगा. इस स्थिति में यहां रहने के लिए मुझे क़िराये पर कमरा लेना पड़ेगा. जिसके लिए पैसों की व्यवस्था करना मेरे लिए थोड़ा कठिन था. बाबूजी के भेजे पैसे और कुछ ट्यूशन के पैसे मिलाकर भी मैं यह नहीं कर सकता था. अतः मैंने तय किया कि अभी छात्रावास नहीं छोडूंगा. स्नातकोत्तर की कक्षा में मैंने प्रवेश ले लिया.

छात्रावास में रहते हुए मैं अध्ययन कम और नौकरी की तलाश में अधिक रहने लगा. मेरा अधिकांश समय नौकरी की तलाश और उसकी तैयारी में व्यतीत होने लगा. समय व्यतीत होता जा रहा था. अभी तक मेरे हाथ में कुछ भी सकारात्मक नहीं आया था.

देखते-देखते लगभग डेढ़ वर्ष व्यतीत हो गये. नौकरी की फ़ाइल आवेदन पत्रों, अख़बारों की कतरनों, अनेक फॉर्मों, बैंक की रसीदों से मोटी होती जा रही थी. गांव से बाबूजी से पैसे मंगवाने में मुझे शर्म आने लगी थी. विवशता थी. आय का अन्य कोई साधन न था. शहर में आकर कुछ बनना, कुछ बड़ा करना तो दूर अभी तक मैं अपनी रोज़ी-रोटी का प्रबंध तक न कर पाया. मात्र छः महीने रह गये थे. उसके पश्चात मुझे छात्रावास छोड़ना ही पड़ेगा. उसके बाद मैं क्या करूंगा... कहां जाऊंगा...? कुछ समझ में नहीं आ रहा था. मैं निराश होने लगा था कि एक दिन सहसा मेरे नाम का एक लिफ़ाफ़ा आया. यूं तो अक्सर नौकरियों के लिए परीक्षाओं की सूचनाएं आया ही करती हैं लिफ़ाफ़ों में. किंतु ये कुछ अलग था. इसमें मेरे लिए नौकरी का नियुक्ति पत्र था. यद्यपि यह नौकरी मेरे सपनों के अनुरूप बड़ी न थी. किंतु ऐसी थी कि इससे मैं शहर में रहते हुए अपने ख़र्च संभाल सकता था.

मैंने यह निर्णय लिया कि अभी ये नौकरी ज्वाइन कर लूंगा ताकि छात्रावास छोड़ने के बाद मेरा ख़र्च चलता रहे, बाबूजी से मुझे पैसे न मंगवाने पड़ें. इस नौकरी के लिए मुझे यह शहर भी छोड़ना पड़ा. जिस दूसरे शहर में नौकरी लगी थी, वो इससे भी बड़ा शहर था. महानगर था.

उस महानगर में, जहां अब मैं रह रहा हूं... कम पैसों में एक साधारण-सा कमरा लेकर रहने लगा. यह कमरा मुझ अकेले को रहने के लिए ठीक ही था. कमरे के एक कोने में बनी आलमारी में अपनी पुस्तकें, प्रतियोगी परीक्षाओं से संबंधित नोट्स इत्यादि संभाल कर रख दिये ताकि इत्मीनान से पढ़ता रहूंगा और अपने सपनों को सच करूंगा.

नौकरी का पहला वेतन इतना था कि इस घर का क़िराया और मेरा खाना-पीना ऑफ़िस आने-जाने का ख़र्च, बिजली का बिल आदि के ख़र्च पूरे कर इतना भी नहीं बचा कि गांव में मैं बाबूजी के लिए कुछ भेज सकूं. यद्यपि बाबूजी ने मुझसे कभी कुछ भी नहीं मांगा. फिर भी मैं सोचता कि काश! मैं बाबूजी के पास अपनी कमाई के दो पैसे भेज पाता तो उन्हें कितनी ख़ुशी मिलती कि उनका बेटा शहर में जाकर इस योग्य हो गया है कि पिता के पास दो पैसे भेज सकता है. इस बात से उन्हें कितनी संतुष्टि और गर्व की अनुभूति होती.

नौकरी करते हुए मुझे छः माह हो गये. अब मेरे विवाह के लिए माई और बाबूजी का दबाव मुझ पर पड़ने लगा. मैं अभी विवाह नहीं करना चाहता था. बड़े और महंगे शहर में पारिवारिक जीवन का ख़र्च चलाना थोड़ा मुश्किल था.

''बिटवा, अब त नोकरी भी लाग गयी. अब का बाक़ी है?'' माई जब फ़ोन करती मुझसे कहती.

''माई, नौकरी का कुछ और इम्तहान दे लें, तब ब्याह के लिए सोचेंगे,'' मैं कहता.

''नाही, अब देरी न करब. पहिलै पढ़ाई ख़ातिर कहत रहौ. फिर नोकरी की बात रही. उहौ हो गयी. अब बताव, अब काहै देरी करत हव..?'' माई कह पड़ती.

इस प्रकार की बातें सुनकर तथा माई–बाबूजी की इच्छा जानकर अब मुझे अपने विवाह में विलंब करने का कोई औचित्य नज़र नहीं आ रहा था. माता-पिता के इस सपने को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी मेरा ही था. मेरे सपनों को पूरा करने का उत्तरदायित्व उन्होंने भरपूर निभाया है. अब मेरा उत्तरदायित्व है.

''माई, हम विवाह करेंगे. आप सब लड़की तलाश लो.'' एक दिन फ़ोन कर मैंने माई से कह दिया.

मेरे लिए लड़की तलाश ली गयी. आने वाली वैवाहिक लगन में मेरा विवाह हो गया. दो माह के पश्चात मुझे मेरी पत्नी अनीता को लेकर शहर आना था. मुझे अपने इस छोटे-से क़िराये के घर में अपनी पूरी गृहस्थी बसानी थी. मैं अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा करने में जुट गया. गैस सिलिंडर, चूल्हा, थोड़े-थोड़े खाद्य पदार्थ आदि ख़रीदने में मेरी तनख़्वाह ख़त्म हो गयी. अनीता आ गयी थी और थोड़े में घर चलाने लगी. मेरी तनख़्वाह से पूरे महीने घर चलाने की जद्दोजहद में दिन व्यतीत होते रहे.

''सुनिए, मेरी तबीयत ठीक नहीं लग रही है. लग रहा है डॉक्टर को दिखाना पड़ेगा.'' तीन माह पश्चात एक दिन अनीता ने मुझसे कहा. मैं अनीता को लेकर डॉक्टर को दिखाने गया.

''आप पिता बनने वाले हैं. अब इनको पौष्टिक आहार और थोड़े आराम की आवश्यकता है.'' डॉक्टर की बात से मैं प्रसन्न कम हुआ... नये उत्तरदायित्व के बोध से दबा हुआ अधिक महसूस करने लगा. अनीता को लेकर मैं घर आ गया.

''अनीता, ये तो ख़ुशी की बात है. लेकिन मैं बड़ी नौकरी की तलाश में यहां आया हूं. कुछ बड़ा करके नाम कमाना चाहता हूं... तुम समझ रही हो न कि मैं क्या करना चाहता हूं.'' घर आकर मैंने अनीता की ओर देखते हुए उसे समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा.

''हां, मैं आपका आशय समझ गयी. आप अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए और पढ़ना-लिखना चाहते हैं. जिसके लिए आपको समय चाहिए. मैं अपनी ओर से आपको घर गृहस्थी के झंझटों से दूर रखूं. जिससे आप अपना पूरा ध्यान पढ़ाई और अपना लक्ष्य प्राप्त करने में लगा सकें. यही चाहते हैं न आप..?'' अनीता की बातें सुनकर उसके कंधे पर हाथ रखकर मैं मुस्करा पड़ा.

नौकरी के साथ-साथ थोड़े बहुत बचे हुए समय में मैं अख़बारों में रिक्तियां व प्रतियोगी परीक्षाओं की पुस्तकें उठाकर देखता. समय ही कितना मिल पाता, जिसमें मैं ठीक से पढ़ाई कर पाता? थोड़े-थोड़े अंतराल के पश्चात अनीता को लेकर डॉक्टर के पास भी जाना रहता. इन सभी व्यस्तताओं में समय तीव्र गति से व्यतीत होता जा रहा था.

लघुकथा

समाजसेवा

कमलेश भारतीय

एक समाजसेवी संस्था की पत्रकार-वार्ता में गया. वहां किसी गांव में सिलाई स्कूल खोलने की चर्चा हुई. संस्था ने यों ही पत्रकारों से सुझाव मांगा कि कोई गांव आपके ध्यान में हो तो बताएं.

मैंने अपने ही गांव की जानकारी दी. वहां कभी सिलाई स्कूल नहीं खुला. सुझाव स्वीकार हो गया. गांव के सरपंच से बात की. पंचायत भवन में समारोह रखा गया. लड़कियां इतनी उत्साहित कि साठ लड़कियां सिलाई सीखने को तैयार. सबने पहले ही नाम लिखा दिये. भव्य उद्घाटन समारोह हुआ. बाद में जलपान.

जब राजनीतिक अतिथि चले गये तब एक लडकी झिझकती हुई मेरे पास आयी.

- कुछ बात करनी है. उसने धीमी आवाज़ में कहा.

- बताओ.

- पाजी. सरपंच ने पांच-पांच रुपये लिये हैं, हम लड़कियों से.

तभी सरपंच साहब आ गये. बात उन्होंने सुन ली थी.

एकदम से बोले - चाय क्या गुरुद्वारे ले जाकर पिलाता? उसके लिए हैं. समाजसेवी संस्था की इस समाजसेवा से भौंचक्का रह गया. मैं निरुत्तर.

१०३४ बी, अर्बन एस्टेट-२,
हिसार-१२५००५ (हरि.).
मो. ९४१६०४७०७५

शनैः-शनैः व्यस्तताएं इतनी बढ़ीं कि पढ़ाई और बड़ी नौकरी का विचार कहीं पीछे छूटता गया. घर-गृहस्थी चलाने के साथ नवजात के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व भी मेरे कंधों पर था. परिस्थितियों वश और मकान मालिक के परेशान करने के कारण यह घर मुझे छोड़ना पड़ा. इतने ही बजट में दूसरा घर मुझे लेना था. जो कि मिला किंतु उससे छोटा. समय के साथ उतने बड़े घर का क़िराया महंगा

हो चुका था. मेरा वेतन वहीं रुका था और महंगाई बढ़ती जा रही थी. मैं वहीं रुका था... समय आगे बढ़ता जा रहा था. मैं दो बच्चों का पिता बन गया.

''सुनिए...!'' आज अनीता कुछ कहना चाह रही थी किन्तु झिझक रही थी.

''हां...हां...। रुक क्यों गयी? कहो क्या बात है? '' अनीता को झिझकते हुए देखकर मैंने उससे कहा.

''शहर में मेरा दम घुटता है. मन नहीं लगता है.'' झिझकते हुए अनीता ने अपने मन की बात मुझसे कह ही दी.

उसकी बातें सुनकर उस समय तो मैं ख़ामोश रह गया. उस दिन ऑफ़िस में बैठ कर मैं सोचता रहा कि क्या अनीता ग़लत कह रही है? शहर में रह कर क्या मैं उन्मुक्त जीवन जी पाया? गांव के खुले प्राकृतिक परिवेश में, बाल सखाओं के साथ खेलते हुए जो बचपन मैंने गांव में व्यतीत किया है, क्या वो बचपन मैं अपने बच्चों को दे पाऊंगा?

एक छोटे से कमरे में रह रहा मेरा बेटा मेरे बाहर जाने-आने या किसी काम से कमरे का दरवाज़ा खुलने पर बाहर की गली में कौतूहल से देखता है. दो वर्ष का हो गया है. मैं ही जब कोई सामान लेने गली के नुक्कड़ की दुकान की ओर जाता तो उसे अपने साथ में ले लेता हूं. वो भी तब जब अनीता कहती है कि बाबू दिनभर घर में अकेले खेलता है. उसे बाहर नुक्कड़ तक साथ ले लो. मेरे साथ कुछ देर बाहर निकलकर बाबू कितना ख़ुश हो जाता है.

आज कार्यालय में बाबूजी का फ़ोन आया — ''बेटा, जब से शहर गये हो... हम नहीं जानते कि तुम कैसे और कहां पर शहर में रहते हो. हम और तुम्हारी माई शहर में आकर तुम्हे देखना चाहते हैं. तुम्हारी माई की बड़ी इच्छा है कि बेटा शहर में नौकरी करता है. उसे बड़ा गर्व है इस बात पर. तुम फ़ोन कर बता देना कि हम कब आवैं.'' बाबूजी की बात सुनकर मैं सोच में पड़ गया. मैं यही सोच रहा था कि माई-बाबूजी आयेंगे तो कहीं मेरे कारण शहर का प्रभाव उन पर ग़लत न पड़े. अतः मैंने व अनीता ने उनके रहने, खाने-पीने का अच्छा प्रबंध कर लिया. तत्पश्चात बाबूजी को आने के लिए फ़ोन कर दिया.

बाबूजी को लेने मैं स्टेशन गया. माई-बाबूजी ट्रेन से उतरे. वे अत्यंत ख़ुश थे. वे कौतूहल से स्टेशन की चकाचौंध देख रहे थे. ऑटो में बैठ कर मैं उनके साथ घर की ओर चल पड़ा. सड़क के दोनों ओर व्यवस्थित ढंग से बनी बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें तथा बड़ी-बड़ी कंपनियों के जगमगाते शो रूम देखकर बाबूजी का चेहरा गर्व से दपदपा रहा था, माथे तक गिरे घूंघट की ओट से अपने चारों ओर देखकर माई हक्की–बक्की थी. मुख्य सड़क से उतर कर ऑटो तंग गलियों वाले मुहल्ले में मुड़कर कर कुछ मिनटों में मेरे घर के आगे रुक गया.

मैं ऑटो से उतर गया. माई-बाबूजी अब भी ऑटो में बैठे थे. वे समझ नहीं पाये थे कि चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बड़ी-बड़ी बिल्डिंगें छोड़कर....संकरी गली में, छोटे-से पुराने घर के सामने ऑटो क्यों रुक गया...? मैं क्यों उतर रहा हूं?

''आइए, बाबूजी.'' मैंने कहा.

''क्या..? अब उतरना है.. यहीं?'' कहकर बाबूजी ऑटो से उतर गये. उनके पीछे माई भी उतर गयी.

बाबूजी की आंखें अब भी इधर-उधर कोई बड़ा घर ढूंढ़ रही थीं. इतनी देर में अनीता ने घर का दरवाज़ा खोल दिया था. माई-बाबू जी ने मेरे शहर के घर के इकलौते कमरे में प्रवेश किया. वे कमरे की दीवार से सटाकर बिछी चौकी पर बैठ गये. कमरे में पंखा चल रहा था फिर भी गर्मी बहुत थी. बाबूजी अंगोछे से पसीना पोंछ रहे थे. स्टेशन से घर तक आने के बीच का दोनों का दीप्त चेहरा अब तक मुरझा चुका था.

अनीता माई-बाबूजी के पैर छूकर रसोई में कुछ बनाने चली गयी थी. कुछ ही देर में अनीता दो गिलासों में शर्बत लेकर आ गयी.

''तुम नहीं पियोगे बेटा?'' बाबू जी ने पूछा. माई मेरे दोनों बच्चों के साथ बातचीत करने में लगी थी.

''नहीं बाबूजी, बस अभी थोड़ी देर में सब लोग भोजन करेंगे.'' मैंने कहा. माई बाबूजी ने शर्बत पिया और आराम से बैठ गये थे.

माई का मन मेरे बच्चों में लग गया था. कुछ देर में अनीता ने सबका भोजन लगा दिया. बाबूजी ने दरवाज़े के बाहर रखी बाल्टी के पानी से हाथ-मुंह धोया. अनीता माई को छोटे-से बाथरूम में लेकर गयी और वहीं हाथ-पैर धुलाया. सबने भोजन किया. बाबूजी तख़त पर लेट गये. शेष सबके आराम के लिए मैंने कमरे के फ़र्श पर चटाई और चादर बिछा दी. मैं जानता था कि अनीता रसोई के एक कोने में कुछ बिछाकर लेट गयी होगी.

गर्मी की दोपहर सबने आराम किया. शाम को रसोई में बर्तनों के उठाने-रखने की आवाज़ से मेरी नींद खुल गयी. बाबूजी तख़त पर सो रहे थे. चटाई पर माई बच्चों के साथ सो रही थी. मैं बिना आवाज़ किये धीरे से उठा ताकि किसी की नींद में खलल न पड़े. किंतु माई-बाबूजी जग गये.

''सांझ हो गयी का बेटा..?'' बाबूजी उठकर बैठ गये थे.

''हां, बाबूजी, चाय बन गयी है.'' बाबूजी उठे और इस बार छोटे बाथरूम में ही जाकर हाथ मुंह धोया. क्योंकि बाहर गर्मी बहुत थी. बाथरूम से आकर बाबूजी पुनः तख़त पर बैठ गये. माई भी उठकर हाथ-मुंह धोकर आ गयी.

''बेटा, हम सोचे थे कि शहर में तुम्हारे पास हफ़्ते-दस दिन रहेंगे किंतु अब लगता है कि हम एक दिन भी नहीं रह पायेंगे. कल ही हम गांव चले जायेंगे.'' बाबूजी ने कहा. उनके चेहरे पर निराशा के भाव स्पष्ट थे.

''क्या हुआ बाबूजी..? हम लोगों से कोई ग़लती हो गयी क्या? यदि कोई ग़लती हो गयी हो तो क्षमा करें. बाबूजी.'' मैंने माई व बाबूजी की ओर देखते हुए कहा.

''नहीं बेटा! बहुत बड़ी ग़लती तो हम लोगों से हो गयी है.'' मैं हकबक बाबूजी का मुंह देख रहा था.

''हम उसी समय नहीं चेत पाये, जब तुम बड़े शहर में जाकर बड़ा आदमी बनने का सपना देख रहे थे. काश! उस समय हम तुम्हें चेताते, समझाते तथा तुम्हारी इच्छाओं की बेलगाम उड़ान को रोक पाते.'' बाबूजी ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा.

''नहीं बाबूजी! मैं अभी और नौकरियों के फॉर्म भर रहा हूं तथा उनके लिए तैयारी व पढ़ाई कर रहा हूं.'' मैंने बाबूजी को समझाते हुए कहा.

''अब बाल-बच्चों व घर गृहस्थी की साज-सम्हार में लग जाओगे तो क्या पढ़ोगे और क्या फॉर्म भरोगे.'' बाबूजी ने कहा.

''बाबूजी कोशिश.....'' मेरी बात पूरी नहीं हो पायी थी.

''बेटा, हम गांव देहात में ज़रूर रहते हैं, पर शहर की हवा उधर भी आती है. शहरों में नौकरी मिलती नहीं है. पढ़े-लिखे बेरोज़गारों की संख्या बढ़ती जा रही है. शहर की मृगमरीचिका में रहते हुए तुमने इतने वर्ष व्यर्थ कर दिये. शहर के जिस घर में तुम रह रहे हो उससे अच्छे और बड़े घर में हम लोगों की गोरू-बकरी रहती है. तुम्हारा बड़ा भाई भले ही अधिक पढ़ा-लिखा नहीं है... उसने अपनी खेती-किसानी, बागवानी से इतना कमा लिया है कि हाल ही में उसने अपना एक और खेत ख़रीद लिया है. बच्चों के भविष्य के लिए भी कुछ जोड़ ले रहा है. गांव के स्कूल में उसके बच्चे पढ़ रहे हैं. बड़े होकर शहर में पढ़ना चाहेंगे तो भी वह उन्हें पढ़ाएगा.'' मेरी बात पूरी होने से पहले ही बाबूजी ने बोलना शुरू कर दिया. सिर झुकाये बाबूजी की कठोर किंतु सच्ची बात को मैं सुन रहा था.

''एक बात और.... अब मैं तुम्हारे बड़े भाई के बच्चों को समझाऊंगा कि वे शहर में जाकर पढ़े-लिखें अवश्य किंतु वहां की मृगमरीचिका में न भटकें. गांव की अपनी जड़ों, अपनी खेती-किसानी से जुड़े रहें. आगे जैसी ईश्वर इच्छा.'' बाबूजी ने एक लंबी सांस लेकर कहा. बाबूजी चुप हो गये. वो आगे और कुछ भी बोलना नहीं चाहते थे.

''बेटा, आज हमें दिन वाली ट्रेन पकड़ा देना. आठ-नौ बजे शाम तक घर पहुंच जायेंगे.'' दूसरे दिन सुबह वाली चाय पीने के पश्चात बाबूजी ने मुझसे कहा.

''एक-दो दिन और रुकिए बाबूजी. बड़ा मन है हमारा.'' मैंने बाबूजी से कहा.

''हम लोग पेड़-पौधे, खेत-खलिहान के बीच रहने वाले लोग. यहां ईंट-पत्थरों, इंसानों की भीड़ और गाड़ियों के शोर में कहां मन लगेगा. हमें जाने दो बेटा...आज या एक-दो दिन और में क्या रखा है? जीवन तो वहीं कटना है, गांव में.'' बाबूजी ने कहा.

माई-बाबूजी को ट्रेन में बैठाकर मैं स्टेशन से बाहर आया. बाहर आकर मैंने इस भागते शहर को आज भरपूर दृष्टि से देखा. इस शहर की भागती ज़िंदगी, भागते लोग, गाड़ियां ये बड़ी बिल्डिंगें इनमें से किसी को भी तो मैं नहीं पहचानता. सब कुछ मेरे लिए अनजाना... अनचीन्हा है. ऑटो में बैठकर इस अजनबी शहर में मैं घुसता चला जा रहा था. बाबूजी की ट्रेन जा चुकी थी कब की.... मेरे गांव की ओर.

''नीरजालय'',
५१०/७५, न्यू हैदराबाद,
लखनऊ- २२६००७ (उ. प्र.)
मो. : ९४५०३६२२७६

ऋचा सिन्हा की कविताएं

मुझे एक सीढ़ी चाहिए

मुझे एक सीढ़ी चाहिए
जिस पर चढ़ मैं आसमान में
पहुंचना चाहती हूं,
इस दुनिया के कार्य कलापों से
बहुत दूर निकल जाना चाहती हूं,
वहां ना प्रेम है ना संशय हैं ना भ्रम है
इस आंख मिचौली से
खुद को बचाना चाहती हूं,
उस शून्यता को महसूस करना चाहती हूं
जहां न मानव है ना उसका चरित्र,
ना द्वेष हैं ना आडंबर है,
सब बेड़ियों को तोड़ देना चाहती हूं
बादलों में भीग जाना चाहती हूं
तारों सितारों की चुनरी ओढ़
प्रदीप्त हो जाना चाहती हूं,
टूटे हुए तारे को पकड़ लेना चाहती हूं
खुली आंखों से चांदनी का
साक्षात्कार करना चाहती हूं,
उस अंधकार में खो जाना चाहती हूं
जहां ना ग़म है ना आंसू हैं
ना धोखा है न तिरस्कार है
उस सूनेपन को गले लगाना चाहती हूं
जहां अपनी आत्मा को महसूस कर सकूं,
दूर दूर तक फैली एक अनजान आवाज़ को
मुट्ठी में बंद कर लेना चाहती हूं,
एकांत में डूब एकसार हो जाना चाहती हूं.

क्या मैं लौटूंगा ?

मैं कहीं जा रहा हूं,
जाने कहां
पगडंडियों पर चल, कभी मैदानों से गुज़र
कभी पहाड़ों की कंदराओं में तो कभी
ऊंचे आसमान पर.....
अकेले कभी कुछ जाने अनजाने
लोगों के साथ,
एक दिन जब सब ख़त्म होगा
पाऊंगा ख़ुद को ज़मीन पर.....
पहचानूंगा ख़ुद को,
पहचानूंगा अपनी माटी में लिपटी देह को
आस पास कुछ बिलखते हुए लोग होंगे
जो बेपरवाह थे जब मैं जीवित था,
पेड़ों की ओट से झाकूंगा खुद को
मैं पाऊंगा खुद को एक अनंत काल में
जाने किस लोक में किस भविष्य में
पाऊंगा खुद को एक शून्य में
प्राचीन सभ्यताओं के बीच में
क्या मैं लौटूंगा वापस
लौटूंगा एक नये परिवेश में
नये लोगों के बीच में
फिर चलूंगा एक नयी यात्रा पर
पीछे छोड़ी हुई लकीर को
पकड़ने की चेष्टा करूंगा,
जीवन चक्र ऐसा ही है
मैं लौटूंगा .....

डी-४०४, अकुरथ, सेक्टर १४, प्लॉट ११, सानपाड़ा, नवी मुंबई-४००७०५. मो- ९८९२२७८३२५.

पन्ने की अंगूठी

शुभदा मिश्र

जन्म : १.७.१९४८ डोंगरगढ़, जिला : राज नांदगांव (छ. ग.)
शिक्षा : एम. ए. (अंग्रेज़ी), रविशंकर शुक्ल वि. वि., रायपुर.
: लेखकीय उपलब्धियां :
आरंभिक रचनाएं सरिता, मुक्ता में प्रकाशित. फिर कादंबिनी कहानी प्रतियोगिता, सारिका कहानी प्रतियोगिता, प्रेमचंद कहानी प्रतियोगिता आदि में पुरस्कार जीतने के बाद देश की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकओं में रचनाएं प्रकाशित होती रहीं, यथा: धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, सारिका, कादंबिनी, वामा, मनोरमा, आजकल, वागर्थ, कथादेश, साहित्य अमृत, इंडिया टुडे, समरलोक, अक्षरा, शुक्रवार, कथन इत्यादि.
समाचार पत्रों में हरिभूमि, देशबंधु, नवभारत, अमृतसंदेश, प्रखर समाचार, इतवारी अख़बार, सबेरा संकेत, सत्यचक्र आदि के साहित्यिक काल में रचनाएं प्रकाशित होती रहीं. आकाशवाणी पटना से भी रचनाएं प्रसारित होती रहीं और रायपुर दूरदर्शन के साहित्यिक कार्यक्रम में वार्ता भी.
: प्रकाशित कृतियां :
मंथन, यहीं कही होगी संजीवनी, संदेशा इतना कहियो जाये, 'हैपी न्यू ईयर्स' अंतिम स्तंभ (सभी कहानी संग्रह); तीन उपन्यासिकाएं, एक उपन्यास 'स्वयंसिद्धा', दो कहानी संग्रह (शीघ्र प्रकाश्य), अनेक कहानियों का अन्य भाषाओं में अनुवाद.
: पुरस्कार एवं सम्मान :
स्वातंत्र्योत्तर श्रेष्ठ बिहारी साहित्य सम्मान पुरस्कार - पं. राम नारायण न्यास, पटना; नगरगौरव पुरस्कार- सॉनेट क्लब डोंगरगढ़; साहित्य श्रीपुरस्कार, नागपुर त्रिशंताब्दि पुस्तक मेला में सर्वश्रेष्ठ कहानी संग्रह 'मंथन' हेतु; नगर के टॉप टेन पुरस्कार - लॉयन्स इंटरनेशनल; सप्तपर्णी पुरस्कार - छत्तीसगढ़ साहित्य सम्मेलन; नारीशक्तिकरण सम्मान.
: विशेष :
विगत में विभिन्न स्कूलों एवं कॉलेज़ों में अध्यापन. वर्तमान में स्वतंत्र लेखन; राजनांदगांव किशोर न्यायालय बोर्ड की मानद सदस्या, २००८ से २०१३ तक; पारिवारिक न्यायालय बोर्ड डोंगरगढ़ की भी मानद सदस्या रहीं.

सबेरे सबेरे ही उसका फ़ोन आ गया था... 'हैलो मैम, आप
कैसी हैं?'

'मैं तो ठीक हूं. तूने अभी कैसे फ़ोन किया?'

'मैम, मैं ये बता रहा था कि मैंने शादी कर ली है.'

'अरे कब?'

'कल मैम.'

'शादी कहां हुई?'

'लड़की के घर में.'

'तेरी तरफ़ से कौन लोग थे?'

'मेरे दोस्त थे मैम. आनंद, प्रदीप, बृजेश, हरभजन.'

'तेरे अपने कोई रिश्तेदार? चाचा, मामा, भाई बहन कोई भी?'

'कोई भी नहीं मैम. लड़कीवालों ने सब किया. बहुत बढ़िया से. आप तो शादी में नहीं आऊंगी बोली थीं. सो आपको नहीं बताया.'

मुझे अटपटा लगा. बोली... 'अभी तू कहां है?'

'धुरिया में मैम. शादी शाम को निपटी. उन लोगों ने सबको भोजन कराया. भोजन निपटते ही हम भगवती मंदिर गये. वहां से सीधे धुरिया, अपने घर. मैम मैं आपको बाद में फ़ोन करूंगा. अभी जल्दी में हूं...' उसने फ़ोन बंद कर दिया.

मैं सोच में पड़ गयी... मैंने कब कहा था कि मैं तेरी शादी में नहीं आऊंगी. ख़ैर, इसकी शादी तो हुई. बताया कि शादी के बाद भगवती मंदिर गया. मंदिर से उसे मेरे घर

आना था आशीर्वाद लेने. फिर जाना था धुरिया. धुरिया में उसने घर ले रखा है. वहीं उसकी नौकरी है. अपने इस घर को इसने बहुत तलाश करके लिया है. इसके पहले जिस घर में रहता था, वह सिर्फ़ एक कमरा था, बड़ा–सा. उसने बताया था कि मकान मालिक और आसपास के लोग बहुत अच्छे हैं. तब मैंने कहा था, अच्छे लोग बड़े भाग्य से मिलते हैं, तू उसी कमरे में रह. तेरी पत्नी भी रह लेगी. वह बोला था, शादी करके वह पत्नी को एक कमरे के घर में नहीं रखना चाहता. उसने बढ़िया घर लिया. काफ़ी क़िराये वाला. घर में उसने सारी सुविधाएं जुटायीं...पलंग, बिस्तर, सोफ़ा, अलमारी, ड्रेसिंग टेबल, टी. वी., कूलर. सब आधुनिक मॉडल के. शानदार. मुझे पता चला. बोली... इतना पैसा तेरे पास कहां से आया. बोला... किश्तों में लिया हूं मैम, सब पट जायेगा. मैं चाहता हूं, जिस लड़की को ब्याहकर ला रहा हूं, उसे वह सभी सुविधाएं दूं, जो उसके घर में हैं.

शादी करनेवाला है, यह बात तो फ़िजा में थी ही. कोई महीने भर पहले वह बाईक दौड़ाता धुरिया से मेरे घर आया था. दमकता हुआ गोरा रंग, नीली पैंट और लाल शर्ट में वह बहुत ख़ूबसूरत दिख रहा था. आते ही सीधे बाथरूम गया. हाथ मुंह धोकर, ड्रेसिंग टेबल में शीशे के सामने खड़े होकर, केश संवारते वह बताता जा रहा था.... 'मैम, लड़कीवालों के यहां अंतिम स्तर की बातचीत करने जा रहा हूं.' मैं पूछ रही थी... 'तेरे साथ कौन कौन है.' बोला... 'बस मेरे दोस्त हैं मैम.' दोस्तों पर वह फ़ोन में भड़कने लगा था... 'जल्दी पहुंचो कमबख्तों, मेरी बखत भाव दिखा रहे हो.' दोस्तों पर भड़ककर उसने मेरे पैर छुये जैसा कुछ किया और बाईक गड़गड़ा कर हवा हो गया. मैं सोच रही थी, वहां से लौटकर वह मुझे सब विस्तारपूर्वक बतायेगा. मगर वह नहीं आया. सीधे धुरिया चला गया. कोई फ़ोन भी नहीं किया. उसके बाद अचानक यह ख़बर.

वैसे जब उसकी नौकरी लगी थी, तभी मैं उससे बोली थी... 'तू अट्ठाइस का हो गया है. उस लड़की की उम्र भी बढ़ती जा रही है. शादी करना है तो देर मत कर.' मगर वह कहता कि पैसा ही नहीं बचता मैम. फिर उसकी तरक्की हुई. वेतन भी काफ़ी बढ़ा. अब मैं बिगड़ती तो कहता... अभी उन लोगों का घर बन रहा है मैम. अभी उसकी परनानी की मृत्यु हो गयी है. अभी उसकी बुआ बीमार हैं. मैं चिढ़ती, उस लड़की को अपने पूरे घर की परवाह है, और तेरा तो जैसे कोई है ही नहीं. वैसे मैं उसकी शादी में रुचि लेना ही नहीं चाहती थी कि शादी उसका व्यक्तिगत मामला है. फिर जिस लड़की से शादी करना चाहता है, उसे मैंने देखा तक नहीं. मैंने कहा भी, कौन लड़की है, कभी लाना तो. मगर उसने सिर्फ़ फ़ोटो दिखायी. फ़ोटो में वह मुझे इस लड़के से उम्र में बड़ी लगी. मुझे लगा, इसने कहा तो ज़रूर होगा... मेरी मैम से मिलने चलो. ज़ोर भी दिया होगा. मगर वह लड़की ही नहीं आयी होगी. ज़रूर उस अनदेखी लड़की के संबंध में मैंने कभी जो टिप्पणी की थी, इस भोले राम ने बता दिया होगा. मैं ऐसा इसलिए कह सकती हूं क्योंकि मैं इसे पिछले सोलह सालों से जानती हूं.

कोई सोलह बरस पहले जब यह मेरी कोचिंग कक्षाओं में पढ़ने आया, तब यह बारहवीं का छात्र था. एक हड्डी का लंबा–सा किशोर. गालों की हड्डियां उभरी हुई. बंदरनुमा-सा पिचका चेहरा. था गोरा. हमेशा उखड़ा, उखड़ा परेशान-सा दिखता. अक्सर होमवर्क करके नहीं आता. कई बार डांटने, समझाने पर भी जब नहीं सुधरा तो एक दिन पास बैठाकर सहानुभूति से पूछा कि आख़िर तेरी समस्या क्या है. थोड़ी सी सहानुभूति पाते ही इसने घर का कच्चा चिट्ठा ही उगल दिया कि घर का वातावरण बिल्कुल भी पढ़ने–लिखने लायक नहीं है. तीन भाई-दो बहनें हैं. पिता छोटी मोटी नौकरी में हैं. बड़ा भाई स्थानीय अख़बार में पत्रकार है. पत्रकार क्या है, ब्लैकमेलिंग करता रहता है. दूसरा भी अक्सर कुछ न कुछ अपराध करते पकड़ा जाता है. पिता किसी तरह बचा के लाते हैं. मारपीट, गाली गलौज करते हैं. छोटे भाई से ही नहीं, घर में हर किसी से. बहनों से तक. बड़ी बहन का ससुराल वालों से झगड़ा है. वह घर आकर बैठ गयी है. दूसरी ब्यूटीशियन का कोर्स करके बैठी है. दोनों बहनों में रोज घमासान. मां भी बेहद चिड़चिड़ी. बात–बात में गाली निकालने वाली. यहां तक कि खाने बैठो तब भी गाली खाओ. ग़रीबी, कलह, आपस में ही जलता-कुढ़ता, बर्बाद परिवार. घर में जैसे किसी का दिमाग़ ही सही नहीं हो.

मगर मुझे इस लड़के का दिमाग़ सही लगता. संवेदनशील भी. बहनें लड़ रही हों जिसका पक्ष सही लगता, उसकी तरफ़ बोलने लगता. दूसरा पक्ष आग बबूला. बड़ा भाई किसी रसूख वाले की ब्लैकमेलिंग कर रहा हो.... कल पांच हज़ार लेकर आइए वर्ना सारे शहर को पता लगने वाला है, आपका कच्चा चिट्ठा. बस यह टोक दे और भाई दे चप्पल

चप्पल. पिता मारपीट कर रहे हों, तो हस्तक्षेप कर दे, बुरी तरह पिट जाय. चिड़चिड़ी मां को ख़ुश करने रात में उनके हाथ–पांव दबाता. तेल लगाता. जहां उन्हें समझाने लगता, मां देती लाते लात. सुनकर मुझे कोई समाधान न दिखता. बोली... तू तो जल्दी से कुछ कमा धमा और अलग रह. ऐसे वातावरण में तू कुछ नहीं बन सकता.

वह बेचारा बारहवीं पढ़नेवाला, मरगिल्ला-सा रोज़ लात-जूता खाता, घोंचू लड़का, क्या कमाता धमाता. कभी सबेरे अख़बार बांटने का काम करने लगता. कभी किसी किराना दुकान में पुड़िया बांधने का काम. तो कभी शहर के प्रसिद्ध भगवती मंदिर में नारियल प्रसाद बेचने का काम. प्रति नारियल एक रुपिया कमीशन. मगर हर जगह लताड़, अपमान, शोषण. ऐसे बाहर लताड़, अपमान, शोषण एवं घर के कलह कवलित वातावरण के बीच पलते–बढ़ते लड़के को मेरे पास आकर ही त्राण मिलता. वह धाराप्रवाह अपने दारुण अनुभव बताये जाता. जरा भी ख़्याल नहीं कि मैम क्या सोच रही होंगी. मैं सोचती क्या, इसकी यातनाओं को सुनते मेरा हृदय स्वयं द्रवित होता रहता. तरह-तरह के उदाहरण देकर समझाती. परेशानियों से बेचैन उसका उद्विग्न मन पढ़ने में जरा न लगता. पढ़ाई से बचने के लिए कभी बांसुरी बजाने की कोशिश करता, कभी बैंजो. और डांट खाता. डांट डपटकर जितना बन सके, पढ़ा ही देती ताकि परीक्षा पास कर ले. जितना बन सके मदद ही करती. सच तो यह है, पूरी दुनिया में मैं ही उसका एकमात्र सहारा थी.

मैं सहारा तो थी, मगर उसकी अपनी जिजीविषा भी ग़ज़ब की थी. ऐसी गलाजत भरी ज़िंदगी जीते हुए उसने अपने शहर के कॉलेज़ से बी. एससी. कर ही लिया. उसके कई सहपाठी दुर्ग जाकर 'एम. एससी.' में दाख़िला ले रहे थे. सो उसने भी कोशिश की. गणित विषय में ही एक सीट खाली थी. उसी में दाख़िला मिला. रोज़ सुबह की ट्रेन पकड़कर दुर्ग जाना पड़ता. कक्षाएं समाप्त होने के बाद अपने शहर लौट आता. सीधे मेरे पास. अपनी नयी यातनाओं से परेशान. कॉलेज़ में इसकी साथी लड़कियां इस एक हड्डी के घोंचू से लड़के का मजाक बनातीं. शातिर लड़कियां तो मौक़ा मिलते ही बुरी तरह तमाशा बना देतीं. मुस्टंडे लड़के असहनीय अभद्र व्यवहार करते. कई बार प्रौढ़ पुरुष भी. जैसे सारी दुनिया उसे अहसास कराने पर तुली हो कि वह मर्द ही नहीं है. मर्द क्या, मनुष्य ही नहीं है. है सिर्फ़ एक मंद बुद्धि, क्षुद्र, हास्यास्पद प्राणी. तमाशा बनाने लायक. वह अपने यह सब दुख मुझे ठीक से बता न पाता. मगर मैं समझ रही थी कि भीतर ही भीतर वह बुरी तरह लहूलुहान है. डरती भी कि कहीं आत्महत्या न कर ले.

ऐसे में ही एक दिन उसने अजीब बात कही कि वह एक लड़की से प्रेम करता है, और उससे शादी करना चाहता है. मैं आवाक भला कौन लड़की इस मरगिल्ले से प्रेम करेगी, जिसका न तन ठिकाने का, न मन. कहीं कोई इसे बेवकूफ तो नहीं बना रही है. कहने लगा...नहीं मैम, बहुत अच्छी लड़की है. बताया उसने, वह रोज़ दुर्ग आना जाना करता था, वह लड़की भी करती थी. यह उस लड़की के लिए अपनी सीट छोड़ देता था. वह बेहद प्यार से धन्यवाद करती थी. दोनो में बातचीत, फिर दोस्ती. रेस्त्रां में चाय पीने जाने लगे. इसे कड़का देखकर लड़की ख़ुद ही बिल पटा देती. उसके चेहरे में अभूतपूर्व ख़ुशी देखकर मैं समझ गयी... लड़की उसे लड़का होने का, पुरुष होने का अहसास करा रही थी. यहां तक तो ठीक, मगर जैसे ही उसने लड़की के बारे में बताना शुरू किया, मुझे सुनना दुश्वार हो गया... 'मैम बेचारी तलाकशुदा है. ससुराल में इसके ऊपर बहुत अत्याचार होता था मैम.' वह अत्याचार गिनाने लगा. मुझे सुनना और दूभर. मगर वह चालू.... 'मायके में भी बेचारी के साथ बड़ी दुख़द घटना हुई मैम. ज़्यादा पढ़ी लिखी नहीं है. सो सिलाई सीखने लगी. तब एक लड़के ने इसकी बड़ी मदद की. उस लड़के के साथ बाईक में एक बार घूमने जा रही थी मैम कि जंगल के एकांत में ले जाकर उसने बलात्कार कर दिया.'

मेरा भेजा उड़ गया. एक तो तलाकशुदा लड़की. तिस पर बलात्कार भी हो चुका है. भिन्नाकर बोली... 'देख तू इस लड़की का नाम छोड़. मुझे तेरा ये चक्कर एकदम नहीं जम रहा है.'

नहीं मैम, बहुत अच्छी लड़की है. बेचारी के साथ हादसा पर हादसा हुआ है. उसका कोई दोष नहीं.

मैं कब कह रही हूं कि लड़की बुरी है. उसका दोष है. मगर तेरे जैसे लड़के के लिए यह लड़की ठीक नहीं है. करनेवाले तो वेश्याओं से भी शादी कर लेते हैं और उन्हें ऐसी सती नारी बना देते हैं कि लोग अनुसरण करें. वे दमदार मर्द होते हैं. तेरा व्यक्तित्व ही नहीं है इस तरह की लड़की के लायक. वह लड़की सुनसान जगह में उस लड़के के साथ घूमने

ही क्यों गयी थी? अफ़ेयर रहा होगा उसके साथ.

'मैम...' वह मेरा बिगड़ा चेहरा देखकर सफ़ाई देने लगा... 'कोई ख़ास अफ़ेयर नहीं था मैम. मैं उस लड़के से मिला था. बोला कि मैं उससे शादी करना चाहता हूं. तू सच सच बता कि मामला क्या है. शादी की बात सुनकर वह बहुत ख़ुश हुआ. बोला कि मैंने उस लड़की को चालू समझ लिया था, इसलिए ग़लती हो गयी. वह बहुत अच्छी लड़की है. तू ज़रूर शादी कर.'

'मैं भड़क उठी...बेवकूफ़, तुझे घोंचू समझकर फांसा जा रहा है. तेरे साथ क्या होगा मैं नहीं कह सकती.'

'कुछ नहीं होगा मैम, मैंने 'उसका एच. आई. वी. टेस्ट करा लिया है.'

सुनते ही मैं आपे से बाहर... 'अगर तूने इस लड़की से शादी की तो इस घर में क़दम मत रखना.'

फिर उसने कभी उस लड़की का नाम नहीं लिया.

मगर मैं देखती कि उसमें काफ़ी परिवर्तन आने लगा है. एम. एस-सी. तो उसने कर ही लिया. कैसे-कैसे जुगाड़ भिड़ाकर बी. एड. भी कर लिया. अब उसके कई दोस्त भी बन गये थे. ये दोस्त थे तो स्कूल के दिनों से ही, मगर पहले कभी उसे भाव नहीं देते थे. 'एम. एस–सी., बी. एड.' होते ही उसे निजी स्कूलों में पढ़ाने के अवसर मिलने लगे. नौकरी लगने पर वह आता, पैर छूकर प्रणाम करता, ख़ुश दिखता. मगर फिर कुछ दिनों में वही यातनाएं... प्राचार्य पढ़ाने के अतिरिक्त और ढेरों काम लाद देते हैं, सहकर्मी उसका तमाशा बनाने का मौक़ा नहीं छोड़ते. निर्मम प्रबंधक समिति के अपने जोड़–तोड़... वह एक स्कूल की नौकरी छोड़ दूसरी पकड़ता, दूसरी छोड़ तीसरी. हर जगह शोषण, हर जगह दबाने की कोशिश, हर जगह ग़लत समझौते. असुरक्षा. मैं उसे तरह–तरह से समझाती, कभी पौराणिक कहानियां बताकर, कभी ऐतिहासिक घटनाएं सुनाकर, कभी महापुरुषों की, तो कभी सफल लोगों के उदाहरण देकर. समझाते–समझाते त्रस्त हो जाती तो कसकर डांटती भी. डांट खाता तो घर के किसी कोने में बैठकर वैसे ही बांसुरी या बेंजो बजाने लगता. फिर डांट खाता, जब रुचि है तो मन लगाकर ठीक से सीख. मगर मन लगाकर सीखने में उसका मन ही न लगता. बांसुरी, बेंजो बजाते–बजाते कभी गिटार बजाना सीखने लगता, कभी हारमोनियम. मुझे ख़ुश करने के लिए कहता... 'दो मिनट सुन लीजिए मैम, सच में अच्छा बजा लेता हूं.' शुक्र हुआ कि तभी उसके कुछ दोस्त कुछ प्रतियोगी परीक्षाओं में सफल हो गये और नायब तहसीलदार, फूड इंस्पेक्टर, रेंजर वगैरह बन गये. अब इसका मन भी ललकने लगा... 'मैम, इन नौकरियों में पॉवर है. लोग इनकी इज़्ज़त करते हैं. मगर इसके लिए अच्छी कोचिंग की ज़रूरत है.' मैंने हंसकर कहा... 'जा तू भी प्रतियोगिताओं की तैयारी कर. जिस कोचिंग इंस्टीट्यूट में पढ़ना चाहता है, पढ़. जो ख़र्च होगा, दूंगी.'

पढ़ा तो, मगर प्रतियोगिताओं में नहीं आ सका. हां, उसका आत्मविश्वास पनपता जा रहा था. वह बुरी तरह नौकरी के लिए हाथ पांव मारने लगा. जगह-जगह आवेदन, जगह–जगह साक्षात्कार. पंडित, ज्योतिष, ओझा, व्रत, उपवास, पूजा पाठ, मंदिर, मजार, तंत्र-मंत्र टोना टटका, सब करता. जो थोड़े से पैसे ट्यूशन करके कमाता, वे पूरे न पड़ते. मुझे बड़ी दया लगती. सहानुभूति और मदद तो देती ही, ख़ुद भी भगवान से प्रार्थना करती... प्रभु इस अभागे को एक नौकरी दिला दो. आख़िर एक लंबे संघर्ष के बाद उसे सरकारी नौकरी मिल ही गयी. उच्चतर माध्यमिक शाला में 'गणित व्याख्याता' की नौकरी. उसके लिए तो सचमुच बहुत बड़ी उपलब्धि. उसकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं. मुझे भी बहुत ख़ुशी हुई.

नौकरी उसकी धुरिया में थी. छोटा–सा गांवनुमा शहर. हमारे शहर से लगभग बीस किलोमीटर दूर. वह तड़के सुबह बाईक से धुरिया चला जाता. छुट्टी होने के बाद फिर बाईक दौड़ाता अपने शहर. पहले सीधे मेरे घर. स्कूल को लेकर बुरी तरह बौखलाया, जहां प्राचार्या नकारा, शिक्षक जलनखोर, कर्मचारी कामचोर. गांव के लड़के पढ़ने में मुंहचोर. और भी ढेरों बातें, सब बेसंभार. तिस पर ये सारे दुष्ट इस ग़रीब को ही प्रताड़ित कर आनंद मनाने में तुले. मैं जितना बन सकता, समझाती... 'ऐसी सब स्थितियों में ही करने वाले बहुत कुछ कर गये हैं. इतिहास बना गये हैं. तू तो ख़ुश हो कि तेरे लिए बहुत कुछ करने का मौक़ा है. वहीं एक कमरा ले और शांति से रहे. सोचकर कि मैं इस स्कूल में आया हूं तो इसकी बेहतरी के लिए क्या योगदान कर सकता हूं. पढ़ाने के लिए पढ़ाकर. अपनी उन्नति के लिए पढ़ाकर. ज्ञान ही शिक्षक का संबल है. तू इतना अच्छा बांसुरी बजाता है, बेंजो बजाता है, हारमोनियम बजाता है. वहीं रहकर अभ्यास किया कर. रोज़ रोज़ यहां आने में समय बर्बाद मत कर.'

मगर वह कहता, 'आपके पास आने से मुझे ऊर्जा

मिलती है मैम. वर्ना तो दुनिया मुझे खा जाये.'

मैं उसे प्रेरणास्पद पुस्तकें पढ़ने की सलाहें देती. मगर पढ़ना उसे एकदम अच्छा न लगता. सारा ज्ञान वह मुझसे ही लेना चाहता. देश की फ़िजा बदल रही थी. भारी राजनैतिक, सामाजिक ही नहीं अनेक क्षेत्रों में अभूतपूर्व परिवर्तन हो रहे थे. राष्ट्रीय मुद्दों के बारे में पक्ष और विपक्ष के अजीबोग़रीब बयानों से भारी भ्रमात्मक स्थिति हो गयी थी. अराजकता फैलानेवाली शक्तियां आग में घी का काम कर रही थीं. बची खुची कसर सोशल मीडिया के अनर्गल चैट. नौजवान बुरी तरह भ्रमित हो रहे थे. उसे तो कुछ समझ में ही न आता. गूगल से बात न बनती. सो मेरी शरण में. रोज़ धुरिया से भागकर आता. ढेरों सवाल करता. समझाते-समझाते मुझे घंटों हो जाते. विभिन्न राष्ट्रीय मुद्दों को अच्छी तरह समझकर वह अपने मित्रों, शिक्षकों, चर्चा समूहों में बोलने लगा था. बोलते-बोलते जम जाता. बहुत घिर जाता तो पेशाब वग़ैरह के बहाने इधर-उधर हो जाता और मोबाइल में मुझे फ़ोन कर धीरे से पूछता... मैम,'बैस... का युद्ध' हम क्यों हारे थे, कभी पूछता मैम 'शिमला समझौता' क्या है, तो कभी आजकल चल रहे आंदोलनों के बारे में. मैं जल्दी–जल्दी जितना बता सकती, बताती. वह फिर जाकर हड़कने लगता. सब समझ गये थे, यह मैम से ज्ञान लेकर आता है, और जमाता है. कहते भी थे... 'हिज़ मैडम्स वायेस.' मगर स्कूल के कार्यक्रमों में, अंतर शालेय कार्यक्रमों में संचालन का मोर्चा संभालने का दायित्व इसे ही दिया जाता. यह छा जाता. कल का घोंचू प्रतिभाशाली समझा जाता.

मुझे भी ख़ुशी होती, पुस्तकालय से क़िताबें ला लाकर मैंने जो बरसों पढ़ा है, उस ज्ञान का सही उपयोग हो रहा है.

वह सच में मुझे गुरू मानता. मेरी सेवा में एक टांग से तत्पर. बाज़ार से सौदा लाना है. टी. वी. बिगड़ गया है, कंप्यूटर बिगड़ गया है, बिजली ख़राब हो गयी है, वह दौड़ा मैकेनिक लाने के लिए. आंधी हो, पानी हो, लू के क्रूर थपेड़े हों, उसे परवाह नहीं. मैम का काम होना चाहिए. मुझे किसी विशेष कार्यक्रम में जाना है. इलाज के लिए विशेषज्ञ डॉक्टर के पास जाना है, कभी रायपुर, कभी नागपुर, वह मेरे साथ लगा रहता. लोग पूछते, आपका लड़का है. मैं हंसकर कहती ...'हां जी.'

वह सचमुच मेरे घर का लड़का ही था. किसी भी समय बेहिचक आ जाता, दरवाज़े से ही मैम मैम करता हुआ. मैं बाथरूम या पूजा में होऊं तो सामने बरामदे में बैठकर अपने मोबाइल में चैट करता रहता, या टी.वी. खोलकर टी. वी. देखने लगता या फिर मेरी बाड़ी में घूम घूमकर बांसुरी बजाता रहता. अमरूद, शरीफा तोड़कर खाने लगता. खाने का तो बेहद शौक़ीन. किचन में डब्बे खोल खोलकर देखता रहता, मैम ने क्या बना कर रखा है. पर्व त्योहारों में मैं ढेर सारे व्यंजन बनाकर रखती. मित्रों, परिचितों के घर, घर के बने व्यंजन ही भिजवाती. यह आये तो सीधे किचन में. परातभर गुझिये, पुये, अनरसे बनकर तैयार रखे हैं. बस यह दे धड़ाधड़. आठ दस गुझिये, अनरसे तो यूं ही साफ़ कर जाता. सच तो यह है, इसका खाना-पीना, बहस मुबाहिसे, ढेरों सवाल-जवाब, घंटों मेरे घर में. जो समय बचता, वह दोस्तों के साथ. अपने घर में यह नहाने-धोने फ्रेश होने और सोने ही जाता. वैसे जब से नौकरी लगी थी, इसके घर में सचमुच इसकी कदर होने लगी थी. यह मां बहनों की फर्माइश पूरी कर रहा था. पिता को पैसे दे रहा था. यार दोस्तों की पैसे से मदद कर रहा था. उधार मांगने वालों को भी ख़ुश कर रहा था. तनख़्वाह मिलते ही सारे पैसे फुर्र. मगर शरीर भर रहा था. चेहरा दमकने लगा था. तिस पर बदन पर एक से एक बढ़िया कपड़े. हीरो दिखता. एक दिन पूछा... 'ये नयी कमीज़ कब ले लिया?'

दबी हुई मुस्कुराहट से बोला... 'उसने दी है मैम?'

'वह कौन?'

'जिसके बारे में आपको बताया था.'

'किसके बारे में?'

'बताया तो था मैम.'

मैं सन्न. तो यह अभी तक उस लड़की से संबंध रखे है. मुझे हवा तक नहीं.

और वह देती रहती, कभी कमीज़, कभी स्वेटर, कभी जूते, कभी इत्र, कभी बैग. कभी हैट, उसके शौक़ की चीज़ें. एक बार ख़ुद दिखाया, गले में पहना डोरी में बंधा नन्हा-सा सोने का लॉकेट. मैंने पूछा — 'कब ले लिया.'

गर्वीली मुस्कुराहट से बोला — 'उसने दी है मैम. तिरूपति गयी थी तो मेरे लिए लायी है.'

मैं चिढ़ गयी... तुझे शरम नहीं. लड़की से लेता रहता है. तू क्या देता है?

बोला... 'मैं कहां से दूंगा मैम. मेरे पास पैसा ही कहां बचता है.'

'उसके पास कहां से आता है?'

'वह सिलाई करती है मैम. एक से एक बढ़िया कपड़े सीती है. कपड़े सी सीकर उसने मेरी बी. एड. की फ़ीस भरी थी.'

पहले तो कभी कभार ही देती रही होगी, लेकिन अब तो अक्सर. कभी किसी कार्यशाला में जा रहा है, कभी किसी प्रशिक्षण में, कभी लड़कों को लेकर किसी कैंप में. पैसे नहीं थे. कहां से लिये? वही गर्वीली सी मुस्कुराहट... 'आपकी बहू ने दिये मैडम.'

'बहू?' मुझे आघात-सा लगता.

मगर फिर मन मारकर मैंने स्वीकार कर लिया. स्वीकार कर लिया कि यह उसके प्रेम में फंस चुका है. सोचा, जाये, करे उसी से शादी. इतना ही बोली, 'कभी लाना मिलाने.' यह मिलाने तो नहीं लाया, फ़ोटो दिखायी. फ़ोटो में वह सामान्य ही लगी. उम्र में इससे बड़ी भी.

पर इसके घर वाले जानते ही भड़क गये... एक तलाकशुदा बदनाम लड़की, जो एक गुंडे से मुंह काला करवा चुकी है. इससे बड़ी, हमसे छोटी जाति की, उससे शादी करेगा. ऐसी लड़की से शादी किया तो ख़बरदार घर में क़दम मत रखना.

वह हंसता, हम दोनों ही पिछड़े वर्ग के. वह कहां से छोटी जाति की हो गयी. बाक़ी मैं ख़ुद शादी करके उस घर में क़दम रखने वाला नहीं. एक दिन घर में ढूंढ–ढ़ांढकर अपनी जन्मकुंडली निकाल लाया... मैम देखिए, मेरा वैवाहिक जीवन कैसा रहेगा?

मैंने कुंडली देखी....जमा नहीं. बोली...ज्योतिष पढ़े बहुत दिन हो गये. अब मैं सब भूल भाल गयी हूं. तू किसी अच्छे ज्योतिषी को दिखा ले.

और उसने ज्योतिषियों, के चक्कर लगाने शुरू कर दिये. सभी ने लगभग वही बातें कहीं जो मैंने देखी थीं. एक ने तो स्पष्ट नकारात्मक, बल्कि चेतावनी दे दी. मगर इस पर तो जैसे जुनून सवार था. देश के नामी ज्योतिष जो टी. वी. पर आते, सोशल मीडिया पर आते, उनसे संपर्क करने लगा. उनकी भारी भरकम फ़ीस. कोई परवाह नहीं. जो समाधान अनुष्ठान, मंत्र तंत्र बताते, सब करता. इस दौरान उसकी तरक्की भी हो गयी. वेतन भी काफ़ी बढ़ गया. उसके उमंग का क्या कहना. नया घर ले लिया. काफ़ी क़िराये वाला. तमाम सुविधाएं जुटाने लगा. मुझसे पूछने लगा... 'मेरी शादी में आप आयेंगी न मैम?'

उसके तन–बदन से झरती ख़ुशी देख मैं मन ही मन उसकी इस शादी को स्वीकार कर चुकी थी. बोली...'अच्छा...'

और मैं सोचने लगी, सारी दुनिया जानती है, मैम इसके लिए मां की तरह हैं. है भी यह लड़के की तरह. उस दिन इसकी जन्मकुंडली देखी थी. कुंडली में भाग्येश बुध है. बुध इसका कमज़ोर लगा. बुध का रत्न है, पन्ना. मेरे पास एक बेशक़ीमती पन्ने की अंगूठी है. उसी क्षण सोच लिया था, अपनी पन्ने की अंगूठी इसे ही दूंगी, मगर दूंगी किसी अत्यंत विशिष्ट अवसर पर. इसकी शादी से ज़्यादा विशिष्ट अवसर और क्या हो सकता हैं. यह अंगूठी मेरे स्वर्गीय पति ने शादी की सालगिरह में मुझे प्रेम से पहनायी थी. हमेशा रही वह अंगूठी मेरी कनिष्ठा में. कुछ समय पहले पन्ना निकल गया था, सो अंगूठी उतारकर सेफ़ में रख दी थी. और कौन है मेरा इस दुनिया में जिसे मैं अपनी यह जान से प्यारी अंगूठी दूं. यही शिष्य है, यही लड़का है मेरा. अंतिम समय में मुंह में गंगाजल डालनेवाला. सबसे उपयुक्त व्यक्ति इस अमूल्य अंगूठी के लिए. नहीं रहूंगी तो अंगूठी देखकर कहेगा... एक मैम थीं जिन्होंने मुझ उजबक का व्यक्तित्व संवारा.

मैं अंगूठी लेकर आभूषण विक्रेता के पास गयी. बोली... भैया, इसमें थोड़ा और सोना डालकर इतना मज़बूत बना दीजिए कि पन्ना कभी न निकले...

उस लड़की को भी तो कुछ देना होगा जिसके बारे में सुनते ही मैं भड़क उठी थी. ख़ैर अब जब बहू बनकर आ ही रही है तो आशीर्वाद में कुछ अच्छा–सा देना ही होगा. मैंने चांदी की एक छोटी सी जड़ाऊ सिंदूरदानी ले ली. आगे अच्छी बहू साबित हुई तो जो छोटे-मोटे जेवर हैं, उसे ही दे दूंगी.

दोनों ही चीज़ें बढ़िया से पैक कर अलमारी में रख दीं. अब जब भी हो शादी.

कि अचानक शादी की ख़बर...'मैम मैंने शादी कर ली है.'

मुझे झटका लगा, मुझे बताया तक नहीं, मगर ख़ुशी भी हुई. अब इसका घर बस जायेगा. मां बाप के घर में कभी इसका ठिकाना था ही नहीं. मेरे घर में ठिकाना था तो आख़िर मैं पराई ही हूं. कई बार कोई परीक्षा देने, कोई साक्षात्कार देने बाहर गया, लौटा तो काफ़ी रात हो गयी. भूख लगी, स्टेशन से सीधे मेरे घर. घर में जो भी रखा हो निकालकर खाया और फौरन रवाना. कभी अपने घर, घर में

किसी ने दरवाज़ा नहीं खोला तो किसी दोस्त के घर. सोने के लिए. अब इसका अपना घर परिवार होगा. समय कुसमय कभी लौटे. खायेगा, पीयेगा, लात तान के सोयेगा अपने घर में.

मैं सोचने लगी कल शादी हुई है. आज ये लोग आ सकते हैं. इसकी पत्नी को मैं ज़रूर समझाइश दूंगी. कहूंगी कि यह बहुत ख़र्चीला है, इसके ख़र्च पर नियंत्रण रखना. खाने पर नियंत्रण रखना, कहीं वजन न बढ़ जाये. संगीत में इसे रुचि है, अभ्यास करने के लिए प्रेरित करती रहना. सबसे बड़ी बात, यह शिक्षक है, इसे रोज़ पढ़ने बैठाना.

मगर पहले ही दिन तो उपदेश दूंगी नहीं, आशीर्वाद दूंगी. आशीर्वाद में पन्ने की अंगूठी लड़के को. सिंदूरदानी बहू को. मगर सिंदूरदानी में तो सिंदूर है ही नहीं. अलमारी खोलकर सिंदूरदानी निकाली. पैक खोलकर उसमें थोड़ा-सा सिंदूर भरा. फिर पैक कर रख दिया.

बहू के रूप में अगवानी का स्वागत तो धुरिया के इसके घर में किसी ने किया ही होगा. शायद मकान मालकिन ने ही. सो मुझे ओली तो भरनी ही चाहिए. एक तश्तरी में अक्षत, सुपारी, हल्दी, बिंदी–चूड़ी, बिछिया और कुछ रुपये रख लिये. सजी हुई तश्तरी एक तरफ़ ठीक से रख दी. सोचने लगी, मिठाई बाज़ार से मंगाकर रख लूं या ख़ुद बना लूं. सामने स्वागत की अल्पना अभी ही डाल दूं या आने की ख़बर आने पर डालूं. मगर पहले घर को साफ़ सुथरा और व्यवस्थित तो कर लूं, नहीं तो लड़के से कहेगी, तुम्हारी मैम ऐसे रहती हैं.

और मैं सफ़ाई में लग गयी. भूत बनी सफ़ाई में लगी हूं. कान लगे हुए हैं... दरवाज़े की घंटी पर. मोबाइल की घंटी पर... मैम हम लोग आ रहे हैं...

जल्दी से तैयार हो लूं....

तैयार होकर सामने बरामदे में बैठ गयी मैं. दरवाज़े में छोटी-सी अल्पना भी बना ली है. थोड़ा-सा मीठा भी. बस आ ही रह होंगे...

एक घंटा... दो घंटा.....तीन घंटा....चार.... आ ही रहे होंगे, आ ही रहे होंगे, हारकर भीतर चली आयी. कल ही तो शादी हुई है. नया–नया घर. ठीक–ठाक कर रहे होंगे. आसपास के लोग मिलने आ गये होंगे. घर के काम धंधे निपटाने लगी... कान लगे हुए हैं...

शाम हो गयी. रात घिर आयी. रात गहरा गयी. बिस्तर में लेटे–लेटे छटपटा रही हूं, आये क्यों नहीं?

दूसरे दिन भी कान लगे हैं. रोआं रोआं इंतजार कर रहा है. दुल्हन की ओली भरनेवाली सजीली तश्तरी इंतजार कर रही है. चांदी की चमचमाती सिंदूरदानी इंतज़ार कर रही है. पन्ने की दमकती अंगूठी इंतज़ार कर रही है.

दूसरे दिन भी इंतज़ार....हर पल का...

तीसरे दिन भी...

चौथे दिन भी....

पांचवें दिन होते होते मेरी हालत नाजुक. मुझे मैम मैम की आवाज़ सुनाई दे रही है. भागती हूं बाहर दरवाज़े पर. नहीं, कोई नहीं है. दरवाज़े से झांककर सड़क के दोनों ओर देखती हूं...कहीं लौटकर चले तो नहीं गये.

भीतर आकर सब कमरों में झांक झांककर देख रही हूं. कहीं छुपकर बैठ तो नहीं गया है. डाटूंगी कसकर... मूर्ख, बहू को क्यों नहीं लाया...

कि बांसुरी की आवाज़ सुनाई देने लगी है. ज़रूर बाड़ी मैं जाकर किसी पेड़ के पीछे छुपकर बांसुरी बजा रहा है दुष्ट कन्हैया...

खोज रही हूं एक–एक पेड़ पौधे के पीछे झांक–झांक कर....

मेरी हालत नाजुक से नाजुकतर... परीक्षा देने जाता था तो मेरा आशीर्वाद लेकर जाता था. साक्षात्कार देने जाता तो आशीर्वाद. कोई पर्व हो, कोई अवसर हो, कहीं बाहर जा रहा हो, कहीं बाहर से आ रहा हो, हर बात में उसे मेरा आशीर्वाद. चाहिए ही चाहिए. सिर्फ़ शादी में आशीर्वाद की ज़रूरत नहीं हुई. हर छोटी-बड़ी बात बकर बकर मुझे बता देता था. जब इस लड़की की बात बतायी थी तो मैंने कहा था... इस लड़की से शादी करेगा तो मेरे घर क़दम मत रखना.

मेरे... घर.... क़दम... मत... रखना...

और... और.... मेरी चेतना जैसे सुन्न...

सुन्न-सी ही स्थिति में दिन बीत रहे हैं. अंगूठी तरफ़ देखा नहीं जाता. उसके लिए निकाल कर रखी थी. उसी की हो चुकी वह तो. किसी को नहीं दे सकती. फेंक भी नहीं सकती.

छाती छोलती रहती है अंगूठी की उपस्थिति...

१४, पटेल वार्ड,
डोंगरगढ़ (छ. ग.) ४९१४४५
मो. : ८२६९५९४५९८

लघुकथा

फ़र्क़

राम मूरत 'राही'

'नैना ! जब से शहर में सिटी बस कई रूटों पर चलना शुरू हुई है और ई-रिक्शा, तब से हम ऑटोरिक्शावालों का धंधा ही चौपट हो गया है. बैंक में थोड़े रुपये-पैसे थे, वो भी धीरे-धीरे ख़त्म हो गये हैं. अब समझ में नहीं आ रहा है कि घर का ख़र्चा कैसे चलेगा ?' संदीप ने उदास हो कर पत्नी से अपनी चिंता जाहिर की.

'आप टेंशन न लें, सब ठीक हो जाएगा.' नैना ने समझाया.

'नैना ! तुम्हारे पास जो एक सोने की चेन है, वो मुझे दे दो. जब कभी धंधा चलने लगेगा, तो मैं तुम्हें दूसरी दिला दूंगा.' संदीप ने कहा.

'मेरी चेन छोड़ो, सासूजी के हाथ में चार सोने की चूड़ियां हैं, वही मांग लो.' नैना ने चतुराई दिखाई.

उसी समय कमरे के बाहर से जा रही आशा देवी ने बहू-बेटे की बातें सुन ली थीं, तब वह उन दोनों के नज़दीक आकर बोली – 'बेटा! शुरू से ही मैं तुम दोनों को कितना समझाया करती थी कि रुपये-पैसे संभालकर ख़र्च करो, लेकिन तुम दोनों मेरी बात कहां सुनते थे. अगर उस समय रुपये-पैसे जोड़े होते, तो आज ये नौबत नहीं आती.'

'मां ! मैं पहले ही परेशान हूं. आप मुझे और परेशान करने आ गयी हैं.' संदीप ने थोड़ा ग़ुस्से से कहा.

'बेटा ! मैं परेशान करने नहीं आयी हूं, तुम्हारी परेशानी दूर करने आयी हूं.' इतना कहकर आशा देवी ने अपने हाथों में पहनी सोने की चारों चूड़ियां, जिस पर नैना की नज़र थी, उसे उतार कर संदीप को देते हुए कहा – 'ले बेटा! बहू यही चाहती थी न ? इसे बेच देना. शायद इससे तुम्हारी कुछ परेशानी दूर हो जाए.'

चूड़ियां देकर आशा देवी चुपचाप कमरे से बाहर निकल गयीं. यह देख संदीप की आंखें नम हो गयीं, और वह कभी अपने हाथों में रखी मां की चूड़ियों को देख रहा था, तो कभी नज़रें चुराती हुई पत्नी को.

१६८-बी, सूर्यदेव नगर, सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९. मो.९४२४५९४८७३

ग़ज़लें

राजेंद्र निशेश

मोम के चोले में हर सफ़र कटता नहीं
इस दौर में कौन यहां पर बिकता नहीं ।

ख़ून के प्यासे सभी रिश्ते हो गये हैं
चाहत भरा दिल अब तो कहीं मिलता नहीं ।

दुनिया की कसौटी पे ख़ुद राम न उतरे
तूफ़ानों से भिड़ता बसर दिखता नहीं ।

सवालों के कटघरे में जब धूप खड़ी है
इम्तहानों का सिलसिला कभी थमता नहीं ।

हक़ीकत की जुबानों पर ताला जड़ गया
सच्चाई का दरवाज़ा अब ख़ुलता नहीं।

बेलगाम घोड़ों से वो दौड़ रहे हैं
सारी पुरानी रिवायतें तोड़ रहे हैं ।

बनाकर ख़ुद ही कांच के घरों को, लो
ख़ुद ढेर पत्थरों के अब जोड़ रहे हैं ।

सब कुछ बदल डालूंगा, मूल-मंत्र है
बहती गंगा को उल्टी मोड़ रहे हैं ।

सच और झूठ में कोई फ़ासला न रहा
इस तरह सच्चाइयों को मरोड़ रहे हैं ।

अपने ग़म को सीने में दबाये हुए
कैसे कैसे दुनिया में हंसोड़ रहे हैं ।

२६९८, सेक्टर ४० सी, चंडीगढ़-१६००३६. मो. : ९४१७१०८६३२.

देश के विभिन्न प्रतिष्ठित दैनिक पत्रों और पत्रिकाओं में कविता, गीत-ग़ज़लें, लघु कथाओं और कहानियों का प्रकाशन. हिंदी साहित्य और व्यवसाय प्रबंधन में स्नातकोत्तर. पत्रकारिता के क्षेत्र में भी कार्य-अनुभव. कविता संग्रह 'धूप-छांव' प्रकाशित. दूसरा संग्रह 'दरीचों से आती रोशनी' शीघ्र प्रकाश्य.

: संप्रति :

भारतीय स्टेट बैंक के कारपोरेट केंद्र, मुंबई के आर्थिक अनुसंधान विभाग में मुख्य प्रबंधक. साथ में संस्थान की गृह पत्रिका 'आर्थिक दर्पण' का संपादन. विगत १० वर्षों से बैंकिंग और आर्थिक विषयों पर स्वतंत्र लेखन.

पिताजी

सतीश सिंह

रात के तीन बजे थे. कालबेल बजने की लगातार आवाज़ से नींद खुल गयी. फिर भी, संजीव तकिया से कान बंद करके सोने की कोशिश कर रहा था. ढाई घंटे ही हुए थे सोये हुए. संजीव ने आंखें मलते हुए दरवाज़ा खोला. देखा, सामने सुनील खड़ा था. उसकी सांसे बहुत ही तेज़ चल रही थीं. वह लगभग हांफ रहा था. सुनील को बदहवास देखकर संजीव घबरा गया; क्योंकि रात को सुनील और मां पिताजी के साथ थे. उसने कहा था, 'तुम आराम करो, आज मैं चाचाजी के पास रुक जाता हूं.'

संजीव का चेहरा किसी अनहोनी की आशंका से स्याह पड़ गया. उसने डरते-डरते पूछा, 'क्या हुआ, तुम घबराये हुए क्यों हों?' सुनील अस्फुट स्वर में बोला, 'लगभग ढाई बजे रात को तुम्हारे पिताजी नहीं रहे.' संजीव को सुनील की बातों पर यक़ीन नहीं हुआ. सुनील ने पुन: कहा, 'मैं सच कह रहा हूं.' यह कैसे मुमकिन हो सकता है? रात को लगभग १२ बजे ही तो वह आर. सी. राम नर्सिंग होम से लौटा था. एकदम भले-चंगे थे पिताजी. लग रहा था कि १५ से २० दिनों में स्वस्थ होकर घर लौट आयेंगे.

भभुआ ज़िले के मोहनियां के नजदीक राष्ट्रीय राजमार्ग पर पिताजी का एक्सीडेंट हुआ था. वे बिहार पुलिस में इंस्पेक्टर थे. शाम को मोहनियां से क्राइम मीटिंग में शामिल होकर करमचट थाना लौट रहे थे. दिसंबर १९९१ में; उनकी यहां पद स्थापना हुई थी. इसके पहले; पटना के गांधी मैदान थाना में वे थाना प्रभारी थे. पुलिस जीप को; सासाराम की तरफ़ से तेज़ गति में आ रही एक बस ने; सामने से टक्कर मार दी थी. पिताजी और ड्राइवर दोनों जख्मी हुए थे. चूंकि, बस ने जीप के बाएं तरफ़ टक्कर मारी थी. इसलिए, पिताजी को ज़्यादा चोटें लगी थीं. भभुआ में माकूल स्वास्थ्य व्यवस्था नहीं थी. इसलिए पिताजी को ज़िला अस्पताल के डॉक्टरों ने; पटना ले जाने की सलाह दी.

जनवरी महीने में; मैं पिताजी के साथ भभुआ गया था. पिताजी मुझे मोहनियां भी ले गये थे. नया ज़िला बना था भभुआ. क़ैमूर पहाड़ी की गोद में बसे होने के कारण इसे क़ैमूर ज़िले के नाम से भी जाना जाता है. नया ज़िला होने के कारण बुनियादी सुविधाओं का अभाव था वहां. न बस स्टैंड था और न ही रेलवे लाइन या स्टेशन. बस अड्डा एक खुले मैदान को बनाया गया था, जहां कोई भी बुनियादी सुविधा उपलब्ध नहीं थी. न सुलभ शौचालय था वहां और न ही होटल. खाने-पीने की भी कोई व्यवस्था नहीं थी. यह शहर से दूर भी था. पुलिस अधीक्षक का कार्यालय भी भभुआ में नहीं बना था. मोहनियां में पुलिस लाइन थी, वहीं पुलिस अधीक्षक का कार्यालय अस्थायी तौर पर बनाया गया था.

करमचट थाना कर्मनाशा नदी के किनारे स्थित है. यही नदी बिहार और उत्तर प्रदेश को आगे जाकर अलग करती है. थोड़ी दूर जाने पर कैमूर पहाड़ी की चढ़ाई शुरू हो जाती थी. बड़ा ही मनोरम दृश्य था. आंखें जितनी दूर देख सकती थीं, सिर्फ़ पहाड़ और जंगल दिखाई देते थे. आसपास में घनी आबादी नहीं थी. शाम होने पर जंगली जानवरों के डर से कोई घर से बाहर नहीं निकलता था. घूमने के मकसद से संजीव पिताजी के साथ भभुआ गया था. पहाड़, नदी और प्राकृतिक सौंदर्य देखने के लिए संजीव के साथ उसका मित्र जहांगीर भी भभुआ चला आया था. जहांगीर की पृष्ठभूमि गांव की थी. इसलिए, उसे प्रकृति के संग समय बिताना अच्छा लगता था. संजीव, उसके गांव महनार, जो वैशाली ज़िले की एक तहसील है; जा चुका था. संजीव को मटन खाना बहुत ही पसंद था. इसलिए, वह बकरीद के अवसर पर उसके गांव गया था. पूरा एक सप्ताह; संजीव जहांगीर के गांव में रहा था. इस दौरान उसने नाश्ता, लंच और डिनर में सिर्फ़ मटन खाया था. दांतों में दर्द शुरू होने के बाद ही उसने शाकाहारी खाना शुरू किया था.

जनवरी का महीना था. पहाड़ी इलाक़ा होने की वजह से ठंड कुछ ज़्यादा थी. जैकेट, स्वेटर, मंकी टोपी और मफ़लर सभी कुछ संजीव अपने साथ लेकर आया था. २४ जनवरी को वह पिताजी के साथ करमचट थाना पहुंचा था. २६ जनवरी को ध्वजारोहण के लिए पुलिस मुख्यालय, मोहनियां से आरक्षी उपाधीक्षक (डीएसपी) दया मिश्रा आये हुए थे. उनका गांव पेनापुर, संजीव के गांव के पास ही था. वे दिसंबर में सेवानिवृत्त होने वाले थे. इसी वजह से पिताजी ने उन्हें बुलाया था. उनका स्वभाव सरल और सहज था. थोड़ी देर की बातचीत के बाद; संजीव दया अंकल के साथ सहज हो गया.

बातचीत के दौरान; २५ जनवरी को शेरगढ़ किला देखने की योजना बन गयी. दया अंकल बोले, 'यह किला बहुत ही ख़ूबसूरत है; हर तरफ़ हरियाली है; मैं कई बार वहां जा चुका हूं; आख़िरी बार लगभग दस साल पहले गया था; आज किला किस स्थिति में है; देखने के लिए मैं भी उत्सुक हूं. पिताजी बोले, 'अगर वहां जाना है, तो विशेष सावधानी बरतनी होगी; क्योंकि उस इलाक़े में माओवादी बेहद ही सक्रिय हैं; जंगली जानवरों की आवाज़ाही भी बहुत ज्यादा है; इसलिए, साथ में कुछ हथियार बंद सिपाहियों को ले जाना ठीक होगा.' पिताजी ने पुनश्च: कहा, 'आप तो जानते हैं सर, गश्त के दौरान हमारा आमना-सामना जंगली जानवरों से होता रहता है.'

दया अंकल ने बताया, 'शेरगढ़ किला रोहतास ज़िला के दक्षिणी क्षोर पर स्थित है पहाड़ों के नीचे दुर्गावती नदी बहती है; नदी के कगार पर लगभग ८०० फ़ीट से ज़्यादा ऊंचाई वाले खड़ी ढाल के ऊपर बना हुआ है यह किला.' दया अंकल ने थोड़ा रुककर फिर कहा, 'इस किले की स्थापत्य कला अद्भुत है; जिसे देखना आंखों को बेहद सुकून देता है; किले की दीवारों पर की गयी नक्काशी और चित्रकारी पर्यटकों का मन मोह लेती हैं; लगभग ३ वर्ग किलोमीटर के इलाक़े में पसरा है किले का परिसर.'

किले तक पहुंचने का रास्ता बादलगढ़ के मैदान के पास था. क़रमचट थाने से वहां पहुंचने में लगभग तीन घंटे तक का समय लग सकता था; क्योंकि सड़क की हालत अच्छी नहीं थी. किले की दूरी बादलगढ़ के मैदान से लगभग दो किलोमीटर थी. सीढ़ियां ज़रूर बनी हुई थीं, लेकिन देखरेख के अभाव में जर्जर हो गयी थीं. किले के मुख्य द्वार के दोनों तरफ़ हाथी की आकृति बनी हुई थी. शासक के बैठने के लिए पत्थर का सिंहासन बना हुआ था. सिंहासन के सामने एक बड़ा हाल बना हुआ था. शायद, वहां शेरशाह का दरबार लगता होगा. कहा जाता है कि शेरशाह जब भी सासाराम आता था तो इस किले में महीनों रहा करता था. किले में बने कुओं में पानी लबालब भरा रहता था; जबकि पहाड़ी के नीचे के मैदानी इलाक़ों में दूर-

दूर तक पानी का नामोनिशां नहीं था. सेटलाइट से भी उस इलाक़े में पानी नहीं खोजा जा सका था. आसपास के गांव वाले मज़बूरी में; पीने का पानी टैंकर से मंगवाते थे.

किले की ख़ासियत और ख़ूबसूरती का रोचक व ज्ञानवर्धक वर्णन सुनकर किला देखने के प्रति संजीव की उत्सुकता बहुत ज़्यादा बढ़ गयी. इसका एक कारण संजीव का इतिहास का छात्र भी होना था. संजीव को प्राचीन मंदिर, किले और खंडहर देखने का बहुत शौक़ था. स्कूल के दिनों में दोस्तों के साथ; साइकिल से राजगीर और नालंदा विश्वविद्यालय के खंडहर और पावापुरी घूम आया था संजीव. राजगीर में उसकी मौसेरी बहन का घर था, जहां वह एक रात रुका भी था. पटना साहिब, कुम्हरार, जहां चंद्रगुप्त मौर्य, बिंदुसार तथा अशोक कालीन पाटलिपुत्र के भग्नावशेष हैं, वैशाली का शांति स्तूप, आर्यभट्ट की खगोल में स्थित वेघशाला आदि सभी स्थानों का संजीव भ्रमण कर चुका था.

सुबह ५.३० बजे ही सभी लोग किले जाने के लिए निकल गये. नाश्ते के लिए रात को लिट्टी और चोखा बना लिया गया था. जब वे किले तक जाने वाले संपर्क मार्ग पर पहुंचे तो देखा कि किले तक जाने वाली सीढ़ी जर्जर हालात में है; किंतु जिसका इस्तेमाल करना मुमकिन नहीं था. इस वजह से किले तक पहुंचने में बहुत ज़्यादा मशक्कत करनी पड़ी. दया अंकल संजीव का हाथ पकड़कर चढ़ाई कर रहे थे. उम्र अधिक होने की वजह से उनकी सांसे तेज़ हो गयीं.

किला भले ही टूट-फूट गया था, लेकिन उसकी ख़ूबसूरती देखते बन रही थी. संजीव ने हाल ही में मध्यकाल की स्थापत्य कला पर एक क़िताब पढ़ी थी, जिसमें इस किले का भी ज़िक्र था. इसलिए, इस किले के हर एक भाग को संजीव बड़ी बारीक़ी देख रहा था. किले का जो भी हिस्सा उसे अच्छा लग रहा था; उसकी वह फ़ोटो निकाल रहा था.

किले से वापिस लौटते समय पिताजी ख़ुश थे. वे दया अंकल से बात करते हुए कह रहे थे, 'सर, मेरा बड़ा बेटा राजीव; नौकरी कर रहा है, सेवानिवृत्ति के पैसे से बेटी की शादी कर दूंगा, संजीव मेरा छोटा बेटा है, वह भी पढ़ने में ठीक-ठाक है कोई न कोई नौकरी ज़रूर कर लेगा.' संजीव, साफ़ तौर पर पिताजी के चेहरे पर सुकून और संतुष्टि का भाव देख रहा था. ऐसा लग रहा था कि भविष्य की सभी योजनाओं को पहले से ही तय कर रखा था पिताजी ने. हालांकि, उनके सेवानिवृत्त होने में बारह साल बचे हुए थे.

□

सुनील ने संजीव को लगभग झकझोरते हुए कहा कि तुम ठीक हो न? तब जाकर संजीव की तंद्रा भंग हुई. उसकी आंखों में भभुआ में पिताजी के साथ घूमे हुए स्थानों के दृश्य और पिताजी की बातें चलचित्र की मानिंद चल रही थीं. तंद्रा टूटने के बाद भी उसे लग रहा था कि पिताजी अभी आकर उसके सामने खड़े हो जायेंगे और बोलेंगे, 'बेटा रम की एक बोतल मंगल मार्केट से ले आओ, मैं बहुत थक गया हूं.' पिताजी महीने में ३-४ बार संजीव से रम का एक क्वार्टर ज़रूर मंगवाते थे. यह उनका मनपसंद ब्रांड था. वे बड़े ही खुले विचारों के थे. होली में भी राजीव भैया को; साथ में बैठकर शराब पीने के लिए कहते थे. वे हमेशा राजीव भैया से कहते थे, 'मुझे जो बातें दूसरे से बाद में मालूम होंगी, अच्छा होगा कि वह तुम ख़ुद मुझे बता दो.' पिताजी को मालूम था, 'भैया होली में दोस्तों के साथ शराब पीते हैं.' संजीव सोच रहा था, 'क्या भगवान अच्छे इंसानों के साथ ही बुरा सुलूक करते हैं; हत्यारे अत्याचारी और भ्रष्ट इंसान दिन दूनी, रात चौगनी प्रगति कर रहे हैं.

ठीक एक महीना पहले ७ फरवरी को पिताजी का एक्सीडेंट हुआ था और ८ तारीख़ की सुबह पांच बजे कुछ पुलिस वाले पिताजी को लेकर घर आये थे. संजीव पढ़ाई कर रहा था. कालबेल की आवाज़ सुनकर वह चौंक गया था. वह मन ही मन सोच रहा था, 'इस वक़्त कौन आ सकता है; दूधवाला तो ७ बजे आता है.' डरते-डरते संजीव ने दरवाज़ा खोला था. सामने एक पुलिससवाले को देखकर वह घबरा गया था. उसने हड़बड़ा कर पूछा था, 'कहां से आप लोग आये हैं और क्या काम है?' उन्होंने कहा, 'हम लोग तुम्हारे पिताजी के सहकर्मी हैं; उनका एक्सीडेंट हो गया है; हम उन्हें साथ लेकर आये हैं; सब ठीक है; घबराओ नहीं.'

एक्सीडेंट की ख़बर सुनकर संजीव विचलित हो गया था. मां सोई हुई थीं, लेकिन पहले कालबेल की आवाज़ और फिर हम लोगों की बातचीत सुनकर वह भी दरवाज़े पर आ गयीं. हालांकि, इस बुरी ख़बर को सुनने के बाद भी मां घबराई नहीं. मां, हिम्मत वाली महिला थीं. मां बताती थीं कि वह छः महीने की उम्र में बोरसी में गिर गया था, जिसकी वजह से उसका दायां पैर बुरी तरह से जल गया था और

फिर खाजे की तरह यानी पैर की त्वचा में परत-दर–परत सूजन आ गयी थी. उंगलियों के नाख़ून दिखाई नहीं दे रहे थे. नालंदा ज़िले के हिलसा तहसील में अवस्थित पखनपुर गांव का रहने वाला था संजीव. हिलसा के डॉक्टरों ने संजीव का इलाज करने से मना कर दिया था. फिर भी, मां बिना घबराये; संजीव को लेकर अकेले ही पिताजी के पास पटना आ गयी थीं; जबकि पूर्व में, वे कभी पटना नहीं गयी थीं.

संजीव और मां पुलिस वैन के पास पहुंचे; क्योंकि सड़क नहीं होने की वजह से उनके घर तक किसी भी चार पहिया वाहन का पहुंचना मुमकिन नहीं था. पिताजी स्ट्रेचर पर लेटे थे. दर्द से उनका चेहरा स्याह पड़ गया था. हालांकि, पिताजी में दर्द सहने की अद्भुत क्षमता थी. एक बार नक्सलियों से मुठभेड़ के दौरान पिताजी के सिर में तीन तीर लग गये थे, लेकिन उन्होंने ख़ुद से; उन्हें अपने हाथ से बाहर निकाल लिया था. इतना ही नहीं; लंगड़ाते हुए वे लगभग पांच किलोमीटर चलकर पुलिस मुख्यालय तक भी पहुंच गये थे. उनके बॉस और डॉक्टर उनकी हिम्मत देखकर आश्चर्यचकित थे. डॉक्टरों ने यह कहानी मां को सुनायी थी. कहा था, 'आपके पति बहुत ही बहादुर हैं.'

आज पिताजी की आंखों में दर्द की तस्वीर साफ़ तौर पर दिख रही थी. पिताजी को असहाय देख; संजीव की आंखों में आंसू आ गये. उसका मन जोर-जोर से रोने का कर रहा था. संजीव का चेहरा देखकर पिताजी उसकी मन:स्थिति को अच्छी तरह से समझ गये थे. पिताजी असहनीय दर्द की वजह से बोल नहीं पा रहे थे; लेकिन आंखों से संजीव को सांत्वना दे रहे थे, कह रहे थे, 'चिंता मत करो, सब कुछ ठीक हो जायेगा'. पिताजी के दोनों पैर और एक हाथ की हड्डियां कई जगह से टूट गयी थीं. शायद सीने की हड्डियां भी टूट गयी थीं; क्योंकि वहां भी उन्हें तेज़ दर्द हो रहा था.

पिताजी के साथ आये दारोगा अंकल ने संजीव से पूछा, 'किस अस्पताल में पिताजी को भर्ती करवाना है?' संजीव उनका चेहरा देखने लगा था, उसे कुछ सूझ नहीं रहा था, क्या जबाव दे. वह बारहवीं का छात्र था. उसे डॉक्टरों या अस्पतालों के बारे में कुछ भी नहीं मालूम था. संजीव ने मां से भी हड्डी के डॉक्टर के बारे में पूछा, लेकिन उन्हें भी कुछ नहीं पता था.

पटना के खाजपुरा मोहल्ले में संजीव रहता था. पटना में होने के बावजूद इस मोहल्ले में गांव जैसा माहौल था. पुलिस की गाड़ी को देखकर अच्छी-ख़ासी भीड़ जमा हो गयी थी. संजीव सोच ही रहा था कि किससे किसी अच्छे हड्डी के डॉक्टर के बारे में पूछे; इसी बीच, भीड़ में से किसी सज्जन ने; जो पिताजी को जानते थे; आर. सी. राम नर्सिंग होम में पिताजी को भर्ती कराने की सलाह दी. यह नर्सिंग होम; बाज़ार समिति के पास अवस्थिति था. उस सज्जन ने कहा कि डॉ. आर. सी. राम एक अच्छे ऑर्थपीडिक सर्जन हैं. आप लखन बाबू को वहां भर्ती करवाइए.

आर. सी. राम नर्सिंग होम में इलाज कराना महंगा था, लेकिन संजीव ने पिताजी को; वहां इसलिए भर्ती करवाया; क्योंकि पिताजी उस नर्सिंग होम में जल्दी ठीक हो सकते थे. संजीव को यह भी उम्मीद थी कि दोस्तों और रिश्तेदारों से कुछ आर्थिक मदद मिल जायेगी. भर्ती के बाद पैर एवं हाथों का तो एक्सरे किया गया, लेकिन सीने का एक्सरे नहीं लिया गया, जबकि पिताजी सीने में भी असहनीय दर्द होने की शिकायत कर रहे थे. संजीव ने डॉक्टर को सीने का एक्सरे लेने के लिए कहा; लेकिन डॉक्टर ने उसे डांटते हुए कहा, 'डॉक्टर मैं हूं या तुम, मुझे मेरा काम नहीं सिखाओ'. रूखा–सा जवाब सुनकर; संजीव की दोबारा डॉक्टर से कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई. उसमें आत्मविश्वास की भी थोड़ी कमी थी. हालांकि, पिताजी हमेशा उसका हौसला बढ़ाते थे. कहते थे, 'अभी तो तुम बारहवीं में ही हो, धीरे-धीरे तुममें आत्मविश्वास आ जायेगा'. पिताजी की जांच करने के बाद डॉक्टरों ने कहा, 'दो दिनों के बाद ऑपरेशन किया जायेगा, तीस हज़ार रुपये तुरंत कैश कॉउंटर पर जमा कर दीजिए, चार बोतल ख़ून का भी इंतज़ाम करना होगा, आपके पिताजी का ब्लड ग्रुप ओ पॉज़िटिव है'.

संजीव मन ही मन सोच रहा था कि ख़ून तो दोनों भाई दे देंगे; क्योंकि उनका ब्लड ग्रुप भी ओ पॉज़िटिव है, लेकिन पैसों का इंतज़ाम कैसे होगा? यह सोचकर संजीव का मन बेचैन हो रहा था. मां को छोड़कर कोई घर में बड़ा था भी नहीं, जिससे वह अपनी बात साझा करता. राजीव भैया कॉर्पोरेशन बैंक की हैदराबाद स्थित मुख्य शाखा में पद स्थापित थे. उनकी नौकरी नयी थी. इसलिए, उनके लिए भी तुरंत इतनी बड़ी रक़म का इंतज़ाम करना मुमकिन नहीं था. सबसे बड़ी समस्या, तो उनसे संपर्क करने की थी; क्योंकि पिताजी के एक्सीडेंट की ख़बर सुनकर वे तुरंत

पटना की ट्रेन में सवार हो गये थे. उनकी ट्रेन ऑपरेशन वाले दिन सुबह पहुंचने वाली थी. राजीव भैया ने कहा था कि स्टेशन से वे सीधे नर्सिंग होम पहुंच जायेंगे. ऑपरेशन का समय; दोपहर के तीन बजे निर्धारित हुआ था.

पिताजी भले ही पुलिस महकमे में काम करते थे, लेकिन ईमानदार होने की वजह से परिवार हमेशा आर्थिक झंझावातों से जूझता रहता था. संजीव के परिवार की गुज़र-बसर बड़ी मुश्किल से हो पाती थी. पिताजी के कई साथी पटना के पॉश इलाक़े में आलीशान मकान बना चुके थे. वे आवागमन के लिए चार पहिया वाहन का इस्तेमाल करते थे, लेकिन पिताजी शुरू से ही ईमानदारी का दामन थामे हुए थे.

पटना में घर होने की वजह से रिश्तेदार हमेशा हमारे यहां आते रहते थे. कभी मौसी, कभी मामी तो कभी चाचाजी. संजीव अपने घर को रैन बसेरा मानता था; क्योंकि सिर्फ़ तीन ही कमरे बने थे. दो कमरों में तो खिड़की-दरवाज़ा भी नहीं था. किसी कमरे में प्लास्टर नहीं हुआ था. शौचालय भी नहीं बना था. इस ज़मीन को मां ने अपने गहनों को बेचकर ख़रीदा था. पटना से लगभग ६० किलोमीटर की दूरी पर; नालंदा ज़िले कि हिलसा तहसील में संजीव का गांव था. पटना जैसे बड़े शहर में; सिर्फ़ वेतन के पैसों से तीन बच्चों का लालन-पालन करना, उन्हें पढ़ाना-लिखाना और नियमित तौर पर अतिथियों का सत्कार करना आसान नहीं था. पैसों की किल्लत की वजह से; संजीव खाली ज़मीन में सब्ज़ियां उगाता था. उसे कभी भी बाज़ार से सब्ज़ी नहीं ख़रीदनी पड़ती थी. इससे पिताजी को काफ़ी राहत मिल जाती थी.

मां ने ऑपरेशन के पैसों का इंतज़ाम करने के लिए सभी रिश्तेदारों के सामने हाथ फैलाए, लेकिन किसी ने मदद नहीं की. सभी गहनों को गिरवी रखने के बाद २५,००० रुपये की व्यवस्था हो पायी, जिसे संजीव ने कैश कॉउंटर पर जमा कर दिया. फिर भी, अस्पताल प्रबंधन ऑपरेशन करने के लिये राजी नहीं था. संजीव का मन व्यथित था. वह सोच रहा था कि कैसे और कहां से बचे हुए पांच हज़ार रुपये का इंतज़ाम होगा? उसने तमाम विकल्पों को आजमा लिया था. संजीव का मन अशांत था, इसी बीच नर्स ने तुरंत कुछ दवाइयां लाने के लिए उससे कहा.

वह नर्सिंग होम के सामने अवस्थित सुमन मेडिकल स्टोर पहुंचा. मेडिकल स्टोर को दो भाई, मुकेश और दिनेश चलाते थे. उनका छोटा भाई पिंटू कभी-कभार दुकान पर आता था. वह भी एक अच्छे स्वभाव का लड़का था. एक-दो दिन में ही संजीव उनके साथ घुल-मिल गया था. संजीव के चेहरे पर दिख रही परेशानी को दिनेश ने तुरंत भांप लिया. वह बोला, 'क्या कोई समस्या है भैया?' संजीव ने झिझकते हुए बोला, 'हां, दिनेश भाई, ऑपरेशन के लिए प़ांच हज़ार रुपयों का इंतज़ाम नहीं हो पा रहा है, अगर शाम तक पैसे जमा नहीं करूंगा, तो कल पिताजी का ऑपरेशन नहीं हो पायेगा,' बोलते-बोलते संजीव की आवाज़ लरजने लगी.' दिनेश ने बोला, 'बस इतनी-सी बात के लिए आप घबरा रहे हैं, कहते-कहते दिनेश ने गल्ले से रुपये निकालकर संजीव के हाथों पर रख दिया.' संजीव पैसे लेने के लिए तैयार नहीं था. हालांकि, दिनेश के बहुत जोर देने पर उसने पैसे ले लिये. दिनेश बोला, 'इंसानियत की वजह से ही यह दुनिया चल रही है, मुझे मालूम है, मेरा पैसा कहीं नहीं जायेगा, मुझे इंसान पहचानना आता है.' संजीव ने दिनेश से पुन: कहा, 'कम से कम आप अपने पिताजी से पूछ लेते.' दिनेश बोला, 'पिताजी मेरे फ़ैसले को कभी ग़लत नहीं ठहराते हैं; उन्हें मालूम है; मैं कोई भी ग़लत काम नहीं करूंगा.'

दोनों पैर और एक हाथ का ऑपरेशन सफल रहा. हालांकि, पिताजी के सीने का दर्द बदस्तूर ज़ारी था. वे डॉक्टरों से लगातार इसकी शिकायत कर रहे थे, लेकिन उनके कानों में जूं नहीं रेंगी. संजीव के लिए आर्थिक समस्याएं बढ़ती जा रही थीं, लेकिन भगवान की कृपा से सही वक़्त पर समस्या का समाधान भी मिल जा रहा था. इस मुश्किल घड़ी में; मोहल्ले में रहने वाले कलीम अंसारी ने तीस हज़ार रुपये की मदद की, जो संजीव के लिए अप्रत्याशित था. संजीव ने उनसे मदद भी नहीं मांगी थी. वे ख़ुद से हमारी डूबती नैया के खेवनहार बने थे. मां, उन्हें अपना छोटा भाई मानती थी. वे राजीव भैया के मित्र, नजर भैया के मामूजान थे. संजीव के कुछ दोस्तों ने भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार इस मुश्किल समय में सहायता की. संजीव का स्कूल का दोस्त सुनील; साइकिल से रोज़ नर्सिंग होम खाना पहुंचाता था; ताकि भाड़े के तीस रुपये बच सकें. खाजपुरा से नर्सिंग होम जाने और फिर वापिस लौटने में ३० किलोमीटर की दूरी सुनील को हर रोज़ तय करनी

पड़ती थी.

संजीव, सुनील के साथ नर्सिंग होम पहुंचा तो सुबह के ५ बज गये थे. मां के रोने की आवाज़ पूरे फ़्लोर में सुनाई दे रही थी. कुछ नर्सें मां को शांत रहने के लिए कह रही थीं. जब संजीव कमरे में पहुंचा तो पिताजी अस्पताल के बेड पर ही पड़े थे. बेड की चादर ख़ून से लथपथ हो गयी थी. सफ़ेद मार्बल का बना फ़र्श भी ख़ून से लाल हो गया था. ऐसा लग रहा था, जैसे किसी ने चाकू से घोंप-घोंप करके पिताजी की हत्या की थी. नर्सों ने बताया कि लगातार ख़ून की उल्टी होने की वजह से आपके पिताजी की मृत्यु हो गयी. मां को लग रहा था कि किसी ने जादू-टोना से उनके पति को मार दिया, जबकि संजीव को लग रहा था कि डॉक्टरों ने पिताजी को मार दिया. संजीव विवश था. वह चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सकता था. उसके पास डॉक्टरों के खिलाफ़ कोई सबूत नहीं थे.

डॉक्टर नर्स को कह रहा था, ''बॉडी का पोस्टमार्टम करवाना होगा; यह एक्सीडेंट का मामला था.'' डॉक्टर ने नर्स को कहा, ''स्थानीय थाने में इसकी सूचना दे दो.'' सुबह ७ बजे एंबुलेंस से पिताजी की बॉडी को पटना मेडिकल कॉलेज़ अस्पताल पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया गया. संजीव हैरान-सा पिताजी को बॉडी में तब्दील होता हुआ देख रहा था.

संजीव, पहली बार मुर्दाघर गया था. शवों की चीर-फाड़ करने वाले कर्मचारी ने कहा कि आपकी बॉडी का आज पोस्टमार्टम नहीं हो पायेगा. पहले से आयी हुई बॉडीज़ का पहले पोस्टमार्टम होगा. मार्च का महीना था. वातावरण में हल्की गर्मी थी. ज़्यादा देर होने पर पिताजी का शरीर सड़ सकता था. साथ ही, दु:ख की इस घड़ी में लंबे समय तक मुर्दाघर के बाहर खड़े रहना और मरने के बाद पिताजी की ऐसी दुर्गति होना; संजीव के लिए बहुत ही कष्टकर था. संजीव ने राजीव भैया को फ़ोन से वस्तुस्थिति से अवगत कराया. राजीव भैया के मित्र, मनोज भैया, पटना मेडिकल कॉलेज़ में एमबीबीएस के छात्र थे. उनके प्रयासों से; उसी दिन पिताजी का पोस्टमार्टम हो गया.

पोस्टमार्टम रिपोर्ट में सीने के घाव को संजीव के पिताजी की मौत कारण बताया गया, जो हड्डियों के टूटने की वजह से हुआ था. इलाज नहीं होने के कारण घाव नासूर बन गया. लगातार खांसी होने से घाव पर दबाव पड़ा और ख़ून की उल्टी हुई, जिससे पिताजी की सांसे रुक गयीं. पोस्टमार्टम रिपोर्ट के आधार पर डॉक्टरों को कोर्ट में घसीटा जा सकता था; लेकिन संजीव का परिवार डॉक्टरों के खिलाफ़ कोई कार्रवाई करने की स्थिति में नहीं था. वे ख़ुद को संभालते या फिर कोर्ट-कचहरी का चक्कर लगाते. संजीव अच्छी तरह से समझ चुका था, ''इस दुनिया में कमजोरों को न्याय मिलना मुमकिन नहीं है?''

पटना मेडिकल कॉलेज़ से पिताजी को लावारिश लाश की तरह ठेले पर लादकर बांसघाट लाया गया. देखकर, संजीव को रुलाई आ रही थी. वह भगवान से दुआ कर रहा था कि ऐसी मौत किसी को नहीं मिले. ज़िंदगी भर पिताजी ने दूसरों का भला किया; लेकिन उन्हें अच्छाई करने के बदले मौत की सज़ा मिली.

पिताजी को अंतिम विदाई देने के लिए कुछ दोस्त एवं रिश्तेदार मौजूद थे. एक-एक पल संजीव पर भारी पड़ रहा था. उसका मन अशांत था. पिताजी के देहांत की ख़बर सुनने के तुरंत बाद वह अपने को मारना चाहता था, लेकिन मां का चेहरा आंख़ों के सामने आने के बाद उसने अपने को ग़लत क़दम उठाने से रोका था. मां की नींद की दवाई की पूरी शीशी अभी भी उसकी जेब में रखी थी. पिताजी को ठेले पर लेकर आते हुए देखकर उसका मन और भी विचलित हो गया था. उसे लग रहा था कि ऐसे निष्ठुर संसार में जीने का क्या फ़ायदा?

मुखाग्नि देने से पहले पिताजी के पूरे शरीर में नज़दीकी रिश्तेदारों ने बारी-बारी से घी लगाया. संजीव जब घी लगा रहा था तो देखा कि, पिताजी का पेट और सीना धागों से सिला हुआ है; देखकर, उसका मन पुन: खिन्न हो गया. किसी तरह से उसने अपनी भावनाओं को नियंत्रित किया. फिर, उसने पिताजी के शरीर को कफ़न से ढंक दिया. शरीर के ऊपर लकड़ियां उसने इस तरह से रखीं कि पूरा शरीर अच्छी तरह से जल जाये. ढेर सारा कपूर भी लकड़ियों के बीच रख दिया उसने.

राजीव भैया ने चिता को मुखाग्नि दी. सूखी लकड़ी, कपूर और अत्याधिक घी होने की वजह से पिताजी का शरीर धू-धू कर जलने लगा. पिताजी का जलना संजीव के लिए असहनीय था. भावावेश में उसने पॉकेट से नींद की सारी गोलियां निकालकर एक ही बार में खा लीं. ऐसा करते

(शेष भाग कृपया ६३ पर देखें...)

अपने-अपने विदेह!

प्रकाश कांत

जन्म : २६ मई,१९४८; सेंधवा (पश्चिम निमाड़, म. प्र.)
शिक्षा : एम. ए. (हिंदी). रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच. डी.

: प्रकाशन :
शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां एवं आलेख प्रकाशित. चार उपन्यास: 'अब और नहीं', 'मक्तल', 'अधूरे सूर्यों के सत्य', 'ये दाग़-दाग़ उजाला'; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह : 'शहर की आखिरी चिड़िया', 'टोकनी भर दुनिया', 'अपने हिस्से का आकाश'; संस्मरण : 'एक शहर देवास, कवि नईम और मैं'; फ़िल्म पर एक पुस्तक : हिंदी सिनेमा : सार्थकता की तलाश

: संप्रति :
स्वतंत्र लेखन

'पापा, सुमित कुछ दिनों के लिए बाहर जा रहे हैं. मैं आ रही हूं!' मोबाइल पर शुभा थी.

'अच्छा, ठीक है.' उन्होंने कहा था. स्विच ऑफ़ करने के बाद कुछ देर मोबाइल को देखते रहे थे. फिर बाहर आ गये थे. दीवार के पास लगे पौधों को देखते रहे थे. हालांकि सबेरे पानी देते वक़्त भी देख चुके थे. जैसा कि हमेशा से करते आ रहे थे. सबेरे चाय पीने के बाद पहला काम पौधों को पानी देने का करते. उनके आसपास छोटी-मोटी साफ़-सफ़ाई करते. मिट्टी उलीचते. यह कर चुकने के बाद पौधों को कुछ देर देखते रहते. सहलाते. कभी-कभी तो चाय भी इसी बीच पीते!

'अब चाय तो चैन से बैठकर पी लो! दस-पांच मिनिट देर होने से पौधे रूठ नहीं जाने वाले!' शुभा की मां नाराज़ भी होती!

'तुम्हारे भगवान जी को रोज़ ताज़ा फूल ये ही बेचारे देते हैं!' उनका कहना होता. अब शुभा की मां नहीं थी. फूल थे, पौधे थे, वे थे. शुभा आ रही थी. शुभा जो बचपन में उन पौधों के पास खेलती रहती थी. वे खुरपी, कैंची, पानी की बाल्टी लिये अपना काम कर रहे होते. शुभा से बात करने के साथ-साथ! कुछ बातें जवाबों की शक्ल में होतीं. शुभा के सवाल! पापा, मिट्टी क्यों खोद रहे हैं. पापा, ये फूल कौनसा है. पापा, इस पौधे में चिड़िया अपना घर बनायेगी. पापा, चिड़िया क्या मुझे अपने घर में आने देगी?

कई सवाल. नयी-नयी तरह के! सवाल के साथ कभी-कभी उनकी पीठ पर लद जाती. गले में हाथ डालकर झूल जाती. वे काम रोक कर उससे खेलने लगते. इस सब में उसके हाथ या पैर में मिट्टी लग जाती. कभी-कभी वही मिट्टी से हाथ भर लेती.

'लड़की, कपड़े गंदे मत कर! धोना तेरे पापा को नहीं मुझे पड़ते हैं!'

भीतर से उसकी मां डांटती. तब तक वह मिट्टी दोनों हाथों में भर चुकी होती.

'पापा देखो!' वह मिट्टी सनी हथेलियां दिखाकर हंसती.

'अब मम्मी डांटेगी!' वे कहते और ख़ुद भी हंस देते.

'तुम इसे सिर चढ़ा रहे हो! तुम्हारे कारण अभी से कुछ नहीं सुनती. आगे जाकर पता नहीं क्या करेगी! तब मुझसे मत कहना.' शुभा की मां की आवाज़ में नकली ग़ुस्सा होता.

'चलो, हाथ धो जल्दी! मम्मी मुझ पर नाराज़ हो रही है.' वे उसकी हथेलियां पानी की बाल्टी में डुबा देते. उसे एक नया खेल मिल जाता. पानी में छपक-छपक करने लगती. पानी उसके सिर, चेहरे और फ्रॉक पर उड़ने लगता. उसकी आंखों का खुलना-बंद होना चलता रहता. चेहरे पर सुबह की उजली धूप में नहायी ख़ुशी होती. वे देखकर मुस्कुरा रहे होते.

'रोको उसे! सर्दी हो जायेगी!' भीतर से उसकी मां के डांटने की आवाज़ आती. इस बार आवाज़ में सच में ग़ुस्सा होता. वे अपना काम रोक कर उसे भीतर ले जाते. बदन पोंछते. फ्रॉक बदलते. उसकी नकली रुलाई चलती रहती. तब तक उसकी मां उसकी पसंद की चीज़ खाने के लिए उसके सामने रख देती. रुलाई बंद हो जाती. वे गीला फ्रॉक सूखने डाल फिर से अपने काम में लग जाते.

'जल्दी निपटाओ. देर हो रही है!' इस बार किचन में से आयी आवाज़ उनके लिए होती. वे खिड़की में से घड़ी पर नज़र डालते. घड़ी बड़ी थी. जिसके नीचे आमने-सामने दो फूल बने हुए थे. शुभा उसे 'फूलवाली घड़ी' कहती थी. वे भी कहने लगे थे.

आज भी उन्होंने एक बार खिड़की से फूलवाली घड़ी पर नज़र डाली. शाम के धुंधलके में वक़्त नहीं दिखा.

'इसे बदल कर दूसरी ले आओ!' बीच-बीच में बंद होती रहने पर शुभा की मां ने कहा था. नहीं बदली थी. उसकी मशीन बदलवा लाये थे. डायल और केस वही रहने दिये थे. घड़ी का बंद या आगे-पीछे होना बंद हो गया था. फूल अपनी जगह क़ायम थे. शुभा का वक़्त से परिचय उसी घड़ी के ज़रिये ही हुआ था. उसी से वक़्त देखना सीखा था. आठ बजे... सवा आठ... साढ़े दस... पौने ग्यारह! दो बजकर दस मिनिट... चार में बीस की देर...' वे बताते जाते. वह समझती जाती. हालांकि, गड़बड़ भी करती! धीरे-धीरे सीख गयी.

'पापा देखो, इतने बजकर इतने मिनिट हुए हैं न... सात बजने में पांच मिनिट की देर है न!' आते-जाते उन्हें बताती रहती. अक्सर सही होती! बाद में हमेशा सही रहने लगी! बड़े होने पर उसके अपने और भी कुछ सही-ग़लत तय हो गये.

'मम्मी, जल्दी करो, सात बीस हो गयी! स्कूल का गेट बंद हो जायेगा....! पापा, साइकिल निकालो. ...साढ़े चार बज रहे हैं... मुझे सामान लाकर प्रोज़ेक्ट तैयार करना है...!' वह उन पर और अपनी मां पर सवार रहती. वे पूरी तरह उसकी हाज़री में रहते. क़िताबों पर कवर चढ़ाते. यूनिफ़ॉर्म पर प्रेस करते.

'पापा अगर कहीं गयी तो यह घड़ी साथ ले जाऊंगी.' उसका कहना था. लेकिन वह शादी करके चली गयी. घड़ी अब भी चल रही थी. सही वक़्त भी बता रही थी. अपने-आप. सिर्फ़ सेल बीच-बीच में बदलने पड़ते थे. सेल ख़त्म होते ही बंद हो जाती थी. वैसे, इधर कभी-कभी बंद सेल दो-दो, तीन-तीन दिन नहीं बदले जा पाते थे. कांटे उसी समय पर रुके रहते थे जिस पर सेल ख़त्म हुए थे. कहीं आना-जाना था नहीं इसलिए वक़्त जानने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी. सुबह, दोपहर, शाम, रात की मोटी-मोटी जानकारी से काम चल जाता था. इस बीच बंद घड़ी पर फिर ध्यान जाता तो पड़ोस की दुकान से सेल ले आते. सेल डालते ही घड़ी चलने लगती. वक़्त मिलाने के बाद सही समय बताने लगती. यही घर में चाहे कोई हो या ना हो! कोई वक़्त देखे या फिर ना देखे! घर अगर खाली हो तो घर के सूनेपन को वक़्त बताती रहती. सूनेपन को अपने होने के समय का पता चलता रहता. दो बजे का सूनापन! छः बजे का सूनापन!

शुभा पूरा घर सिर पर उठाये रहती थी. जब तक स्कूल के लिए नहीं निकलती उसकी मां और वे उसकी तैयारी में जुटे रहते. मां लंच बॉक्स तैयार करने में लगी होती. बाक़ी तैयारी उन्हें करनी होती. नाश्ता करवाने, स्कूल बैग जमाने, जूते-मोजे पहनाने तक! थोड़ी बड़ी हो जाने पर जूते-मोजे ख़ुद पहनने तो लगी थी लेकिन जूते-मौजे अक्सर घर में गुमे हुए जैसे होते. एक जूता टेबिल के नीचे होता तो दूसरा साइकिल के पीछे. मोजों का तो कुछ भी तय नहीं रहता. वे कहीं भी हो सकते थे! बाथरूम के पास, अलमारी के पीछे! ढूंढने की ज़िम्मेदारी उनकी होती. वह तैयार होते चिल्लाती रहती. 'पापा, मेरा एक जूता नहीं मिल रहा. मेरा

दूसरा मोजा कहां है?'

यही हाल क़िताबों, नोटबुक का होता था. रात को होमवर्क करते-करते सारा फैलारा करके रख लेती. कभी-कभी होमवर्क करते-करते ही सो जाती थी. उन्हें या उसकी मां को उसे ठीक सुलाकर उन चीज़ों को अवेरना पड़ता था. फिर भी कुछ ना कुछ तो रह ही जाता. जिसकी सबेरे ढूंढ़ मचती. 'मम्मी मेरा कंपास बॉक्स... पापा, मेरी वर्क बुक... मेरा पेन... शार्पनर...'

'लड़की, तुझे रात को ही सब ठीक से अवेरकर नहीं रखते बनता! तेरी मैडम से शिकायत करनी पड़ेगी.' उसकी मां डांटती.

'पापा, ढूंढ़ो जल्दी-जल्दी...!' डांट अनसुनी कर वह उनसे कहती रहती!

'कुछ मत ढूंढ़ो जी! जाने दो इसे ऐसे ही! स्कूल में जब कसके डांट पड़ेगी न तब अकल ठिकाने आयेगी!'

'पापा प्लीज़ ज़ल्दी-ज़ल्दी..' वह धीमी आवाज़ में उनके पीछे लगी रहती. वे जैसे-तैसे ढूंढ़ निकालते. और अक्सर यह गनीमत ही रहती.

'थैंक्यू पापा... थैंक्यू...!' उसके चेहरे पर खुशी होती.

'थैंक्यू की बच्ची, शाम को बताती हूं तुझे!' उसकी मां की डांट या झिड़की की यह उस दिन की आख़िरी क़िस्त होती. अगले ही कुछ पलों में वह उनकी साइकिल पर निकल चुकी होती. मां की झिड़की की आख़िरी क़िस्त किचन में ही गूंजती छोड़ कर, अधपिये अपने गिलास के साथ!

'बेटू जी, स्कूल से लौटने पर मम्मी अच्छी परेड लेगी!' रास्ते में कहते.

'शाम तक तो वह सब भूल जायेगी!' उसका लापरवाह-सा जवाब होता. जहां तक घर में उसकी गुमी-छिपी चीज़ें ढूंढ़ निकलने की बात है, रोज़ की ढूंढ़-तलाश में वे उन चीज़ों को अच्छी तरह से पहचानने लगे थे. हालांकि कुछेक चीज़ों के नाम जानते नहीं थे. जैसे कंपास बॉक्स की चीज़ें! या कुछ को देसी नाम से पहचानते थे. जैसे डेढ़ टांगिया!

'ये क्या नाम हुआ! डेढ़ टांगिया!' वह हंसती, यह नाम सुनकर!

'अब बेटू जी, हमने तो ये ही नाम सुने हैं.'

बहरहाल ढूंढ़ निकालते!

'क्या पापा, अभी तक आपको मिला ही नहीं!' मिलने में देर होने पर उसकी शिकायत होती.

इतना सब होने के बाद भी कई बार यह होता कि कुछ न कुछ घर छूट जाता. ज़रूरी-सा. रास्ते में याद आती.

'अरे पापा, मैथ्स की नोटबुक तो घर ही रह गयी. मेम आज चेक करने वाली हैं!' वह रुआंसी हो कहती. वे साइकिल मोड़ते और तेज़ रफ़्तार से घर पहुंचते. गनीमत होती कि ऐसी ज़रूरी चीज़ सामने ही मिल जाती. उठाते और भागते.

'पापा, तेज़..! स्कूल का गेट बंद हो जायेगा!' वे साइकिल तेज़ चलाने लगते. और गेट बंद होते-होते तक तो पहुंच ही जाते. हालांकि पसीना-पसीना हो जाते. वह साइकिल से उतर कर तेज़ी से गेट के भीतर हो जाती. एक बार पलटकर उन्हें देखती. मुस्कुराती.

'बाय पापा!' उसकी नन्हीं हथेली हवा में हिलती. उनकी थकान ग़ायब हो जाती. कमीज़ की बांह से पसीना पोंछते और लौट आते. धीरे-धीरे.

उसे साइकिल पर स्कूल छोड़ने-लाने तो जाते ही थे इसके अलावा शहर में घुमाने भी ले जाते थे. ख़ासकर पार्क में! पार्क घर से क़रीब डेढ़-दो किलोमीटर था. शाम को ख़ासकर छुट्टी के दिन ले जाते थे. कभी-कभी उसकी मां भी साथ होती. पार्क में ज़्यादा कुछ नहीं था. फिर भी ठीक था. वह घास पर दौड़-भाग करती रहती. लाइट जलते ही ले आते. आकर वह अपने होमवर्क में लग जाती.

पापा का हवाई ज़हाज! उसने साइकिल का नाम रखा था. हालांकि कुछ साल बाद उन्होंने स्कूटर ले लिया था. साइकिल भी रहने दी थी. चौथी-पांचवी क्लास में आ जाने पर उसने उसी से साइकिल चलाना सीखा था. उन्होंने ही सिखाया. खाली समय में! सीखने के दौरान दो-एक बार गिरी भी थी. कोहनी और घुटने फूटे. रोयी भी थी. उसकी मां उसे मना करती थी. डरती थी कि कहीं हाथ-पांव न तुड़वा बैठे! ऐसे कि हमेशा के लिए घर बैठी रह जाये! सुनकर के हंस देते. साइकिल सीखते हुए ऐसा ही होगा यह ज़रूरी थोड़े ही है!

'कुछ नहीं होगा! तुम तो बेकार में डरती हो! दूसरे बच्चे भी तो सीखते हैं. गिरते-पड़ते हैं. थोड़ी-बहुत लगती भी है,' वे कहते.

'लूली-लंगड़ी हो गयी तो ज़िंदगी-भर बिन ब्याही घर में बैठी रह जायेगी. घर बिठाकर खिलाना!'

'अभी छोटी-सी है यार, और तुम्हें ब्याह-शादी की

पड़ी है!'

'लड़की की जात को बड़ी होते क्या देर लगती है!' उसका जवाब होता. वे कुछ नहीं कहते.

शुभा आख़िर साइकिल सीख गयी. पहले कैंची फिर डंडे पर. सीट पर सीखने के पहले उसे छोटी साइकिल ला दी थी. ख़ूब ख़ुश थी. स्कूल से लौटते ही साइकिल निकाल लेती. कॉलोनी में चलाती रहती.

'इस लड़की को होमवर्क भी करना है या नही!' उसकी मां डांटती. बाद में वह साइकिल से ही स्कूल जाने-आने लगी थी. उनका लाने-ले जाने का काम ख़त्म हो गया था. कॉलोनी में उसके स्कूल की दो-तीन लड़कियां और थीं. उनके साथ जाने-आने लगी थी. होमवर्क भी उनके साथ करती. बैग भी अब क़ायदे से जमा करने लगी थी. उन्हें अब सिर्फ़ सबेरे साइकिल के पहियों में हवा डलवाने, साइकिल की छोटी मोटी टूट-फूट ठीक करवाने जैसे काम देखने होते थे. इसके अलावा स्कूल का छोटा-मोटा सामान बाज़ार से दिलवाने ले जाना पड़ता था.

स्कूल फिर कॉलेज़! इस बीच उसकी अपनी दुनिया बन गयी. क़िताबें, सहेलियां, कोचिंग क्लास, म्यूज़िक क्लास! सुबह से शाम और रात! घर पर सहेलियों का आना-जाना! इसकी-उसकी सालगिरह! ख़ुद की सालगिरह पर वह भीड़ जुटा लेती! सालगिरह की तैयारी चार-पांच दिन पहले से कर लेती. अपनी मां को साथ लिये रहती. कुछेक काम उन्हें संभलवा देती. हंगामा जैसा रहता.

'अब लड़का भी ढूंढ़ो!' शुभा की मां कहती. वैसे, ख़ुद उसने अपने नाते-रिश्तेदारों को भी इस सब में कह रखा था. वह जल्दी से जल्दी शादी निपटा देना चाहती थी. जबकि वे अभी नहीं चाहते थे. सोचते थे कि अभी दो-एक साल तो रुका जा सकता है. इस बीच थोड़ा-बहुत और पढ़ ले.

'तुम्हारा बस चले तो सारी उम्र घर बिठाये रखोगे.' वह भुनभुनाती. वे कुछ नहीं कहते.

वे कुछ नहीं कर पाये थे उस दिन. उसकी मां का अचानक बी. पी. बढ़ा था. वह चक्कर खाकर गिर पड़ी थी. वे उस वक़्त घर पर नहीं थे. पड़ोसी अस्पताल ले गये थे. उन्हें ख़बर दी गयी थी. लेकिन वे अस्पताल पहुंचते इसके पहले सब ख़त्म हो गया था. चली गयी थी. शुभा अपने कॉलेज़ की ट्रिप पर तब केरल गयी हुई थी. उसे बमुश्किल ख़बर की जा पायी थी. कॉलेज़ वालों ने उसके लौटने के इंतज़ाम कर तो दिया था. लेकिन, तीसरे दिन पहुंच पायी थी. तब तक सब निपट गया था. घर में उसकी मां नहीं थी. मां की तस्वीर थी. हार चढ़ी हुई. वैसे उसे तबीयत ज़्यादा ख़राब होने का ही बताया गया गया था. लेकिन उसे अंदाज़ हो गया था. उनसे लिपट कर बुरी तरह रोयी थी. उनकी भी अब तक की रोकी हुई रुलाई फूट पड़ी थी. दोनों देर तक रोते रहे थे. उनका रोना तो बाद में थम गया लेकिन उसे बीच-बीच में रुलाई आती रही. वह रोने लगती. वे समझाते. हालांकि उनकी आवाज़ में सूनापन गूंजता रहता. बाद में इस सूनेपन की गूंज में सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट भी शामिल हो गयी थी.

सुमित से शादी करके जब चली आयी तब आवाज़ के सूनेपन की यह गूंज और बढ़ गयी थी. सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट भी. जो फ़ोन पर साफ़ सुनायी देती. फ़ोन करने का अक्सर मन होता. नंबर भी डायल करती. स्क्रीन पर उभरता 'पापा!' कुछ पल देखते रहने के बाद फिर ऑफ़ कर देती. काफ़ी कशमकश के बाद कभी यह होता कि नंबर क्लिक कर देती. कुछ देर रिंग जाने के बाद उधर से एक धीमा 'हैलो' सुनायी देता.

'पापा, मैं!'

'हां, बोलो!' सूखे पत्ते की तरह तैरकर आवाज़ आती. कुछ देर कानों के पास हवा ठहरी रहती.

'कैसे हैं?'

'अच्छा हूं.'

'क्या कर रहे थे?'

'अख़बार देख रहा था.'

'खाना खा लिया?'

'हां, खा लिया.'

'क्या खाया?'

'दलिया !'

कान के पास कुछ देर खालीपन तैरता रहता.

'अच्छा पापा, बंद करती हूं.'

'ठीक है.'

सुमित से शादी का फ़ैसला उसका अपना था. जिससे वे सहमत नहीं थे. सहमत न होने की उनके पास अपनी वजहें थीं. जिनका उसे भी पहले से अंदाज़ था. बल्कि अंदेशा था. बहरहाल, उसके इस फ़ैसले को लेकर काफ़ी कुछ कहा-सुना गया था. लगभग किसी बहस की शक्ल में!

हालांकि उनकी आवाज़ हमेशा की तरह नीची थी. नीची और नियंत्रित! ग़ुस्सा करते उन्हें पहले कभी नहीं देखा था. इस बार भी नहीं दिखे! चेहरे पर तनाव ज़रूर था. शायद वह भीतर के ग़ुस्से की परछाई हो! बात उनके सोचने और कल्पना करने के दायरे के एकदम बाहर की थी. उसने अपनी तरफ़ से बहुत कुछ साफ़ करने और समझाने की कोशिश की थी. उस सारे कहने-सुनने के बीच मायूसी, असहजता और तनाव के पल भी आते-जाते रहे थे. वह सब पहली बार हो रहा था.

सारा कह-सुन लेने के बाद कुछ देर ख़ामोशी रही थी. वे खिड़की के बाहर देखते रहे थे. पता नहीं कहां! फिर अपनी जगह से उठते हुए बोले थे, 'अब तुम बड़ी और समझदार हो गयी हो. तुम्हारे इस फ़ैसले पर इसके आगे मैं और क्या कह सकता हूं!' वह उन्हें उठकर बाहर फूलों के पौधों के पास जाता देखती रही थी.

शादी के बाद जब पहली बार आयी थी, अकेली ही आयी थी. दो दिन के लिए. सुमित नहीं आये थे. हालांकि, चाहती थी कि वे भी साथ चलें. उन्होंने मना कर दिया था. उनका कहना था कि उनकी मौजूदगी में पापा शायद सहज अनुभव न करें! शादी के समय भी मैरेज़ रज़िस्ट्रार के ऑफ़िस से काम निपटाकर लौट गये थे. जाते समय सुमित और उसने उनके पांव छुए थे. और अपने सिर पर उनके हाथ की हल्की-सी सर्द छूवन महसूस की थी.

'आप नाराज़ हैं?' उसने थोड़ा आगे बढ़कर धीरे से पूछा था.

उनके होठों के आसपास थकी हुई मुस्कुराहट उभरी थी. उसका गाल थपथपाया था. और चले गये थे 'आना' कहकर. उसने उस 'आना' कहने में बहुत कुछ सुनने की कोशिश की थी. वहां खालीपन का अंधेरा पसरा हुआ था. कुछ पल उस अंधेरे में टटोलने की कोशिश करती रही. तभी सुमित ने अपना हाथ उसके कंधे पर रख दिया.

सो, अकेली आयी थी. आने के पहले फ़ोन पर बता दिया था. डर भी रही थी कि शायद आने से रोक दें. लेकिन नहीं रोका था. हालांकि निकलने का दिन ठीक से तय न होने से इस बारे में कुछ नहीं बता पायी थी. इसके बावजूद पहुंचने पर वे घर पर ही मिल गये थे. उन दो दिनों में भीतर से असहज बनी रही थी. ऊपर से सहज दिखते रहने के बावजूद! हमेशा जैसी बातें करने की कोशिश करती रही. उन्होंने अपनी ओर से कुछ नहीं पूछा-ताछा था. नयी जगह, सुमित वग़ैरह के बारे में! सिर्फ़ उसकी बातें सुनते रहे थे. पता नहीं उनके भीतर तब क्या चलता रहा था! उसने उनकी पसंद का खाना बनाया था. उन्होंने खा लिया था. 'कैसा बना' पूछने पर मुस्कुरा दिये थे. दो दिन बीत गये थे. वह लौट गयी थी. स्टेशन तक वे स्कूटर से छोड़ने आये थे. ट्रैफिक में फंस जाने से भागते-दौड़ते ही ट्रेन पकड़ी जा पायी थी.

उसके बाद अब आयी थी. आने के पहले फ़ोन पर बता दिया था. फ़ोन बहुत दिनों बाद लगाया था. पूरी रिंग गयी. उन्होंने उठाया नहीं! लगा कि शायद किसी काम से इधर-उधर होंगे. कुछ देर बाद फिर लगाया. इस बार उठा लिया.

'हां, बोलो!'

'पापा, मैं कल आ रही हूं. सुमित चार-पांच दिन के लिए बाहर जा रहे हैं. आप कहीं जा तो नहीं रहे न!'

'नहीं, घर पर ही हूं.'

'तो ठीक है, मैं आ रही हूं.'

'ठीक हैं.' उसके बाद फ़ोन बंद हो गया था. कुछ देर की ख़ामोशी के बाद! उसने अंदाज़ लगाने की कोशिश की थी कि फ़ोन के बाद उन्होंने क्या किया होगा. चाय बनाने चले गये होंगे. यह वक़्त उनका चाय का ही है. चाय बनाकर ग्लास में ले बाहर फूलों के पास जाकर खड़े हो जायेंगे. या फिर पढ़ा जा चुका अख़बार फिर से खोल लेंगे. अख़बार हमेशा सबेरे पढ़ लिया करते हैं. शुरू से आदत रही है. जिन दिनों काम पर जाते थे तब भी. काम पर निकलने के पहले. काम बंद होने के बाद भी यही सिलसिला ज़ारी रहा. लेकिन, हो सकता है आज पढ़ा हुआ अख़बार फिर खोल लें या फिर बगल में शिव मंदिर के ओटले पर जा कर बैठ जायें. वहां खेल रहे बच्चों को चुपचाप देखते रहें. जब छोटी थी तब वह भी वहीं खेलती थी. देर होने पर वे ही लेने आते. कभी-कभी मां. अक्सर तो वे ही. कभी-कभी तो यह भी होता कि वे लेने आते और उसे खेलता देखकर खुद भी ओटले पर बैठ जाते.

आज पता नहीं क्या किया होगा! उसने सोचा. और फिर तैयारी में लग गयी. तीन बजे तक स्टेशन पहुंचना था. ट्रेन तीन बीस की थी. गनीमत थी कि रिज़र्वेशन मिल गया था. पहले वेटिंग में था. फिर कंफर्म हो गया था. सुमित सुबह निकल गये थे. उन्हें टिकिट कंफर्म हो जाने की ख़बर

दे दी थी.

याद आया था कि शादी के पहले जब कहीं बाहर आती-जाती थी तब पापा कितना परेशान रहते थे! जाने की तैयारी करने से लेकर लौटने तक! हर चीज़ खुद देखते थे! कपड़े, ब्रश-पेस्ट, खाने का सामान! ज़रूरी कपड़े! ठीक से पहुंचने की फिक्र! निकलने और लौटने के बीच दसियों बार फ़ोन करते! ज़रूरी हिदायतें देते रहते. स्टेशन छोड़ने आते और लेने भी! एकाध बार तो ट्रेन लेट होने से तक़रीबन सारी रात स्टेशन पर जागते बैठे रहे थे. सर्द रात में! सिर्फ़ एक शॉल लपेटे! वह नाराज़ भी हुई थी. वे हंस दिये थे.

इस बार आते वक़्त रास्ते-भर उनकी वह और दूसरी कई हंसियां याद आती रही थीं. हंसियां और दूसरी बातें! इसी बीच जाने कब सफ़र पूरा हो गया था. देखा कि स्टेशन आने वाला है. सामान समेटा था. उन्हें पहुंचने का वक़्त नहीं बताया था. सोचा था उतर कर ऑटो ले लेगी. सामान के नाम पर अकेला बैग ही था.

भले ही थोड़ा-सा बदला हुआ हो लेकिन अपने शहर के स्टेशन पर उतरने पर जैसा लगता है, वैसा ही लगा था. बैग लेकर गेट से बाहर निकली और वे दिख गये. थोड़ी-सी चौंकी! उन्होंने शायद गाड़ी पहुंचने के वक़्त का पता कर लिया था.

'आप क्यों आये, मैं आ जाती,' कहा. शादी के पहले भी कहा करती थी. जब भी कहीं से लौटती, उन्हें स्टैंड या स्टेशन पर अपना स्कूटर लिये खड़ा पाती. गाड़ियों के आने-जाने के टाइम उन्हें पता होते. जिनके न होते उनके फ़ोन पर पता कर लेते.

'आप क्यों आ गये, मैं आ जाती! मैं छोटी थोड़ी हूं.' हमेशा कहती.

'मुझे मालूम है तू बड़ी हो गयी है.' उनका जवाब होता. बिना उसकी तरफ़ देखे दिया जाने वाला जवाब. जवाब के साथ सामान उठाते. जो डिक्की में आ सकता होता उसे डिक्की में रख देते. बाक़ी का अपने पैरों के बीच और स्कूटर स्टार्ट कर देते.

'ठीक से बैठना.' उसके बैठने के बाद हमेशा हिदायत होती.

'हां पापा, मुझे पता है. बच्ची थोड़ी ही हूं जो गिर जाऊंगी!'

'जानता हूं.' स्कूटर स्टेशन या स्टैंड से बाहर आ जाता. वह अपने सफ़र के बारे में बताना शुरू कर देती. 'पापा ऐसा था. ...पापा, वैसा था. ...यूं हुआ. ...ऐसा हुआ...'

वे सुनते रहते. स्कूटर पच्चीस-तीस की रफ़्तार से चलता रहता. स्कूटर हमेशा इसी रफ़्तार से चलाते थे. खुली और खाली सड़क पर भी! बाज़ार में तो रफ़्तार और कम कर लेते. भीड़-भाड़ न होने पर भी! बहुत संभाल कर चलाते. सहज ढंग से और पूरे एहतियात के साथ. स्कूटर को कभी हल्की-सी खरोंच तक नहीं लगने दी. ना किसी को हल्का-सा धक्का ही लगा.

'संभल कर चलना ज़रूरी है बेटा, इसमें दूसरों और अपना दोनों का ही फ़ायदा रहता है.' उनका कहना था. उसकी बात के जवाब में!

इस बार भी स्कूटर चुपचाप चलाते रहे. बिल्कुल चुप थे. वैसे पहले भी कम ही बोलते थे. वही बोलती रहती थी. नान स्टाप! 'पापा, ऐसा... पापा, वैसा...पापा, ये... पापा, वो...!' बिना इस बात की परवाह किये कि वे सुन भी रहे हैं या नहीं! वैसे उनका बीच-बीच में हां-हूं करना या गर्दन हिला देना उसके लिए काफ़ी रहता! कभी-कभी तो इसकी भी ज़रूरत नहीं रह जाती! उसका बोलना चलता रहता.

लेकिन इस बार उतना नहीं बोल रही थी. 'कब आ गये थे' वग़ैरह जैसे छोटे-मोटे सवाल. और चुप.

घर वैसा ही था जैसा मां के जाने के बाद वे रखते रहे थे. ज़रूरत जितना साफ़ और व्यवस्थित. वैसे यहां से जाने से पहले तक घर की साज-संभाल करना वह काफ़ी कुछ सीख गयी थी. साफ़-सफ़ाई. रख-रखाव. हालांकि वे भी इसमे शामिल रहते थे. जैसे कि मां के रहते हुआ करते थे. ज़्यादा या कम नहीं बल्कि जितना हो सकते थे उतना. मां के रहते उसके हिस्से में ज़्यादा कुछ करने को नहीं होता था. बहुत कुछ मां ही कर लेती थी. हालांकि कई कामों में उसे भी शामिल रखती ताकि सीखना-सिखाना होता रहे. मां के जाने के बाद वह सब काम आया. बहुत कुछ करने-धरने लग गयी. पढ़ाई के साथ-साथ. उन्हें भी देखती. हालांकि, उन्हें अलग से देखने की ज़रूरत नहीं होती. अपना सब वे खुद देख-कर लेते थे. मां थी तब से ही! वह सब आगे भी ज़ारी रहा. वह उनकी छुटपुट चीज़ें-भर देख लेती. पसंद की सब्ज़ी बना देना वग़ैरह!

'वाह बेटे!' वे तारीफ़ में कहते. छोटी-सी मुस्कुराहट

के साथ. मां के हयात रहते वह मुस्कुराहट उतनी छोटी नहीं होती थी. थोड़ी बड़ी होती थी. बड़ी और उजली. वह बड़ा और उजलापन इधर कम हो गया था! उसमें हल्का-साफीकापन आ गया था. जो आसानी से नज़र नहीं आता था. और किसी का तो शायद ध्यान भी नहीं जा पाता होगा.

घर पहुंचकर देखा था, सारा ज़रूरी सामान लाकर रखा हुआ है. यूं भी घर में रोज़ लगने वाला सामान हमेशा से रहता आया था. ऐसा शायद ही कभी होता था कि रोज़ लगने वाली किसी चीज़ की ज़रूरत हो और वह उस वक़्त घर में न हो, उसके लिए बाज़ार भागना या जाना पड़ा हो! चाय, शकर, तेल, साबुन से लेकर सब्ज़ी-भाजी तक! हर चीज़ ख़त्म होने से पहले बल्कि काफ़ी पहले ले आयी जाती थी. वे ले आते. ख़त्म हो रही चीज़ पर उनकी नज़र होती. ऐसा कम ही होता कि चीज़ के ख़त्म हो रही होने की उन्हें सूचना दी गयी हो और फिर चीज़ घर में आयी हो! कभी मां को ऐसी सूचना देते नहीं देखा. और बाद में न कभी खुद को देना पड़ी.

घर से बाहर निकलते वक़्त ज़रूरी तौर पर उनके हाथ में झोला होता. लौटते वक़्त उसमें सामान! मौसमी फल. सब्ज़ी. या खाने-पीने की कोई दूसरी चीज़! सब्ज़ी वे हमेशा अगली दो बार के लिए पहले से लाकर रख दिया करते थे. कभी सोचना नहीं पड़ता कि रात को क्या बनेगा या सबेरे! मां के गुज़रने और उसके जाने के बाद भी यह सिलसिला ज़ारी था. घर पहुंचने पर चाय बनाने के दौरान देखा घर में सब मौजूद है. कुछ चीज़ें शायद उसके आने की सूचना मिलने के बाद पिछली शाम को ही ले आयी गयी थीं. इसके बावजूद चाय पीने के बाद वे झोला लेकर बाज़ार चले गये थे. वह छोटे-मोटे कामों में लग गयी थी. अगले दो दिन इसी तरह कामों में लगी रही. वैसे करने को कुछ ख़ास नहीं था. घर ठीक-ठाक था. जैसा कि हमेशा से रहा करता था. वे रखते थे. उसके वहां से जाने के बाद भी! फिर भी इधर-उधर की सफ़ाई वग़ैरह जैसे काम निपटाये. कुछ मिलना-जुलना हुआ. एकाध जगह खाना खाने जाना पड़ा.

इस सब में वे तीन-चार दिन गुज़र गये. इस सबके बीच उनसे उतनी और वैसी ही बातें हुईं जैसी कि हो सकती थीं और आज फिर लौटना था. तैयारी करने जैसा कुछ था नहीं! बैग-भर तैयार करना था. कर लिया. उन्होंने स्कूटर निकाल लिया. वह बैठ गयी. काफ़ी देर चुप बैठी रही. स्कूटर चलता रहा. अपनी रफ़्तार से. कुछ देर बाद उसने अपना हाथ उनके कंधे पर रख दिया. सिर कंधे पर टिका दिया. हमेशा की तरह.

'पापा!' उसने कहा. आवाज़ में नमी थी. स्कूटर थोड़ा धीमा हुआ. उन्होंने हल्के-से अपने कंधे पर रखा उसका हाथ थपथपाया. सिर सहलाया. वह सिर कंधे पर टिकाये रही थी. स्टेशन तक!

स्टेशन आ गया.

'ठीक से जाना और अगली बार जब आओ तो सुमित जी को भी साथ लेकर आना!' उन्होंने कहा था. गाड़ी चलते वक़्त. एक उजली मुसकुराहट के साथ.

उसकी आवाज़ की नमी इस बार उनकी आंखों में थी.

१५५, एल. आई. जी.
मुखर्जी नगर,
देवास (म. प्र.)-४५५००१
मो. :९४०७४१६२६९
ईमेल : prak.kant@gmail.com

ग़ज़ल

सतपाल 'स्नेही'

जो सही दिल हैं उन्हें तो याद रख लेता हूं मैं,
फिर ग़लत को भी उन्हीं के बाद रख लेता हूं मैं.

भूल का पुतला तो मैं भी हूं मगर ऐ दोस्तों,
एक कोने में ज़रा फ़रियाद रख लेता हूं मैं.

ये न तुम समझो कि मेरी ज़िंदगी आसान है,
बस ज़रा नाशाद को भी शाद रख लेता हूं मैं.

है उन्हें लत भूल जाने की, भुला दें वो मगर,
मेरी आदत है कि फिर भी याद रख लेता हूं मैं.

आ ही जाता है न जाने किस तरह मुझमें हुनर,
हो के मुजरिम भी मुझे आज़ाद रख लेता हूं मैं.

जब कभी चाहत की मेरी वो उड़ाते हैं हंसी,
तो मिरे मुख पे ज़रा उनमाद रख लेता हूं मैं.

ज़िंदगी ज़्यादा मिले मुझको कि थोड़ी ही मिले,
जो मिले तोहफ़ा समझ कर शाद रख लेता हूं मैं.

३६२, गली नं.-८,
विवेकानंद नगर, बहादुरगढ़-१२४५०७.
(हरि.). मो. :९४१६५३५६९६

लघुकथा

माद्दा

नीना सिन्हा

युवा मीडिया कर्मी निशा किसी दमदार कहानी की तलाश में थी. भटकती हुई सब्ज़ी मंडी जा पहुंची. वहां लगभग ८० वर्षीय वृद्धा को तपती दोपहरी में सब्ज़ी बेचते देखा! बिना चश्मे के ही सब्ज़ी तौलना, पैसे का लेन-देन, बड़े आत्मविश्वास से कर रही थीं. सामने के एक सब्ज़ी वाले से उनके बारे में पूछा तो उसने कहा, 'हमारा उस बुज़ुर्ग कर्मठ औरत के बारे में कुछ कहना ठीक नहीं है, उनसे ही पूछो.'

उनके पास पहुंचकर पूछा, 'काकी! आपके बाल-बच्चे नहीं हैं क्या, जो आप इस उम्र में इतनी मेहनत करने को मज़बूर हैं?'

'हां हैं ना बेटा! दो पढ़ी-लिखी आत्मनिर्भर औलादें हैं मेरी. तुम चैनल वाली लग रही हो. अगर मेरी कहानी कहीं न छापो, तब बताऊंगी. दोपहर की गर्मी से अभी ग्राहक भी नहीं है.'

निशा की तरफ़ से आश्वस्त होने पर बताया, 'मैं स्वयं उनके साथ नहीं रहती. पूछने पर मेरा परिचय अपने स्वर्गवासी मां-बाप के दूर के रिश्तेदार के रूप में देते हैं. मां के रूप में परिचय देने से पिता के बारे में सवाल उठ खड़े होंगे और कहीं अगर उनके जन्म की असलियत खुल गयी तो दोनों की विवाहित जिंदगियां आग में झुलस कर रह जाएंगी.

पैसे थे मेरे पास. पर उन्हें अपने आप से दूर हॉस्टलों में रखने और उन्हें पढ़ाने-लिखाने में सब ख़र्च कर दिये. बुढ़ापे में आर्थिक तंगी ने घेर लिया. मुझ जैसी कुछ अभी भी रेलवे स्टेशन पर भीख मांग कर गुज़ारा कर रही हैं, पर मैंने सब्ज़ी बेचने का फ़ैसला किया. साल छः महीने इस जगह के सब्ज़ी वालों ने तथा हफ़्ता वसूली वाले दादा ने मेरे नाक में दम कर दिया, 'तुम यहां सब्ज़ी नहीं बेच सकती, यह शरीफ़ लोगों के व्यवसाय करने की जगह है. तुम जैसी औरतें सिर्फ़ कोठे की शोभा बन सकती हैं.

बार-बार मेरी सब्ज़ी की टोकरियां, तराजू-बटखरे फिंकवा दिये जाते, पर मैंने हार नहीं मानी. मेरी जिद्द के आगे उनका विरोध कमज़ोर पड़ता गया. मेरे भी कुछ नियमित ग्राहक हो गये तो गुज़ारे लायक कमाई होने लगी.

बच्चे नियम से पैसे भेजते हैं, पर मैं उन्हें नहीं ख़र्चती, जमा हैं. जब शरीर काम नहीं करेगा, तब देखूंगी कि आगे क्या करना है. बच्चों के साथ रहने जाना है या अपने नश्वर नापाक शरीर को गंगा मैया के हवाले करना है', कथा सुनाते-सुनाते काकी की आंखें डबडबा गयीं.

भावुक एवं कायल हो चुकी निशा उठ खड़ी हुई. शाम ढलने लगी थी, और इक्का-दुक्का ग्राहक काकी के इर्द-गिर्द जमा होने लगे थे.

१०१, ब्लॉक-ई, तीसरा तल, अक्षरास्विस कोर्ट, १०६, नाबालिया पारा रोड, कोलकाता-७०००१८. मो. ६२९०२७३३६७

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

ई-मेल : kathabimb@gmail.com

मुफ़लिसी पर रहमत

नीतू मुकुल

शिक्षा : एम. ए. (राजनीति शास्त्र)

: प्रकाशन :
लगभग दो दर्ज़न कहानियां प्रकाशित.

: विशिष्ट उपलब्धि :
कहानी संग्रह 'ऐसा प्यार कहां', भाषा विभाग, राजस्थान सरकार द्वारा चयनित; अन्य उपलब्धियां – दूरदर्शन, जयपुर से कविता का प्रसारण; आकाशवाणी, इंदौर, जयपुर, भोपाल से कहानियों का लगातार प्रसारण.
कहानी संग्रह : 'ऐसा प्यार कहां'
'दीप-देहरी' साझा कहानी संग्रह,
'दृष्टि' साझा लघुकथा संग्रह,
'दिलचस्प लम्हे' साझा संस्मरण संग्रह,

: सम्मान :
डॉ. महाराजा कृष्ण जैन स्मृति सम्मान, शब्द प्रवाह सम्मान, हिंदी सेवी सम्मान, लघुकथाश्री सम्मान.

वो सूख चुकी नदी में उम्मीदों की नाव लिये दुखों को किनारे करते हुए, अंधियारे की बाती सुलगाने के लिए और रात को जगाने के लिए सूरज को कांख में दबाये चला जा रहा है. बड़े दुक्खों को छोटा करके सहना उसकी फितरत में शामिल हो गया. सतरंगी जीवन में यका-यक भरी दोपहर बिना सावन सफ़ेद इंद्रधनुष बन गया, कैसे एक पल में सुखों का मंजर गम में तब्दील हो गया. उसके जाने के बाद गम अहबाबी और सुख हरीफ़ हो गये. इस पुराने से घर में जिसकी मेहराबों से आज भी चमगादड़ें लटकती हैं, उसकी देह पर परेशानी का सबब बन उग आये कुछ दाग, पतले मोटे खिंचे-खिंचे, से मानो अपना जिस्म का चमड़ा वहीं पास बिछा कर बैठे हों, पास अलाव में जल रही आग उसके चेहरे पर जुनाही के पतले-पतले धागे समान उसके मुख मंडल पर बरस रही थी. जैसे धुएं के देवता और कुहासे की देवी उससे छिप-छिप कर उसके ग़मों को बांटने आ गये.

उस कतार में मौजूद लोगों में वह बूढ़ा कुछ अलग-सा नज़र आता है. वजह यह कि उसके चेहरे मोहरे पहनावे और हाव-भाव से औरों से कुछ-कुछ अलग होने की फितरत नुमाया थी. उसका चेहरा गोरा और गोल था. उसके सिर के बाल झक सफ़ेद बेतरबी से कढ़े हुए थे. बिना तराशी लंबी-सी दाढ़ी, दुबली-पतली काया पर ढीली-ढाली पैंट शर्ट पहन रखी थी, समझना मुश्किल था उसने कपड़े पहन रखे हैं या कपड़ों ने उसे. पैर पर चमड़े की चप्पल पहन रखी थी. कंधे पर खादी का झोला टांग रखा था. लब्बोलुआब यह है कि शहरीपन को ओढ़े एक चलता-फिरता गांव था. कलेक्टर से मिलने वालों की भीड़ में वह बेचारा भी शामिल था. अंदर जाने से पहले उसकी तलाशी ली गयी, पैंट की दोनों जेबें खाली, लटकते झोले में पुराना-सा मोबाइल निकला जिसके की-पैड के अक्षर भी उसके सुखों की तरह घिसे थे. उसकी ज़िंदगी की हर शह दुनिया के उजाले के बजाय अंधेरों से ज़्यादा

बा-वस्ता हो चली थी.

पास बैठे एक सज्जन ने उचटती नज़र बूढ़े पर डाली, दुखों के पसीने की बूंदों से भरा बूढ़े का चेहरा, कुछ ऐसी सौम्यता के सहित था कि अगर जांच करने वाला अधिकारी उसे थप्पड़ मार देता तब भी वह कोई प्रतिकार नहीं करेगा, शायद तभी उसे तरस आ गया, मिलने वालों की कतार में उसे कुछ आगे सरका कर खड़ा होने को कहा. कतार में खड़े सभी लोग अपनी बारी का इंतज़ार करने लगे. कतार धीरे-धीरे सरक रही थी. बूढ़ा जैसे ही दरवाज़ा खोल अंदर जाता है, कमरा बेहद ठंडा रहता है. मई का महीना था बाहर धूप चटक रही थी धूप में खड़े-खड़े उसका चेहरा लाल हो गया था. शरीर का एक चौथाई हिस्सा ही कमरे में घुसता है और बाक़ी तीन चौथाई हिस्से को ख़ुद-ब-ख़ुद ठंडक का अनुभव हो जाता है. अचानक उसकी निग़ाह टेबल पर टिकती है. कलेक्टर साहब चश्मा चढ़ाए अख़बार पढ़ रहे होते हैं.

'हाकिम नमस्कार...'

आंखें अख़बार में गड़ाए बोले, 'कहो क्या परेशानी है?'

इतना सुनते ही हाथ जोड़कर बूढ़ा बोला. यूं लगा महीनों से रुका सैलाब फट पड़ा हो. हाकिम आप हमारे माई-बाप हो, अब आप ही हमारी बिटिया को ढूंढ़ कर लाओ. सब जगह से निराश होकर आप से गुहार लगायी है. बूढ़ा को रोता देखकर कलेक्टर साहिब ने पेपर गोल करके पास रखी कुर्सी पर रख दिया, फिर मुख़ातिब हो बोले..

'बाबा पहले आप बैठें फिर आराम से बताएं...'

इस दिलासा से अब तक अंधेरे में डूब रहे मन के कुछ हिस्से में ही सही, उम्मीद के प्रकाश से उजागर हो उठता है. उस धुंधले और धूसर प्रकाश से मन का कोना-कोना खिल उठता है. अभी थोड़ी देर पहले ही तो इस ठंडक ने उसे राहत दी थी, पल भर को ही सही, फिर सारा घटनाक्रम मन में हाहाकार मचाने लगा. अधमरे विचार अतीत की जर्जर क़िताब के पन्ने की तरह पलटने लगे.

शाम के धुंधलके में चार पांच लोग जाफ़रानी गमछा लपेटे उसके अहाते में आते हैं और बिना कुछ सवाल करे सामने घर से निकले चौबीस-पच्चीस साल के लड़के पर ग़ुस्से से लात और घूंसों की बरसात शुरू कर देते हैं. कुछ समझ पाते, कि वे चले जाते हैं. कुछ राहत-सी नसीब होती है. कुछ समझते, कुछ कहते कि तभी वे दोबारा एक गाड़ी में एक नये आदमी के साथ आते हैं. सफ़ेद खादी का कुर्ता पजामा पहने वह शख़्स देखने में सभ्य और पढ़ा-लिखा लगा. वह गाड़ी की ड्राइवर वाली सीट पर ऐसे ही बैठा रहा, बाक़ी लोग धड़-धड़ करते उतरे और बेटे का गिरेबान पकड़ घसीटते हुए ले गये. तभी बचाओ में बेटी आगे आयी तो उसे भी गाड़ी में बिठा लिया. दोनों को गाड़ी में बैठाने के बाद वह खद्दरधारी उतरा और बोला... एक यूनिवर्सिटी में धरना देना है इसलिए इन्हें ले जा रहा हूं, काम होने के बाद छोड़ जाऊंगा, आसानी से मान जाता तो हमें जबरदस्ती नहीं करनी होती.

वैसे तो साहब मुझे राजनीति से कोई लेना-देना नहीं है, लेकिन उसी दिन से नफ़रत की बजबजाहट शुरू हो गयी. साहिब आज पूरा एक महीना हो गया, हमारी बिटिया का कोई पता नहीं है. आप कृपया करके उसे ढूंढ दो. सब से पूछ-पूछ कर थक गया हूं.

'ओह... तो क्या बेटा अकेला वापस आया?' कलेक्टर बोले.

'नहीं...' लापरवाही से बोला, 'सब कुछ उसी की वजह से तो हुआ है. साला सारे-सारे दिन शराब और सट्टे में घुसा रहता. मां-बाप का तो छोड़ो साहब जवान बहन का भी ख़्याल न करता. इतने लोगों से उधार ले रखा की ढेरों दुश्मन हैं उसके. हमें तो लगता है उन्हीं में से किसी एक का किया धरा है.

कलेक्टर... 'आपने बेटी के गुम होने की रिपोर्ट लिखायी है?'

'हां साहब लेकिन कोई सुनता नहीं है. मैं रोज़ जाता हूं, घंटों पुलिस स्टेशन बैठा रहता हूं, लेकिन वही एक जैसा घिसा पिटा जवाब मुझे वो रोज़ देते...'

'पता तो कर रहे हैं...'

कलेक्टर साहब अच्छे इंसान थे. सांत्वना देते हुए बोले, 'बाबा आप परेशान ना हो मैं जल्दी ही कुछ करता हूं.'

बूढ़े ने हाथ जोड़कर शुक्रिया अदा किया और बाहर आ गया. बाहर काफ़ी भीड़ अभी भी थी, उसने एक उड़ती नज़र कतार पर डाली जहां वह सब अपनी बारी का इंतज़ार कर रहे थे और आगे बढ़ गया. थोड़ी दूर आगे जाने पर गाड़ियों का शोर आसानी से सुनाई दे रहा था, वह शांत जगह पर अभी और रुकना चाहता था. शहर की भीड़ से

मन घबराता था. एकाएक उसे उसी इलाक़े में रह रहे अपने दोस्त घनश्याम की याद आती है. सोचता है कई बार बुलाया है, चलो आज हो लेते हैं, कुछ देर और मन को सुकून मिलता रहेगा, वरना घर जाकर तो वही रोज़ की किच-किच. वह दोस्त के घर चल दिया. दोस्त ने उसकी ख़ातिरदारी की और अफ़सोस भी जताया और बातों में समझाया भी, 'यार बेटे को ढूंढ, बेटा घर का चिराग़ होता है. एक तू है बेटे के लिए परेशान होने की बजाय बेटी को ढूंढ रहा है.'

रोशनी की ललछोहनीं आभा में असहज धुंधलका नज़र आया. वह उसी तरह ख़ामोश रहा. दोस्त ने हुक्का आगे बढ़ाया. उसने जैसे ही मुंह से लगाया उसे कानों के पास फुसफुसाने की आहट हुई.

'बाबू कितनी बार मना किया है, भांग-हुक्के से दूर रहा करो, तुम्हारा पेट और पीठ एक हो गये हैं. शरीर में मांस नहीं पेट में आंत नहीं, दिन रात तुम्हारी सांस फूलती रहती है. तुम्हें देख के कोई भी कह सकता है, ना जाने कब मरघट पहुंच जाओ, लेकिन एक तुम हो कि मानते ही नहीं. तुम्हें क्या... नशा करो और घर में पड़े रहो...'

हाथ पैर कांपने लगे. झुर्रियों से भरा चेहरा नमकीन पानी से भीग गया. हुक्का वापस रख दिया, बिना कुछ कहे वहां से चल दिया. रास्ते में याद आया, घर से निकलते वक़्त बीवी ने झोला दिया था. एक हफ़्ते से घर में सब्ज़ी नहीं है, आज लेते आना. उसका तमतमाया चेहरा याद आते ही वह चौराहे के पास सब्ज़ीमंडी में उतर कर सब्ज़ी लेने लगा. घर पहुंचते-पहुंचते सूरज डूब चुका था और रात का स्याह अंधेरा अपने छोटे-छोटे क़दमों से दस्तक देने लगा था. पायदान के नीचे रखी चाबी निकालकर दरवाज़ा खोला. सामने पत्नी सोफ़े पर बैठी टीवी देख रही थी. बिना चेहरा घुमाए अपने सीरियल में खोए हुए बोली, 'घंटी बजा देते तो मैं खोल देती लेकिन तुम्हें कभी किसी पर भरोसा किया है. चाहे वह छोटे से छोटा काम हो, हर काम को तुम और तुम से बेहतर तुम्हारी बेटी कर सकती है.'

'होश में हो कितना बज रहा है? सुबह के निकले हो.'

'अरे ग़ुस्सा मत करो, देखो मैं सब्ज़ियां भी ले आया.'

झोला लिये किचन की तरफ़ बढ़ गया, सब्ज़ियां फ्रिज में डालीं, एक तरफ़ चाय चढ़ायी और भिंडी प्लेट में निकाली और एक तरफ़ काटने लगा.

आज सुबह मैं कलेक्टर से मिलने गया था. भले आदमी हैं. कह रहे थे बेटी का पता लगा लेंगे. उनसे बात करने पर आज महीनों बाद आस लगी है.

दस महीने हो गये इसी तरह भागते हुए. बच्चों का पता न चला, लेकिन अकाउंट खाली हो गया, पैसा घर आ नहीं रहा लेकिन ख़र्च बराबर हो रहा है, कैसे दिन गुज़र करेंगे?

'जैसे मैंने अपनी किस्मत से समझौता कर लिया तुम क्यों नहीं मान लेते हो वह अपनी मर्जी से गयी होगी...'

'उस दिन का झगड़ा तुम्हें याद नहीं या याद नहीं करना चाहते... बाप रे कितना बवंडर मचाया था. ऐसा क्या कह दिया था आपने...? बस इतना कि बेटा थोड़ा समय का ध्यान रखा करो कितनी खरी–खोटी सुनायी थी...'

'सीधे साफ़ शब्दों में चेतावनी दी थी वह घर छोड़ देगी, लिहाजा उसे ढूंढने में समय बर्बाद करने से अच्छा है बेटे का पता लगाओ.'

बेटे का नाम आते ही बूढा भड़क उठा...

'नाम मत लेना उस ज़लील का, आज जो कुछ हम भुगत रहे उसकी बिगड़ी आदतों का नतीजा है कमबख़्त ने अपनी ज़िम्मेदारी समझी होती तो रोना ही क्या था...'

बेटे की बुराई करके ग़ुस्से में आग में घी डालने का काम कर दिया था. अब तक जो ग़ुस्सा दबा था, ताब बन निकल पड़ा. एक दूसरे को खरी-खोटी सुनाई और अंत में थक हार कर बैठ गया. यह इनका लगभग रोज़ का नाटक था. पत्नी को लगता था बेटी की वजह से बेटे को खो दिया और बूढ़े को लगता था बेटा नालायक ना होता, बेटी उसके पास होती.

इस घर में रिश्तों के एक अकल्पनीय ताने-बाने को उभरते हुए देखा जा सकता था, दरअसल वे दोनों ही संपूर्ण हताशा की हालत में थे, जिस दौर से गुज़र रहे थे उसमें यह कतई मुमकिन लगता है. बूढ़े ने स्वर को कोमल किया और पत्नी की दशा पर विचार किया. अपने तो जवान बच्चों को एक साथ खो बैठी है, ममता से भरा आंचल खाली हो गया है. उस रात की कल्पना करने लगा जब उसने एक साथ अपने दोनों बच्चों को खो दिया था.

'थोड़ी देर में आते हैं बाबा...'

बच्चों द्वारा कहे ये शब्द कानों में गूंजने लगे. अब उससे एक पल भी खड़ा न रहा गया. वह एक कुर्सी पर धंस गया और खिड़की के बाहर शून्य में ताकने लगा.

बेटी को स्वयं खोजना अपने जीवन का ख़ामोश लक्ष्य बना लिया था. अल सुबह ही घर के सारे काम निपटा कर, पत्नी को दवा देकर, नाश्ता करा कर टीवी के सामने बिठा, वो निकल लेता. पत्नी की दिमाग़ी हालत इधर कुछ दिनों से ख़राब थी. अपने खाने का भी होश न रहता, कहीं सब्ज़ी को गैस पर चढ़ाकर भूल जाना, नहाने जाने के लिए कपड़े ले कर न जाना, कभी-कभी कपड़े बिना पहने घर से निकल जाती थी. गैस पर कुछ भी चढ़ा कर भूलना सामान्य–सी बात हो गयी थी. यही वजह थी उसने घर का दारोमदार अपने कंधे पर उठा रखा था. उस दिन तो आग लगते-लगते बची थी, भला हो पड़ोसी का जो नियत समय बेल बजा दी.

पुलिस स्टेशन जाता है, फिर ठंडे लहजे से हवलदार से पूछता है...

'साहब कुछ पता चला क्या?'

'बाबूजी रोज़ पूछने आते हो कुछ भी पता चलेगा हम आपको सूचित करेंगे, यूं रोज़ भटकने से कुछ नहीं होगा, गुस्ताखी माफ़ हो, आप बुज़ुर्ग हैं आप मान क्यों नहीं लेते आपकी बेटी गुम नहीं हुई है, यक़ीनन वो वापस नहीं आना चाहती.'

हमने सारी छानबीन कर ली है, उस दिन हादसों में जितने भी लोग मारे गये थे या ग़ायब हुए थे सारे के सारे मिल गये लेकिन आपकी बेटी नहीं मिली, क्योंकि वह नहीं चाहती कि हम उसे खोजें. आप ही बताएं न कोई उसका दुश्मन है, न कभी किसी से लड़ाई हुई, आप कोई बड़े असामी भी नहीं... तो आख़िर क्या हुआ होगा... हमारी खोज ज़ारी है.

वहीं पास बैठा थानेदार बोला, 'वाजिब बात करें जनाब...! पहले तो आप अपने बच्चों को धरना देने भेजते हैं. क्या यह एक अपराध नहीं है? वो सिर्फ़ भीड़ का हिस्सा बनने गये थे. छात्रों की ज़रूरत या उनकी मांगों से उनका कोई लेना-देना नहीं था, न ही वो छात्र थे उस कॉलेज़ के, तो फिर वो वहां क्यों मौजूद थे?'

अपनी बुढ़ौती को झाड़ते हुए वो बूढ़ा कमजोर आदमी खड़ा हुआ. झुर्रियों से भरे चेहरे को बड़े ताव से उठाया, थानेदार के मुंह के पास जाकर बोला, 'हमको कुछ नहीं मालूम, यह वो उजले कपड़ों के पीछे छिपे काले कपड़े वाले ही बता सकते हैं. इन उजले कपड़े वालों के अक्सर दो चेहरे होते हैं.' और अपने खादी के झोले को झटकता-फटकता बाहर निकल आया.

'यह फिर आ गया बुड्ढा... यार कोई इसे यहां से निकालो... हरामखोर साला समझता नहीं है सीधी गाली मुंह तक आती है.'

'देखो भाई मैं तुमसे हाथ जोड़ता ...हूं चले जाओ.'

इतना सब कुछ होने पर भी उसे क्रोध नहीं आता. तब भी ठंडे लहजे से बोलता — 'साहब आप तो हमारे माई–बाप हो आपके आस से हम ज़िंदा हैं. माहौल काफ़ी गर्म हो गया था. तेज़ आवाज़ों के चलते सड़क पर खड़े कुछ राहगीर भी दरयाफ़्त करने के लिए रुके, कुछ मामला समझने की गरज से पलभर रुके, फिर आगे बढ़ गये. थानेदार हाथ झटकता हुआ अंदर घुसा. तंग कर रखा है इस बूढ़े ने. मजमे से आवाज़ें आने लगीं... क्या हुआ? क्या बात है? सवालिया जुमले वहां सुनाई देने लगे. धीरे-धीरे पूरा मजमा जुड़ गया. उस मजमे में एक पहचाना आदमी निकलता है और उसके कंधे पर दिलासा भरा हाथ रखता है — 'बाबा आप वही हो जो कलेक्टर से मिलने गये थे, आप नाहक परेशान हैं. देखिए मैं उनको जानता हूं वह कुछ ना कुछ अवश्य करेंगे, कमाल है आपका बेटी प्रेम...!'

भीड़ में से घुसकर दरयाफ़्त करते लोग धीरे-धीरे अपनी राह पकड़ने लगते हैं. 'मैं कल आपके बारे में फिर से कलेक्टर साहब को याद दिलाऊंगा.' बूढ़े की आंखों में आस की लौ टिमटिमा उठी. उस पल वहां छट गया एक सन्नाटा और शून्य जिसके भीतर खालीपन के सिवा कुछ भी नहीं है. वह जानता था आम आदमी के लिए पुलिस का चेहरा ऐसा ही होता है. उस दिन के बाद कई दिनों तक थाने नहीं गया. हर एक तरफ़ अंधेरा ही अंधेरा नज़र आ रहा था.

उस दिन से मुहिम चेंज़ हो गयी. बेटी की फ़ोटो लेकर यूनिवर्सिटी के अंदर बाहर चक्कर लगाते हुए पूछता रहता किसी ने देखा है? न में ज़्यादा सर हिलते, कुछ एक सर हां में हिलता भी तो इसके आगे कुछ न पता होता. उस दिन का जिक्र करने पर भी लोग डरते थे. कहने को तो विद्या का मंदिर है पर यहां भी राजनीति और नफ़रत की बसाहट मौजूद थी. देश के भविष्य के साथ खेलना आम बात थी. इन्हें अपने स्वार्थ के सिवा कुछ नज़र न आता था.

गेट के बाहर एक चाय की दुकान थी. जिसने उस दिन सब देखा, ...कौन-कौन गाड़ी से आया, कैसे दंगा भड़का, कौन उस दंगे को भड़काने के ज़िम्मेदार थे, लेकिन वह अपना मुंह खोलने को तैयार नहीं था. उसका कहना था उसकी दूर की नज़र कमज़ोर है और उस दिन को वह अपना चश्मा घर भूल गया था. संभव नहीं वह किसी को पहचान पाता. इससे ज़्यादा मैं कुछ नहीं जानता.

यूनिवर्सिटी के अहाते में खड़े एक लड़के ने इशारे से बूढ़े को बुलाया और बोला — 'वे कौन थे..? कहां से आये थे..? कोई कुछ नहीं जानता. उस दिन यहां मामला बहुत बिगड़ गया था. दूसरे पक्ष वाले लोग मारने-पीटने लगे थे. कई लोग घायल भी हो गये और कुछ मर भी गये. मॉब-लिनचिंग हुई थी. उसके लिए कोई क़ानून नहीं है, न कोई अपराधी है न कोई अपराध हुआ है. मारे गये लोगों को मुआवज़ा मिल जायगा आप परेशान न हों.'

मसलन... फिर वही...? हर तरफ़ अंधेरा...? कौन है इस अंधेरे का ज़िम्मेदार...? ख़ुद ही सवाल करता, गाहे-बगाहे कुछ सवालों के जवाब भी उसे मिल जाते .. अपने भीतर से.. तब वो और बेचैन हो उठता. उसके जेहन में बार-बार दरोगा का संवाद गूंजता और शराब की तड़पन बढ़ जाती. जेब टटोलता, दायीं.... फिर बायीं..... फिर कमीज़ की जेब... हताशा हाथ लगती. सब खाली.... फिर बगल से दबाए काला बैग, जो एक मेडिकल स्टोर वाले ने उसे दिया था, जिसके ऊपर बड़े–बड़े अक्षर में पैरासिटामोल लिखा था उसमें उसके कुछ ज़रूरी कागज़ात पड़े रहते थे. याद आता है... पत्नी ने बिजली का बिल ज़मा कराने के लिए बिल के साथ ही पैसा मोड़ कर रबर लगा कर बैग में रख दिया था और हिदायत दी थी आज बिल जमा कर देना. बूढ़े ने रबड़ हटाकर पैसा निकाला. पांच सौ के दो नोट, एक नोट जेब में रखा, दूसरा वापस उसी तरह लपेट कर रख दिया. कुछ पल ठिठका.. फिर आसमान की ओर शून्य में ताकता रहा. चौराहे पर बनी कोने में शराब की दुकान याद आयी और क़दम स्वत: ही उस ओर बढ़ गये. शाम होने को आ रही थी. बूढ़े को प्यास का एहसास तीव्रता से होने लगा. समय का एक-एक पल भारी हो रहा था. बेटी के बिना जीना व्यर्थ था. रह-रह कर कानो में कोई फुसफुसाहट होती... बाबा... बाबा.... फिर खनकती हंसी गूंजती, क्षण भर के लिए झुर्रियों भरे चेहरे पर मुस्कुराहट की लकीरें खिंच जातीं. अगले पल फिर वही उदासी. वो थी, तो घर गृहस्थी के दुनिया जहां से बरी था. हर काम की ज़िम्मेदारी उसने ले रखी थी. किसी को अपनी ज़िम्मेदारियों का एहसास भी न होने देती, सोचते ही सबकी ज़रूरत पूरी करती थी.

शराब ख़रीद कर बोतल हाथ में लेकर अपने घर की ओर चल दिया. रास्ते में हरे भरे दरख़्तों के बीच से बेटी के खिलखिलाने की आवाज़ें आतीं, तो कभी मायूस–सा चेहरा लिये दरख़्तों के बीच से झांकती. बाबा... बाबा... की फुसफुसाटें जोर पकड़ लेतीं. दुःख अंतरात्मा को आलिंगन बन अपनी क़ैद में ले लेता. तभी दरवेश कानों के पास हौले से बड़बड़ाता है और वो दुखों का आलिंगन छोड़ उस निरीह आत्मा को सुनने की कोशिश करता है. भोर का उजियारा फैलने से शाम के धुंधलके तक, रोज़ की दिनचर्या यही रहती. पहले थाने में हाज़िरी लगाना, फिर कॉलेज़ परिसर में भटकना. एक दिन ऐसे ही भटकाव को विराम लग गया जब उसने अपने साथ पढ़ने वाले दोस्त को कॉलेज़ परिसर में जाते हुए देखा. पुरानी पहचान ताज़ा हो गयी. शिकस्त हुए पैरों में अचानक जान आ गयी, भागकर पास पहुंच गया, वह उसके बचपन का दोस्त था, उसका मानसिक भाई भी हुआ करता था. स्कूल के दौरान उसकी हर परेशानी का हल उसके पास हुआ करता था. स्कूल ख़त्म होने के बाद उससे तीन बार ही मिला था. पहली बार उसकी बहन की शादी में, दूसरी बार ठीक दो बरस बाद बहन के पति की मौत पर, तीसरी बार उसकी बहन की तेरहंवी पर.

गांव में आज भी जातिवाद चरम पर है. दंगों के नाम पर प्यार करने वालों को अलग करना साजिश नहीं तो क्या? इन धर्म के ठेकेदारों का क़ानून भी अपना भीड़ भी अपनी होती है.

चौथी बार आज मिलना हुआ. कैंटीन में जाकर दोनों दोस्त बैठे. सवाल और जवाब की बौछार–सी लग गयी, उसने बताया इस मुद्दे पर केंद्रित बातचीत चल रही है. तीन दिन बाद एक पार्टी है जहां हम मिलने वाले हैं, इस मुद्दे पर चर्चा होनी है. बूढ़ा सोचने लगा कि कहीं उसका दोस्त दोगला तो नहीं हो गया. उसने यही बात उससे भी पूछ ली. उसने साफ़ शब्दों में इंकार कर दिया. फिर बूढ़ा बोला यह वे लोग थे जो किसी को समझाने लायक नहीं थे, फिर भी समझा रहे थे. ये आसानी से दिमाग़ की बत्ती गुल कर के राजनीतिक परिदृश्य में दाख़िल कर लेते हैं. काश... मेरा

बेटा इन सब बखेड़ों से दूर रहता. उसे तो पार्टी का अध्यक्ष बनना था. उसी के चलते इन गमछाधारियों के साथ बवाल करने चला गया और साथ में ले गया मेरी फूल-सी बेटी. सन्नाटा छा गया ख़ामोशी को तोड़ते हुए...

उस सन्नाटे में उसके दोस्त को विचलन महसूस हुई. उससे बाहर आने के लिए वह बोला, 'मैं कुछ करता हूं...'

और आगे बढ़ गया. इधर एक–दो रोज़ से जब यूनिवर्सिटी के चक्कर लगाता तो देखता कुछ पुलिस वाले एक फ़ोटो हाथ लिये आसपास पूछताछ कर रहे हैं. उसका दिल रक्कास के मानिंद ता... ता थैय्या करने लगा. बहुत दिनों बाद उसे अपने होने का एहसास हुआ. उस रात वह ख़ूब सोया. सपने में बेटी के साथ गुज़ारे ख़ुशनुमा और सुकून के दिन याद आने लगे. यह ख़्वाब भी ऐसे ही चलते रहते हैं, अगर उस दिन ख़्वाब सरकते हुए हक़ीकत की ज़मीन पर न उतर आए होते, डर के साए में झिझकते हुए थोड़ा क़रीब जाकर उस पुलिस वाले के हाथ में उस तस्वीर को न देखा होता उसके ताश का महल भरभरा कर गिर न गया. बिखरे बादशाह, गुलाम, बेगम में एक साथ दोस्त, थानेदार, कलेक्टर, बेटी और कई अक्स उभर आये. सब्र का बांध टूट गया, मुंह से एक दर्द भरी आह निकली... मेरी जान...! जब दुखी बाप के दिल से आह निकलती है तो यक़ीनन जलजला आता है और यह जलजला आया कलेक्टर साहब के घर में हो रही पार्टी में. ग़ुस्से से बिलबिलाता हुआ पहुंचा, आंखों में अश्रु की धारा अविरल बह रही थी. जिस समाज में बेटी को कोख़ में मार देते हैं, उस समाज में ऐसा भी बाप हो सकता है जो बेटी के लिए पागल हो जाए. दुनिया क्या कहती है उसे परवाह न थी. लोगों को भी उससे हमदर्दी हो आयी थी. लोग दिलासा देते ढांढस बंधाते, बस यही तो वह कर सकते थे. सिक्योरिटी वालों ने उसे गेट पर रोकने की कोशिश की, लेकिन जाने कहां से आज उन बूढ़ी हड्डियों में इतनी ताकत आ गयी थी, वो सबको धक्का देते हुए अंदर पहुंच गया. उसने अपने पूरे बदन को केरोसिन से नहला रखा था. उसकी धमकी से डर, सब उसे समझाने की कोशिश करने लगे. थानेदार को जोर की डांट लगायी गयी, सब हैरान परेशान, अचानक क्या हो रहा है? वह बेतहाशा चीख़ रहा था. आप लोग हमारी फ़रियाद नहीं सुन रहे. रोज़-रोज़ घुट घुट कर मरने से अच्छा है एक बार में मर जाएं. कलेक्टर साहब गरजे, थानेदार मैंने तुमको इनकी बेटी का पता लगाने को कहा था. क्या रिपोर्ट है? तब तक लोगों ने उसे एक कुर्सी पर बिठा दिया और किसी ने एक बाल्टी पानी उसके ऊपर डाल दिया. थोड़ी राहत मिली. यह यहां कैसे आया? एक दबी-सी फुसफुसाहट हवा में तैर गयी. एक भारी-भरकम आकृति उसके पास आकर रुक गयी. उसने राहत महसूस की, वो क्षणिक ही थी, पल भर में ही दोस्ती भाप बन उड़ गयी. ग़लती तुम्हारी नहीं मेरी थी. मुझे तुम पर भरोसा ही नहीं करना था. तुम सब मिलकर उस अमीर बाप की बेटी को खोजते रहे. कड़ियां जोड़ते रहे. मेरी बेटी गुम है और मैं अभागा कुछ और ही समझता रहा, यह समाज अजब–सी घुटन से भरा है, अगर पतझड़ ही बहार बन बगिया में घुस आये तो कलियां क्या करेंगी. अगर फूल ही शूल से डर जाएं तो कैसे खिलेंगे? अगर जीवन की सुख सुविधाओं का बंटवारा ऊपर ही हो जाए, आसमान में चमकता आफ़ताब, रोशनी, हवा ऊपर ही बंट जाये. मुफ़लिसी पर कुछ तो रहम करो साहब. हम जैसे लोगों की फ़रियाद कौन सुनेगा? ये बातें सुनकर सब अपराध बोध से कीचड़ भरी भूल-भुलैय्या में अंदर तक धंस गये. दोस्त के मन में गहरी-सी हूक उठी, वो पास आया और अपना हाथ उसके कंधे पर रख दिया. आंसुओं से भीगी संज्ञाहीन अवस्था में मौजूद आंखों को उससे हमदर्दी हो आयी. समय की अनुकूलता को भांपते हुए थानेदार बोला — 'बाबा आप बेटे के पास जाओ वह आपका इंतज़ार कर रहा है.'

फिर कलेक्टर साहब की ओर मुख़ातिब हो बोला, साहब बेटा ढूंढ दिया है. बेटी भी मिल जाएगी. भरोसा दिलाते हैं. बेटे को मिले पूरे सात दिन हो गये हैं. ये उसके पास मिलने भी नहीं गये. सब उसका बेटी प्रेम देख भाव-विह्वल हो रहे थे.

अपनी गिरती-पड़ती काया ले उठ खड़ा हुआ बोला, 'परवाह है बेटे की... उसकी ज़िंदगी की फ़िक्र है...

आप लोग समझ नहीं रहे मेरी बेटी नहीं खोयी साहब... मेरा रोज़गार खोया है.'

इस कलियुगाई महत्वाकांक्षा को देख मसान-सी ख़ामोशी पसर गयी.

C-२, जीवन आनंद, अधिकारी आवास,
गौतम नगर, भोपाल–४६२०२३
मो : ८९५९९४०७९९
ई-मेल : neetumukul2015@gmail.com

'पासे अपने हाथ में, दांव न अपने हाथ'

शिवानी शर्मा

शिवानी शर्मा राजस्थान के विभिन्न शहरों में पली-बढ़ी हैं. शैक्षणिक योग्यता बी. कॉम, एमबी ए, मॉन्टेसरी डिप्लोमा, जनसंचार एवं पत्रकारिता में स्नातकोत्तर डिप्लोमा.
पिछले लगभग सात वर्षों से 'शिवानी जयपुर' के नाम से लेखन में सक्रिय. विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं, कहानियां, लघुकथाएं और समसामयिक विषयों पर लेख पत्रिकाओं में न केवल प्रकाशित एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत.
रेडियो कॉम्पीयर के रूप में पिछले तीस वर्षों से सक्रिय और अब दूरदर्शन से भी जुड़ाव.
अजमेरपोएट्राक्लब (APC) की संस्थापक सदस्य और सहयोग सेतु (NGO) की अध्यक्ष.
लेखन को करियर बनाने की कोशिश न करके शौक़िया ही रखा.

ढलती दोपहर की धूप में तेज़ी ख़त्म होने के कगार पर थी. जाते-जाते दोपहर की वो आग सूर्य प्रताप और रश्मि दोनों के दिमाग़ में भर गयी थी. रश्मि के कानों में ये ख़बर गर्म पिघलते लावे की तरह उतरती चली गयी थी. अपसैट तो प्रताप भी था! एक तो उनसे बिना पूछे रश्मि के नाम की घोषणा कर दी. ऊपर से वो जानता था की बाबोसा की सत्तारूढ़ पार्टी में महिला प्रत्याशी या महिला सांसद की क्या स्थिति होती है. केवल एक डमी होते हैं डमी. और उसे यह भी पता था कि पढ़ी–लिखी, आत्मनिर्भर रश्मि इसके लिए बिल्कुल राजी नहीं होगी और उसने ठीक ही सोचा था. रश्मि बिफर रही थी 'बाबोसा ने ये ठीक नहीं किया! मैं अपने प्रोफ़ेशन में ख़ुश हूं. मुझे नहीं जाना है वापस उस राजनीति में.'

'अब क्या बताऊं रश्मि...' सूर्य प्रताप की आवाज़ में बेबसी झलक रही थी. बाबोसा ने तो महिला सीट की पर्ची खुलते ही तुम्हारे नाम की घोषणा कर दी थी! मैं ख़ुद हतप्रभ रह गया था उस वक़्त.'

'तो बेहोश तो नहीं हो गये थे? वहीं टोक देते ना अपने बाबोसा को.'

वहां तो तुरंत ही तुम्हारे नाम के नारे लगने शुरू हो गये थे! तुम तो जानती ही हो इन कार्यकर्ताओं की प्रजाति को.' वो हताशा से भरा हुआ था.

'चाहे कुछ भी हो जाये. मैं न जॉब छोड़ूंगी और न ही चुनाव लड़ूंगी!' रश्मि अपने निर्णय पर अडिग थी.

'बाबोसा को कैसे मना करेंगे?' सूर्य प्रताप कहने को शहर का मेयर था पर हुकूमत बाबोसा ही करते थे. उनका कहना था कि भले ही पद मिल गया है पर काम सीखना अभी बाक़ी है! इसलिए वो बराबर मार्गदर्शन करते थे.

'तुम ना... बस राजा बेटे ही बने रहना प्रताप. बाबोसा नाम के बरगद के नीचे से बाहर निकल कर देखो. तुम्हारे लिए पूरी धरती बाहें फैलाए हुए है.' रश्मि कुछ भावुक भी हो रही थी और क्रोधित भी.

'तुमसे नहीं होगा. मैं ही बात करूंगी उनसे. ये दादागिरी मुझ पर नहीं चलेगी. समझ लेना तुम सब.' रश्मि ने पहले मोबाइल उठाया फिर कुछ सोचकर बोली, 'आमने-सामने बात करेंगे! चलो वहीं चलते हैं.'

सूर्य प्रताप जिस स्थिति से बचना चाह रहा था वो अब सामने आने ही वाली थी! अब बचना संभव नहीं था. 'चलो... यही ठीक है. जो होना है आज ही फ़ाइनल हो जाये.' उसने गाड़ी की चाबी उठाते हुए कहा.

'फ़ाइनल हो जाये का क्या मतलब है प्रताप? मेरा फ़ैसला फ़ाइनल ही है. बस बाबोसा को बताना है! समझे ना तुम? उसने सूर्य प्रताप से आश्वस्त होना चाहा.

'हां-हां, मेरा वही मतलब था. अब चलो भी.' उसने बात को विश्राम दिया.

'अब ये दिन आ गये हैं कि पार्टी के हित में कोई फ़ैसला लेने से पहले हमें तुम लोगों से पूछना पड़ेगा?' बाबोसा ने कुछ व्यंग्यात्मक लहजे में मगर शांति से सूर्य प्रताप से मुख़ातिब होते हुए कहा.

'चूंकि वो मुद्दा मुझसे संबंधित था तो आपको मेरी राय भी लेनी चाहिए थी! मेरे लिए कोई भी फ़ैसला आप अकेले नहीं ले सकते हैं बाबोसा!' रश्मि सीधी बाबोसा से मुख़ातिब हुई!

'चलो भूल हो गयी! नहीं ली राय!' उन्होंने बहुत शांति से रश्मि की ओर देखकर कहा!

रश्मि कुछ कह पाती उससे पहले ही उन्होंने बात आगे बढ़ाई, 'मुझे लगा कि ये तुम्हारे लिए सरप्राइज़ होगा. तुम्हें ख़ुशी होगी! तुमने भी चुनाव लड़े हैं, जीती भी हो. दो साल विश्वविद्यालय में उपाध्यक्ष पद पर रहना कोई आसान बात नहीं है. इसलिए इस बड़े अवसर को पाकर ख़ुश हो जाओगी. बस इसीलिए...' उन्होंने कंधे उचका कर दोनों हाथ सामने फैलाते हुए अपनी बात अधूरी-सी छोड़कर सूर्य प्रताप और रश्मि की ओर बारी-बारी से देखा.

'कॉलेज़ के दिनों की बात और थी बाबोसा! वो परिवार के पैसे और पॉवर का गेम था! मैं वो सब छोड़ चुकी हूं और आज अपने इस नये अचीवमेंट को एंजॉय कर रही हूं जो मैंने अपनी योग्यता से हासिल किया है. मुझे न नौकरी छोड़नी है और न चुनाव लड़ना है! यह मेरा फ़ाइनल डिसीज़न है.'

'मैं भी घोषणा कर के पीछे नहीं हट सकता. समझने की कोशिश करो.'

'तो आपने ऐसी घोषणा की ही क्यों?'

'क्योंकि मुझे यही ठीक लगा... और परिवार की तरफ़ क्या तुम्हारी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है? पीढ़ियों से यह सीट अपने परिवार के कब्ज़े में रही है! महिला आरक्षित घोषित होते ही इस परिवार की बहू होने के नाते तुम्हारी ही उम्मीदवारी बनती थी! यह तुम्हारा हक़ है...जो मैं तुम्हें ख़ुशी-ख़ुशी दे रहा हूं. तुम्हें तो ख़ुश होना चाहिए और तुम हो कि...'

'परिवार के लिए नहीं! आपकी महत्वाकांक्षा के लिए बाबोसा! आप इसको परिवार की ज़रूरत का नाम मत दीजिए! आपकी महत्वाकांक्षा का बोझ भला मैं क्यों ढोऊं?'

'ज़िम्मेदारी को बोझ ढोना कहती हो?' अब तक किसी तरह रोक कर रखा गया ग़ुस्सा बाहर आने को ही था 'क्या यही सीखा है तुमने?'

'जब ज़िम्मेदारी ज़बरदस्ती साबित करने की कोशिश की जाए तो बोझ ही होती है बाबोसा... आप किसी भी तरह से मुझे कन्वींस नहीं कर सकते हैं.'

'इसका परिणाम जानती हो?' बाबोसा कुछ धमकी भरे लहजे में बोले. उनके राजनैतिक करियर में आज तक उनके किसी फ़ैसले पर किसी ने उंगली नहीं उठायी थी और एक महिला... वो भी अपने ही घर की बहू. जिसको वो कोई अहमियत ही नहीं देते थे. वो उनको चुनौती दे रही थी! उनके फ़ैसले के खिलाफ़ बोल रही थी. आग तो लगनी ही थी!

'तो अब आप मुझे धमकाने पर आ गये हैं. अब मैं पूछती हूं... यही सीखा है आपने कि घर परिवार की बहू-बेटी अगर आपकी मर्जी के हिसाब से ना चले तो आप डराएंगे, धमकाएंगे?' रश्मि अपनी जगह से खड़ी होते हुए आगे बोली 'मुझे धमका कर आपने अच्छा नहीं किया बाबोसा!'

'अच्छा! क्या कर लोगी? तुम मुझे धमकाने की कोशिश कर रही हो!' बाबोसा भी एक कुटिल और बेपरवाह अट्टहास लगाते हुए खड़े हो गये, 'अब तक तो मैं कोशिश

कर रहा था कि तुम शांति से बात समझो और मान जाओ. लेकिन अब लगता है कि तुम ऐसे नहीं मानने वाली. अब तो तुम्हें ज़बरदस्ती ही मनाना पड़ेगा.'

'भूल जाइए बाबोसा... आपका यह सपना, सपना ही रहेगा.' रश्मि ने सूर्य प्रताप की ओर देखा कि चलना है या और कुछ बात करनी बची है.

'जाओ जाओ बेटा.' बाबोसा ने कुटिलता से मुस्कुराते हुए सूर्य प्रताप को देखा, 'बहूरानी को घर ले जाओ और समझाओ कि बाबोसा को चैलैंज़ करने वालों ने हमेशा मुंह की खायी है.' एक नज़र रश्मि पर डालते हुए वो भीतर की ओर चले गये. उनके पीछे-पीछे सूर्य प्रताप भी चला गया तो रश्मि का मूड और उखड़ गया.

'समझते क्या हैं ये दोनों अपने आपको? कठपुतली हूं मैं? कोई भी अपने हिसाब से चला लेगा मुझे?' ग़ुस्से से कांपती हुई रश्मि के कंधे पर सास ने हाथ रखा तो उसकी रुलाई फूट पड़ी. पता नहीं ईश्वर ने स्त्रियों के शरीर में ये कौनसा कनेक्शन फ़िट किया है कि किसी भी भाव की समाप्ति से पहले एक ज़रूरी पड़ाव रूदन ही होता है.

'मांसा... अब मेरे सपने बिल्कुल अलग हैं. वो छात्र राजनीति वाली रश्मि कोई और ही थी. मुझे पढ़ना-पढ़ाना पसंद है अब. राजनीति की उठा-पटक और पैंतरे बाज़ी से ऊबकर ही ये लाइफ़ चुनी है मैंने. मुझे नहीं लौटना है उसमें.'

'जो तेरा मन हो वही कर. मैं साथ हूं तेरे.' मांसा की बात सुनकर रश्मि कुछ संयत हुई, 'मांसा... अगर बाबोसा मुझसे पूछते और समझाते तो शायद मैं एक बार मान भी जाती. अपने इस परिवार से दुश्मनी तो नहीं है मेरी. पर इस तरह नहीं. डमी बनाकर इस्तेमाल नहीं कर सकते हैं वो मुझे.' फिर अचानक उसे जैसे कुछ याद आया, 'जब उन्हें डमी ही चाहिए तो आपके नाम पर विचार क्यों नहीं किया?'

'मैं छात्र नेता नहीं रही ना.' मांसा हंसी 'और जवान और ख़ूबसूरत भी नहीं कि जिससे नयी पीढ़ी के वोट आकर्षित किये जा सकें.'

'हम्म... बात में दम है.' रश्मि के चेहरे पर आयी हल्की-सी मुस्कान ने माहौल हल्का कर दिया.

'ये प्रताप क्या करने गया है अंदर?'

'अपनी समझ से जो उसे ठीक लगेगा वो वही करेगा.' मांसा को संशय था कि प्रताप रश्मि के पक्ष में बाबोसा से बात करेगा. इसलिए गोलमाल-सा जवाब दिया.

इतने में मांसा ने चाय मंगवा ली. जब तक दोनों की चाय ख़त्म हुई, सूर्य प्रताप भी आ गया और मांसा से विदा लेकर दोनों घर के लिए निकल गये.

रास्ते भर चुप्पी छायी रही जो घर जाकर भी नहीं टूटी. प्रताप का बाबोसा के सामने चुपचाप रहना और रश्मि के पक्ष में एक शब्द भी नहीं कहना रश्मि को अखर गया था! 'इसे ही कहते हैं जीवन साथी? जब उसके साथ की ज़रूरत हो तो वो अजनबी की तरह तमाशा देखने को खड़ा रहे.' रश्मि के मन में सौ-सौ सवाल थे. आज जो कुछ भी हुआ और आगे आने वाले दिनों में जो कुछ भी होगा, वो मेरे लिए अलार्म होगा कि अब आगे प्रताप पर कितना भरोसा किया जा सकता है. मन ही मन कुछ तय कर के वो सोने चली गयी. प्रताप खाना खाकर बाहर निकल गया. सुबह रश्मि उठी तो वो गहरी नींद में था.

हर रोज़ सुबह नौ बजे तक रश्मि नाश्ता करके और अपना लंच बॉक्स लेकर कॉलेज़ के लिए निकल जाती थी. तब तक प्रताप भी ज़िम से लौट आता था. तब थोड़ी देर बात होती थी फिर रश्मि तो दोपहर में घर लौट आती थी. कुछ आराम करके शाम को ज़िम जाती थी और जब लौटती थी तो अक्सर प्रताप भी साथ-साथ ही लौटता था. दोनों इस समय जूस लेते थे. यही समय उनका बातचीत करने का मुख्य समय होता था. सारे दिन का हाल दोनों एक-दूसरे को सुनाते थे. जीवन में आज से पहले ऐसी कोई उथल-पुथल नहीं थी. पर आज सब कुछ बदला हुआ–सा महसूस हो रहा था. पहली बार प्रताप को सोता छोड़कर रश्मि अकेले मॉर्निंग वॉक पर चली गयी. लौटी तो पता चला कि प्रताप भी मॉर्निंग वॉक पर गया हुआ था. घर के नौकर-चाकर भी इस बदलाव को महसूस कर रहे थे.

'आपका नाश्ता लगा दूं मैम या आप साब का वेट करेंगी?'

भोला ने पूछा तो रश्मि की तंद्रा भंग हुई, 'हां मेरा तो लगा ही दो. मैं लेट हो रही हूं.'

मोबाइल के युग में भी ऐसा अबोला! रश्मि का स्वाभिमान उसे प्रताप के प्रति सचेत कर रहा था तो प्रेम आशा की जोत जलाए बैठा था.

इधर कॉलेज़ पहुंचते ही प्रिंसिपल मैम ने बुला लिया.

'आप चुनाव में खड़ी हो रही हैं?'

रश्मि जैसे इस प्रश्न के लिए तैयार नहीं थी... वो एकदम से चौंक गयी 'मैम! मेरे नाम का प्रस्ताव रखा गया है बस, मैंने बिल्कुल मना कर दिया है. मैं नहीं लड़ रही कोई चुनाव वुनाव.'

'बट मैनेज़मेंट ने ऑब्ज़ेक्शन लिया है रश्मि! डोंट टैल मी दैट यू हैवन सीन द न्यूज़ पेपर्स एन ऑल द लोकल टीवी चैनल्स! यू आर द हैडलाइन ऑफ़ टुडे! बल्कि कल दोपहर से ही!' प्रिंसिपल मैम ने चश्मा आंख से हटाकर हाथ में पकड़ लिया.

'बट आय हैव रिफ्यूज़्ड मैम.'

'देन? हाउ इट हैड हैपन्ड रश्मि?' उन्होंने चश्मा अब सिर पर चढ़ा लिया. 'आय एम आंसरेबल टू दि मैनेज़मेंट. एंड दे आर ऑन माय हैड दिस टाइम. आय एम रियली अपसैट.'

चश्मा सिर से आंखों पर चढ़ाते हुए उन्होंने ड्रॉअर से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर रश्मि के सामने रख दिया, 'आय एम एक्सट्रीमली सॉरी रश्मि!'

'वॉट्स दिस?' रश्मि ने लिफ़ाफ़ा उठाया और खोलकर उसमें से लैटर निकाला! 'ओ माय गॉड. दिस इज़ नॉट पॉसिबल मैम. हाउ कैन? दे आर अंडर प्रेशर मैम.'

'यस...मे बी!'

'आय रिफ्यूज़ टू टेक दिस डिसमिसल लैटर.'

'देन वी हैव टू पोस्ट इट ऑर हैंड इट ओवर एट योर होम.'

उन्होंने चश्मा फिर हाथ में पकड़ लिया. 'आय एम टोटली हैल्पलेस रश्मि! आय होप यू कैन अंडरस्टैंड.'

रश्मि ने बिना कुछ कहे लैटर उठाया और तीर की तरह बाहर निकल गयी. सीधे स्टाफ़ रूम में पहुंची. संयोग से वहां कोई नहीं था. उसने अपना सामान लिया और चपरासी को बुलाकर कार में रखने का कहकर उसके साथ चल दी.

मैम को असमय घर लौटा देखकर घर के तीनों नौकर अचकचा गये, 'तबियत ठीक नहीं मैम?' उसका चेहरा देखकर उन्हें यही सूझा.

'एक कप कॉफी पिला दो. और हां, गाड़ी में से सामान निकाल लेना.' कहते हुए वो अपने कमरे में चली गयी.

कपड़ों सहित ही शॉवर के नीचे खड़ी हो गयी. जब कमली ने कॉफी के लिए पुकारा तब होश आया कि कहां खड़ी है. जल्दी से कपड़े बदल कर बाहर आयी. कमली वहीं रुकी हुई थी, 'मैम? भोला कह रहा था कि आपको कॉलेज़ से निकाल दिया है?'

'तो यह ख़बर सबको है. एक मेरे सिवा.'

'नहीं मैम, जब आप जल्दी आयी ना तब उसने बोला.'

'बुला उसे.'

कमली जब तक भोला को लेकर लौटी, रश्मि तय कर चुकी थी कि उसे क्या करना है!

'तुम्हें ये ख़बर किसने दी भोला?' बहुत प्यार से रश्मि ने पूछा.

भोला, जो कि कुछ डरा हुआ सा था. इस तरह पूछने से उसने कुछ राहत महसूस की, 'मैम... साब सुबह किसी से बात कर रहे थे तो पता चला!' वो दयनीयता से हाथ जोड़कर घुटनों के बल बैठ गया. जैसे कह रहा था कि साब को मत बताना कि मैंने कहा.

'अरे अरे', रश्मि उसे ऐसे बैठे देखकर अचकचा गयी. 'तुम चिंता मत करो साब को कुछ पता नहीं चलेगा.' रश्मि उसके मन की बात भांप गयी थी. 'पर आगे भी मुझे सब बताते रहना होगा! तुम तो जानते हो ना कि मेरे खिलाफ़ कैसे-कैसे षड़यंत्र रचे जा रहे हैं?'

'जी मैम.'

'जाओ अब! आराम से अपना काम करो.' रश्मि ने उसे आश्वस्त किया.

'मतलब प्रताप को पता था.' मन ही मन रश्मि ने कहा.

वैचारिक उथल-पुथल अपने चरम पर थी. तभी मांसा का फ़ोन आ गया.

'रुकिए मैं पहले दरवाज़ा ठीक से बंद कर लूं. अब किसी का कोई भरोसा नहीं मांसा!'

'मुझे सब पता है! और इस सबको सबक सिखाने का एक फ़ुलप्रूफ़ आइडिया है मेरे पास.'

'फ़ुलप्रूफ़ आइडिया?'

हां... तुम बताओ तुमको ठीक लगता हो तो उस पर काम करें.'

'बताइए....'

उसके बाद जब रश्मि बात ख़त्म करके उठी तो एक नयी ऊर्जा, नये संकल्प से भरी हुई थी.

उसने प्रताप को फ़ोन लगाया.

'हैलो! कहां हो? कब तक आओगे घर?'

'क्यों क्या हुआ?'

'ज़रूरी बात करनी है...'

'रास्ते में ही हूं. बताओ क्या हुआ?' प्रताप आमने-सामने सुनने से बच रहा था.

'लंबी बात है. तुम आ जाओ फिर बात करते हैं.'

'ठीक है. बस पांच-सात मिनट में पहुंच रहा हूं.'

रश्मि हॉल में प्रतीक्षा करती हुई मिल गयी.

'क्या हुआ? कोई परेशानी है?' प्रताप अनजान बना हुआ था.

'बाबोसा ने मेरी जॉब छीन ली है! निकाल दिया है मुझे कॉलेज़ से.' रश्मि ने प्रताप की आंखों में सीधे देखते हुए लैटर उसकी ओर बढ़ा दिया.

'ओह ऐसा!' उसने बुरा–सा मुंह बनाते हुए लैटर हाथ में लेकर एक सरसरी निग़ाह उस पर डाली. फिर एक ठंडी सांस छोड़ते हुए कहा, 'मुझे पूरा डाउट था कि यह होगा. पर इतनी जल्दी? तुम्हें बाबोसा को चैलेंज़ करते समय एक बार तो सोचना चाहिए था!'

'वॉट रबिश! आर यू ऑउट ऑफ़ योर माइंड?'

'चालीस साल से ऊपर का पॉलिटिकल करियर है उनका! इस शहर का हर बिज़नेस कहीं न कहीं उनके एहसान तले दबा हुआ है!'

'सो वॉट?

'तो यह कि वो जो चाहेंगे वही होगा?'

'अच्छा! और तुम? तुम जो चाहते हो, वो कब होगा?'

'मतलब?'

'मतलब यह कि तुम्हारे पॉलिटिकल करियर का क्या होगा?' रश्मि ने क़रीब आकर उसके सीने पर हाथ रखते हुए पूछा अगर ये सीट रिजर्व्ड नहीं होती तो तुम खड़े होते ना?'

'बिल्कुल!'

'तो मुझे डमी बनाकर बाबोसा क्यों राज करें? तुम क्यों नहीं?'

'मतलब? तुम क्या कहना चाहती हो?'

'यह समय है कि तुम अपनी अलग ज़मीन बनाओ. कब तक बाबोसा के पीछे-पीछे आज्ञाकारी बच्चे की तरह घूमते रहोगे?'

'बाबोसा से बगावत करने को कह रही हो?' प्रताप आश्चर्य में था.

'नहीं, अपने हिस्से की चीज़ अपने पास रखने का कह रही हूं. मेयर हो, पर सब जानते हैं कि फ़ैसले बाबोसा लेते हैं. तुम बस फीते काटते हो.' रश्मि ने प्रताप की दुखती रग पर उंगली रखी.

... प्रताप गहरे सोच में पड़ गया था.

'मैंने कुछ सोचा है! अगर तुम हिम्मत करो तो बहुत कुछ हो सकता है.'

'क्या?' प्रताप ने रश्मि के हाथ पर हाथ रखते हुए पूछा.

'मैं निर्दलीय खड़ी होती हूं. तुम प्रचार करो, जीते तो राज करेंगे, नहीं तो जनाधार तो बनेगा ही. चढ़ते सूरज को ही सलाम करती है पब्लिक. बाबोसा भी जानते हैं यह.' एक पल दोनों की आंखें एक दूसरे की आंखों में ही ठहरकर जैसे इतिहास पढ़ने लगीं... अपने ताऊजी को किनारे पर डुबोकर बाबोसा ने कैसे उनकी जगह हथियायी यह किसी से छुपा नहीं था और इसीलिए बाबोसा के मन का चोर प्रताप को मज़बूत नहीं होने देता था. प्रताप इसे ख़ूब समझता था.

'फिर पार्टी से उम्मीदवार कौन होगा?'

'कोई भी हो! हमारे आगे जनता उसे नहीं पूछेगी.'

'रातों रात उड़ा देंगे बाबोसा तुम्हें.' वो हंसा.

'चुनाव के समय वो यह भूल बिल्कुल नहीं करेंगे. मुझे कोई नुकसान पहुंचाना मतलब तुमको खोना और जनाधार खोना. हां अगर तुम उनके ही पक्ष में खड़े रहे तो वो मुझे उड़ाने में देर नहीं करेंगे. पर फिर कभी तुम्हें अपने आपको साबित करने का ऐसा मौक़ा नहीं मिलेगा. सोच लो.' रश्मि हाथ छुड़ाकर सोफ़े पर बैठ गयी.

गहरे सोच में डूबा हुआ प्रताप थोड़ी देर चहलक़दमी करता रहा फिर रश्मि की ओर देखते हुए बोला, 'यार... कह तो तुम ठीक रही हो. पर मुझे और सब कुछ भी सोचने दो. बहुत सारी चीज़ें हो सकती हैं. सोचना पड़ेगा.'

'आराम से प्रताप... मेरी नौकरी तो जा ही चुकी है. और मैं तय कर चुकी हूं कि निर्दलीय चुनाव लड़ूंगी. तुम साथ हो कि न हो! तुम आराम से सोचकर बताना.' प्रताप

को हैरानी से ताकता छोड़कर रश्मि वहां से चली गयी.

घड़ी के पेंडुलम को स्थिर करने के लिए, उसे प्रेषित होने वाली ऊर्जा को रोकना होता है. उस बल को समाप्त करना होता है, जो पेंडुलम को गति प्रदान करता है. इसके लिए या तो चाबी भरना बंद करना करें या फिर बैटरी निकाल दें. तभी पेंडुलम रुक सकता है. अन्यथा वो अपनी निश्चित गति से घड़ी के दोनों सिरों के बीच झूलता ही रहेगा.

तो सूर्य प्रताप, जो कि पिता और पत्नी के बीच पेंडुलम की तरह हिचकोले खाता झूल रहा था, को भी अपनी ऊर्जा स्रोत यानी कि खानदानी प्रभुत्व का त्याग करना ही था. धीमी पड़ती गति के स्थिर होने से पहले उसे तय करना था कि किस ज़गह जाकर रुकना है? एक तरफ़ पिता थे जिन्होंने अपनी सारी आशाएं उस पर टिका तो रखी थीं पर उसके व्यक्तित्व को दबाए हुए रखते थे. दूसरी ओर पत्नी थी जो उसकी महत्वाकांक्षा को समझ रही थी. और ज़िम्मेदारी तो दोनों ओर ही थी! एक ओर उसे पुत्र धर्म निभा कर जैसे कर्ज़ उतारना था और दूसरी ओर भविष्य की नींव ही दांव पर लगी हुई थी. समय निकलता जा रहा था और सूर्य प्रताप की इधर-उधर झूलने की गति तीव्र होती जा रही थी. लगभग पूरी रात आहते में चहल–क़दमी करते बीत गयी. उसे लग रहा था की आहते में चहल–क़दमी करते-करते वह दो युगों की दूरी को पार कर लेगा. पर उलझन में ही था कि भूतकाल से भविष्य की ओर जाये या भूतकाल में ही भविष्य तलाश करे. बुझती हुई अग्नि के राख़ में बदलते ढेर में कुछ चिंगारियां भले ही चिट-चिट करती उछल-उछल कर अपनी उपस्थिति दर्ज़ करवाएं, उनसे अग्नि के फिर से प्रज्ज्वलित होने की संभावनाएं लगभग शून्य ही रहेंगी. इसलिए किसी भ्रम में पड़ कर राख़ में ऊर्जा तलाश करने का प्रयास निरर्थक है. यही सोचते हुए सूर्य प्रताप को पत्नी के पक्ष में खड़े होने में ही अपना भविष्य उज्जवल नज़र आने लगा. 'रश्मि सही कह रही थी! बाबोसा की छत्रछाया में मुझे अपनी पूरी प्रतिभा दिखाने का अवसर कहां मिल पाता है? वो जैसे बरगद के नीचे अर्ध विकसित पौधे रह जाते हैं. जबकि रश्मि के साथ खड़े होने पर मुझे खुलकर अपनी प्रतिभा दिखाने का अवसर मिलना तय है.' प्रताप ने ख़ुद को समझाया.

पेंडुलम की गति धीमी पड़ने लगी और धीरे-धीरे रश्मि की ओर जाकर थम गयी. उस दिन भोर की लालिमा सूर्य प्रताप के लिए नया जीवन संदेश लेकर आयी थी.

फिर तो निर्दलीय चुनाव लड़ रही पत्नी के चुनाव प्रचार की बागडोर सूर्य प्रताप ने कसकर थाम ली. गांव-गांव, ढाणी-ढाणी जाकर जनसभाएं कीं. शहरों में बड़े-बड़े जुलूस निकाले और सभाएं कीं पत्नी के लिए न केवल भाषण लिखे बल्कि उसकी प्रैक्टिस भी ली. कुल मिलाकर सूर्य प्रताप ने कभी अपने पिताजी के लिए भी जितनी मेहनत नहीं की थी, उससे कहीं अधिक रश्मि के लिए की.

इधर बौखलाए हुए बाबोसा को मांसा ने हिम्मत दी थी, 'बहू-बेटे ने छोड़ दिया तो क्या हुआ? मैं तो हूं. मुझे खड़ा कर दो. बात तो एक ही है. परिवार की बहू ही तो हूं. छोटी नहीं तो बड़ी सही. आपकी बात भी रह जायेगी. हुकूमत आप ही करोगे. मैं तो बस साइन ही करूंगी.' ये साइन ही उनकी मिल्कियत ले बैठेंगे ये बाबोसा नहीं जानते थे. उनको तो जैसे खोयी हुई जागीर वापस मिलने की उम्मीद जागी. मांसा के नाम की घोषणा हो गयी. सास-बहू तो मैदान में आमने-सामने थीं और बाप-बेटे नेपथ्य में.

शहर में राजनीतिक उथल-पुथल को तेज़ झटका तब लगा जब मांसा का नामांकन रद्द हो गया. बाबोसा के पैरों तले ज़मीन खिसक गयी... 'यह कैसे हो गया? पर्चा तो मैंने अपने हाथ से ही भरा था. ग़लती की कोई संभावना ही नहीं.'

वो तो भला हो हमारे देश के क़ानून क़ायदों का कि जिसमें इतनी सहूलियतें हैं कि आप अपने हिसाब से काम निकाल लो. तो एक विश्वासपात्र महिला कार्यकर्ता से भराया गया अतिरिक्त नामांकन काम आया. बिल्ली के भाग्य से छींका फूटा. और वो अनजानी महिला पार्टी की उम्मीदवार बनी. जिसके जीतने को लेकर पार्टी में भी कोई आश्वस्त नहीं था! पत्नी से हताश बाबोसा ने बहू को हराने में अपनी पूरी ताकत झोंक दी पर बहू न केवल भारी मतों से विजय हुई बल्कि सत्तारूढ़ पार्टी की प्रत्याशी की जमानत ही जप्त हो गयी.

सूर्य प्रताप और रश्मि के निवास 'सूर्याश्मी' में सब ओर ख़ुशियां मनायी जा रही थीं. जश्न का माहौल था. लेकिन सूर्य प्रताप के मन में कहीं न कहीं ये मलाल था कि अगर ये सीट महिला आरक्षित नहीं होती तो इतनी मेहनत करने पर वह ख़ुद यह चुनाव जीत सकता था. लेकिन ऐन वक़्त पर महिला आरक्षित सीट घोषित हो जाने के कारण

बाबोसा ने बिना किसी से सलाह मशविरा किये अपनी पार्टी से बहू को टिकट देने की घोषणा कर दी थी! पीढ़ियों से इस सीट पर उस के परिवार के पुरुषों का कब्ज़ा था. सबसे पहले बाबोसा के दादा जी ने आज़ादी के बाद हुए पहले चुनाव में यह सीट जीती थी. फिर बाबोसा के ताऊजी ने उनकी विरासत संभाली. पर वो अधिक समय तक इसका आनंद नहीं ले पाये. बाबोसा ने बहुत चालाकी से ख़ुद को उनका उत्तराधिकारी घोषित करवा लिया! पार्टी कार्यकर्ता दो गुट में बंट गये. एक बाबोसा के समर्थन में और एक गुट उनके ताऊजी के समर्थन में और फिर कुछ दिन बाद बहुत ही संदिग्ध परिस्थितियों में उनकी मृत्यु हो गयी. कार्यकर्ताओं के एक गुट में उत्साह तो दूसरे में खलबली मच गयी. अंत में चढ़ते सूरज को सलाम करते हुए सभी ने बाबोसा को सर्वसम्मति से अपना नेता मान लिया था. तब से आज तक उनके इस अभेद्य दुर्ग में कोई सेंध नहीं मार सका था. उन्होंने इसके लिए अपने क्षेत्र में जनता के लिए काम भी बहुत किया है. उनके दरवाज़े से आज तक कोई नाउम्मीद होकर नहीं लौटा है तो बेवजह लाभ भी किसी को नहीं मिला है. इसीलिए आज तक उन पर कोई उंगली नहीं उठा सका. और आज... आज तो सब कुछ बदल चुका था.

चुनाव जिताने के उत्सवों की श्रृंखला लगभग समाप्ति पर थी. रश्मि के नये बने कार्यालय के उद्घाटन समारोह में प्रताप ने अपने बैठने के लिए मुख्य कुर्सी पीछे खिसकायी ही थी कि उसके साथ खड़ी रश्मि बिजली की सी गति से सामने आयी, 'रुको प्रताप! इस पर मैं बैठूंगी.' और पूरे आत्मविश्वास से उस पर बैठ गयी. फूलों के बड़े-बड़े गुलदस्तों के पीछे प्रताप का तमतमाया हुआ चेहरा छुप गया. तालियों की गड़गड़ाहट ने प्रताप का ध्यान भंग किया. वो संभला और तीर की तरह बाहर निकल गया.

कॉलेज़ के समय से रश्मि को जानता हूं. मैंने कैसे भरोसा कर लिया कि उसे डमी बनाकर इस्तेमाल किया जा सकता है! बेइरादा इधर-उधर गाड़ी दौड़ाता प्रताप बेख़्याली में धोबी-घाट की ओर चला आया जहां पहुंचते ही उसका सामना 'धोबी-घाट' लिखे बोर्ड के सामने आपस में लड़ रहे दो कुत्तों से हो गया. एक तेज़ आवाज़ के साथ उसकी गाड़ी वहीं थम गयी.

पास ही कपड़े सुखाती धोबने समवेत स्वर में गा रही थीं...

'निज कर क्रिया रहीम कहि सीधी भावी के हाथ.
पांसे अपने हाथ में दांव न अपने हाथ.'

इधर मांसा ने एक सुंदर सा अभिनंदन पत्र बनवाया और सूर्याश्मी पहुंची. बहू से मिलकर उसकी बलैया ली और कार्ड दिया. 'इसमें आपका नाम तो लिखा ही नहीं मांसा.' रश्मि रहस्यमयी तरीक़े से मुस्कुरायी.

'नाम का क्या है? मैं तो साइन करूंगी.' मांसा खिलखिलायी. 'कौनसे करूं बता? असली वाले या नामांकन पत्र वाले?'

और दोनों के सम्मिलित ठहाके से बंगला गूंज उठा.

✍ **मो. : ९५०९१०५००५**
Shivani6370@gmail.com

पिताजी

(पृष्ठ ४२ का शेष भाग...)

किसी ने देखा नहीं. वह पिताजी को जलते हुए एकटक देख रहा था. थोड़ी देर के बाद; नींद की गोलियों ने अपना असर दिखाना शुरू कर दिया. संजीव को सब कुछ धुंधला-धुंधला सा दिखायी दे रहा था. ज़्यादा नींद आने की वजह से वह पिता की जलती चिता के सामने ही गिर गया.

चार दिनों के बाद संजीव को होश आया. मां बोली, 'तुम बांसघाट में ही बेहोश हो गये थे; राजीव घबरा गया था; तुम चार दिनों से सो रहे हो; तुम्हें खाने-पीने का भी होश नहीं था; तुम बार-बार मुझे सोने दो, सोने दो की रट लगा रहे थे.' मुझे लगा, 'तुम पिताजी की मृत्यु की वजह से बहुत ज़्यादा दु:खी हो, अब तुम्हारी तबियत कैसी है?' संजीव मां को कैसे बताता कि उसने बहुत सारी नींद की गोलियां खा ली थीं, उसकी जीने की लालसा ख़त्म हो गयी है और वह पिताजी के बिना नहीं जीना चाहता है.

✍ ***मुख्य प्रबंधक, भारतीय स्टेट बैंक.***
स्टेट बैंक भवन, आर्थिक अनुसंधान विभाग,
चतुर्थ तल, कॉर्पोरेट केंद्र, नरीमन पॉइंट,
मुंबई-४०००२१
मो. : ८२९४५८६८९२
ई-मेल : satish5249@gmail.com/
singhsatish@sbi.co.in

मोह के धागे

वीणा विज 'उदित'

जन्म : लाहौर, शिक्षा : एम. एड. (स्वर्ण पदक) १९६९, जबलपुर वि. वि.
निवास : चार माह कश्मीर, ६ माह अमेरिका व २ माह जलंधर पंजाब.
कलाकार, कवयित्री व साहित्यकार

: लेखन :
हिंदी, पंजाबी, उर्दू और अंग्रेज़ी में.

: विशेष :
१९६३में गणतंत्र दिवस परेड में मध्यप्रदेश का प्रतिनिधित्व. नृत्य-नाट्य में बचपन से ही गहन अभिरुचि.१९८३ से दूर-दर्शन और आकाशवाणी जलंधर से जुड़ाव. सन २००० तक हिंदी और पंजाबी के तक़रीबन सौ नाटकों, धारावाहिकों व ६ फ़िल्मों में अभिनय.

: सम्मान :
समय-समय पर विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित, पंजाब कला साहित्य अकादमी, श्री कृष्ण कला साहित्य अकादमी, इंदौर, सर्वभाषा संस्कृति समन्वय समिति-कश्मीर, सन् २०१८ में पंजाब कला साहित्य अकादमी द्वारा 'आधा जहान सम्मान', 'अकादमी अवार्ड' और 'विद्यावाचस्पति' सम्मान.

: संप्रति :
देश-विदेश में रहते हुए राष्ट्रीय एवं ई-पत्रिकाओं से जुड़ाव. विदेशी व प्रवासी बच्चों को हिंदी सिखाने एवं भारतीय संस्कृति से पहचान कराने में प्रयत्नशील. कई रचनाएं अंग्रेज़ी, पंजाबी एवं उर्दू में अनूदित.

: प्रकाशित कृतियां :
३ काव्य संग्रह, २ कहानी संग्रह, सुरमई कहानियां--पंजाब सूफी मंच द्वारा उर्दू में प्रकाशित, 'आईना और एक्स'--आत्मकथा (प्रकाशनाधीन), ५० संस्मरण – मातृभारती पर प्रकाशित.

शानी का मन आज किसी भी करवट चैन नहीं पा रहा था. अंभुज एक हफ़्ते के लिए विदेश चले गये थे. और राजू भी आज रात दोस्तों के पास रहने चला गया था. समस्या घिर आयी कि घर में पसरे सन्नाटे को वो किस युक्ति से झेले? तो उसे याद आया कि वह कई बार सोचती थी कि कितने ही काम पड़े हैं करने को, कभी खाली समय मिले तो निबटाए. यह सोचते ही उसने टी. वी. का स्विच ऑफ़ किया तो उसके नीचे की अल्मारी जो काफ़ी समय से बंद पडी थी, उसके भीतर से जैसे खटखटाने की आवाज़ उसे सुनाई दी. मानो इल्तज़ा कर रही हो, 'आज मुझे खुली हवा में सांस लेने का मौक़ा दे दो.' शानी ने झट उसके पल्ले खोल दिये. भीतर ढेरों सार्टिफिकेट्स, स्कूल-कॉलेज़ के ज़माने के एलबंस, सखि-सहेलियों के पत्रों के पुलिंदे रिबन बंधे धूल-धुसरित हुए रखे थे. इस धारणा से कि फ़ुर्सत में कभी इन मोह के धागों को अपने इर्द-गिर्द फिर बांध लिया करेगी. क्या मालूम था कि वक़्त, परिस्थितियां और प्रत्याशाएं इन मोह के धागों का अस्तित्व ही नकार देंगीं. सो बरसों से जीवन की आपाधापी में यह वक़्त कभी आया ही नहीं और आज इतने वर्षों पश्चात उसका मन मचल उठा है कि अब इसे संवार ही ले. जो लोग अविशिष्ट हो चुके हैं, जिनके संबंधों के तार ना

जाने कहां गुम हो चुके हैं — उनके पत्र अंतिम बार पढ़ कर उनके मोह के धागे जो कभी उसके मन को बांधे रखते थे, उनसे सदा के लिए निवृत्ति पा ली जाये. वह देख रही थी कि कुछ के तो परिचय भी यादों की परतों तले दब चुके थे. चेहरे अजनबी और संदर्भ तक विस्मृत थे. स्मृति का धरातल ही मानो बदल चुका था. तब का वक़्त गया सो गया, अब के जीवन ने उस वक़्त पर कोहरे का आवरण डाल दिया था. इतना घनत्व था कि कुछ धुंधला भी नहीं दिख पा रहा था. सो, सुरक्षित रखने जैसा उसमें कुछ बचा ही कहां था? उस विशिष्ट काल के सभी अपने लोग वक़्त की पगडंडियों से गुज़र कर ना जाने कहां-कहां समाए हुए थे अब.

ख़ैर, शानी ने सारी फ़ाइलें, एलबम्स, पेपरों के ढेर- कुछ बंधे हुए तो कुछ बोर्ड की क्लिप में फंसे हुए सब निकाल कर बाहर अपने पलंग पर रखे. कुछ रसीदें और नाटक की स्क्रिप्ट्स भी थीं. उन्हें सामने पा अनुभवों के आवेग कुछ पाने को अधीर हो उठे. कुछ उमड़ता-घुमड़ता अतीत के द्वार से दस्तक देने लगा. कई कलाकार थे साथ में, ना जाने सब कहां-कहां खो गये थे. सबके मध्य आत्मीयता थी, एक स्वच्छंद अपनापन! असल में कलाकार सरसता के धरातल पर जीते हैं. इन्हीं भावनाओं में डूबती-उतराती उसके हाथ अपनी शादी से पूर्व की ज़िपवाली डायरी आ गयी. सबसे पहले वह उसी को खोल कर बैठ गयी. मानो कारू का खजाना हाथ लग गया हो. उसमें कॉलेज़ के ज़माने में पुरस्कार पाती तस्वीरें, एक छोटी–सी आंटोग्राफ़ बुकलेट और कुछ पत्र सहेज कर रखे हुए थे. उन्हें उठाते ही एक पांच बाई सात की फोटो अप्रत्याशित नीचे गिरी उसकी दुखती रग़ से उपजती. जिसे देखते ही उसके चेहरे पे अजीब सी चमक ने आधिपत्य जमा लिया. वह उसे ग़ौर से देख सोचने लगी. जब इसे सात पहरों में क़ैद किया था सबकी नज़रों से बचा कर इस ज़िप में, तब आहों का सर्द मौसम था.

अपराध-बोध तो कभी था ही नहीं, केवल थी भाग्य की चपल चाल. अब वैभव का होना या ना होना जीवन के इस मोड़ पर कोई महत्व नहीं रखता, फिर भी उसने सबसे छिपा कर उसकी तस्वीर क्यों सहेज रखी है. क्या उसे डर लगता है कि अंभुज इसे देख लेगा तो क्या सोचेगा? क्या अभी भी उसके दांपत्य जीवन में दरार पड़ जाने का उसे अंदेशा है? यह भी तो हो सकता है तब उसके मोह के धागों से अभी वो विच्छिन्न नहीं हो पायी थी सो कमज़ोर पड़ कर घर के किसी कोने में जगह दे दी होगी. वह स्वयं ही इसे कभी देख नहीं पायी तो कोई और कैसे देखता. आज जब दिख ही गयी है तो कितना कुछ तालाब की तलहटी से उठकर ऊपरी सतह पर दिखाई देने लग गया है. वह स्वयं से साक्षात्कार करने लगी—

अंभुज के विदेश जाते ही उसने अपने अतीत को कुरेदने का क़दम उठाया. क्या इसीलिए कि वह अपने वर्तमान को चिंदी-चिंदी होता नहीं देखना चाहती थी. मानो इस गोपनीयता को छूने और इसके सान्निध्य में बैठकर इसे दुलारने, मनुहारने के लिए उसे एकांत की आवश्यकता थी. अब कुछ रातें उसकी अपनी हैं, उन पर कोई जवाबदेही नहीं है. विहान का आगमन है कि रैन का बोझलपन क्या फ़र्क पड़ता है? उसके अंतस में उफनता आवेग सीमाएं तय नहीं कर पाया तो वह निश्चिंतता से भावों के आवेग में बहेगी – उतरायेगी. किसी के ख़लल डालने का डर नहीं है, ना ही विचारों के प्रवाह पर बांध बंधने का या उघड जाने का. यह प्रक्रिया है उन स्मृतियों से बाहर आने की जो क़ब्र में दफ़्न हो चुकी थीं और जिनका रिसना एक भावुकता मात्र था.

तस्वीर को उठाते ही शानी का हाथ कांप-सा गया. मानो इसके उद्घघटन से उस पर लांछनों की बौछार होने लगेगी. जबकि अंभुज स्वभाव से ही मस्त है. उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि वो क्या-क्या सहेजती है. पूर्णरूपेण विश्वास से भरा हुआ. फिर, उसका हाथ क्यों कांपा? उसका अपना अंतरतल ही कमतरी के भाव से क्षीण हो चला है. स्पष्ट है कि इस कार्य में औचित्य नहीं है यह अनैतिक है. नहीं तो यदि यह इतना ही निरीह-निरापद होता तो अंभुज के सम्मुख भी किया जा सकता था. वो बात अलग है कि अंभुज बहुत डिमांडिंग है. उसके रहते घर में समय ही कहां होता है कि वह कुछ स्वयं से बंधा भी खोलकर उसमें झांक सके. यूं भी कितना विशिष्ट है यह ख़्याल कि अपनी सत्ता को तो आगत की अंतिम ऊंचाइयों तक तान कर रखना है लेकिन पिछले पहर की धूप के छींटे भी दिखायी ना दें. मानो सवेरा का उद्भव यही वर्तमान है. वैसे ही बैठी वह विचारों के उलझे धागे सुलझाने लगी.

किसी एक के विच्छिन्न हो जाने से जीवन तो नहीं समाप्त हो जाता. वैभव से संबंध बना, वो क्यों टूटा — यह कथानक तो उसके जीवन से जुड़ा है. मंझदार में डोलती नैया को साहिल पर लगाने तब उसका खेवनहार बन अंभुज ही आगे आया था. अपने निश्चल प्रेम से उसने शानी को अपनी अंतरंगता के सूत्र में बांध लिया था. जिस में किसी तरह के छल या असत्य का अस्तित्व नहीं रहता. तो फिर उसने वैभव की तस्वीर क्यों सहेज कर, छिपाकर रखी है? आख़िर क्यों? अपने ख़्यालों के अंधड़ को वह आज रोक नहीं पा रही है. असमर्थता के आलम में वह उद्विग्न हो उठी. व्यतीत से एक दृश्य उसके समक्ष उभरा —

उसका दुपट्टा गुलाब की झाड़ी में फंसने पर वैभव कह उठा था, 'तुम कांटों से ही उलझने चली हो, संभल सको तो संभलो.'

उसके इश्क में दीवानी कहां भांप सकी थी वो उसके इरादे, बल्कि उसके नैनों के मोहपाश में बंधी झट बोल पड़ी थी, 'कांटों में उलझकर ही तो फूल पा सकूंगी ना.'

प्रेम का तंतुजाल बेहद नाजुक और कोमल होता है. विश्वासघात का एक ही झोंका उसे छिन्न-भिन्न कर देता है. वह दो नावों पर सवार होकर दरिया पर चलना चाहता था झूठ, छल और फ़रेब से लिप्त आश्वासन देकर और वह सत्य, निष्ठा और सादगी से उसे रुमानी उपन्यास की पंक्ति जैसा उत्तर दे आल्हादित हो बिन समझे कांटों की उलझन को स्वीकार कर बैठी थी. कहां मिला उसे उन कांटों के मध्य खिला हुआ गुलाब? हां, अलबत्ता अति कष्टदायी थी कांटों की खरोंचें; जिनसे लहू-लुहान होने पर अंभुज ने उसके ज़ख़्मों को अपने प्यार के उत्ताप से सींचा और ता-उम्र के लिए अपने बाहुपाश में गुलाब की कलियों जैसे सहेजकर प्यार की भीनी-भीनी सुगंध से सराबोर कर दिया था. अल्मारी से निकला सारा सामान उसके सम्मुख पलंग पर बिखरा पड़ा था और वह मध्य में बैठी थी तस्वीर लेकर. अचानक उसने तस्वीर को बीच से दो टुकड़ों में फाड़ दिया. एक टुकड़ा उसने अपने दायीं ओर तो दूसरा बायीं ओर रख लिया. फटे टुकड़ों में एक-एक आंख भी बंट गयी थी, जो उसे दोनों ओर से अपने घेरे में बांध रही थीं — और वह शांत, निर्विकार-सी अपनी प्रतिशोधात्मक प्रक्रिया से अंतरतम में उग आए कांटों की चुभन को महसूस कर पा रही थी. इस हरक़त ने उसके होठों पर विजयी मुस्कान ला दी. वह वहीं तकिए पर सिर टिकाकर मुंदी आंखों से अतीत के जंग लगे बंद किवाड़ों को धकेलती भीतर घुसे जा रही थी. कितने ही सोपानों को लांघता, भटकता एक रुआंसा तात्कालीन विशिष्ट उभरने लगा था. जो हृदय के अतल गह्वर में अपनी सत्ता जमाए अभी भी था. अतीत की उद्विगनता का संचार कर पाता कि इससे पूर्व आंधियों का दौर चल पड़ा, जो सभी मूर्त-अमूर्त भावनाओं को संग ले उड़ चला इक अंजाने सफ़र पर जहां चेतना की दीवारें किरकिरा उठीं अनापूर्त! संवेदनाएं आहत हो उठीं.

अपने पार्थिव शरीर को वहीं छोड़ वायु वेग–सी अविरल धार बन बहती हुई बरसों से लंबे अंतराल पश्चात वह एक तिलस्मी यात्रा पर अग्रसर थी. जहां नवीन आवृत्त बने थे जिन्हें उसकी सोच ने बिसरा दिया समझा था. लेकिन यह क्या यहां पार्श्व में दर्द भरा संगीत सुनायी दे रहा था. उसने वैभव को आवाज़ दी. क्षीण स्वर की गूंज वहां व्याप्त रूदन में गुम गयी. उन हवाओं में चीख़ें थीं. सम्मुख काल का प्रतिरूप वैभव सफ़ेद चादर में लिपटा धरती पर निःश्चल पड़ा था. यह देख वह आर्तनाद कर उठी थी. सदियों की छाती में चुभती पीड़ाओं का एहसास लिये वह चेतना में लौटी. उठ कर उसने देखा कि उसका तकिया आंसुओं से भीगा हुआ था. मानो आज उसने वैभव को अंतिम विदाई दी हो. उस अध्याय की समाप्ति की हो. रात का अंतिम पहर था और उसका कमरा बिजली की रोशनी से भरा था. यादों के घेरे से बाहर निकल उसने वैभव की तस्वीर के दोनो टुकड़े दोनों ओर से उठाए. पहले उन आंखों में काले मार्कर से काला रंग भरा फिर उनको चिंदी-चिंदी कर डाला. शायद उन नज़रों को सदा के लिए दफ़न करने के लिए जिन्होंने उसे कभी प्यार से भरमाया था, फिर जी भरकर रुलाया था. अपनी छाती की जलती हुई आग की परछाईं उसे कभी नहीं दिखी थी, पर आज उसकी बुझती राख़ पर वो संतुष्ट थी.

यथार्थ के धरातल पर लौटती वह अपने भीतर घटे हादसे पर चकित हो उठी. अपने विपन्न, अविच्छन्न होते मन को तसल्ली दे वैभव के व्यक्त अनुष्ठान से अब वह सदा के लिए बाहर आ गयी थी. और उसके अंतर्लिप्त मोह के धागों ने अपना स्वरूप बदल लिया था.

४६९ आर, मॉडल टाउन,
जलंधर- १४४००३.
फोन :९६८२६३९६३१

'वो फिर आयेंगे!'

योगेंद्र शर्मा

जन्म :२० जुलाई १९५०,
शिक्षा : एम. ए. (अर्थ.), बी. एससी.
१९८१ से लेखन में सक्रिय. कहानी, व्यंग्य, आलेख, लघुकथा, कविता आदि लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, रेडियो व दूरदर्शन से प्रसारित. तीन उपन्यास, चार कहानी संग्रह, दो लघुकथा संग्रह व एक व्यंग्य संग्रह प्रकाशित.

: विशेष :
उपन्यास रुहेलखंड का गांधी केरल के कालीकट वि. वि. के आर. सुरेंद्रन के शोध प्रबंध में सम्मिलित, एस. जे. जे. टी. विश्व विद्याालय (झुनझुनू) द्वारा रिसर्च निदेशक नियुक्त, लघु पत्रिका तेवरी पक्ष का तीन वर्ष तक सह-संपादन.
भारतीय खाद्य निगम (हल्द्वानी) से गुणवत्ता विभाग के प्रबंधक पद से २०१० से सेवानिवृत्त.

ऐन पोस्ट ऑफ़िस वाले चौराहे पर थी, उसकी दुकान, अब भी है. लाख कहने पर भी जूस के पैसे नहीं लेता था. वह था, सरदार गुरुदीप सिंह, मेरे छोटे साले वारेंद्र उर्फ़ वीरू का यार और पड़ोसी. ''जीजा मुझे मालुम है, कि आपको डायबिटीज है, इसलिए आपके लिए शुगर फ्री शिकंजी बना रहा हूं. ये देखिए पाउडर. और पैसे आपसे कैसे लूं एक तो रिश्ते में जीजा ऊपर से एक दिन आपने मेरी जान बचायी थी. याद है, दिल्ली स्टेशन पर बिताई, वो रात.'' ''हां काके, वो रात कैसे भुला सकता हूं उस रात वे सोचकर, रोंगटे खड़े हो जाते हैं. बचाने वाला, तो सिरजनहार है. वही करतार है, हम तुम तो फकत एक जरिया हैं. तूने मुझे स्टेशन उस रात ग्यारह बजे पुकारा और मैंने दूसरे दिन तुझे सही सलामत तेरे घर पहुंचा दिया. आख़िर, मेरे छोटे साले का याडी था, तू सारी खुदाई एक तरफ़, जोरू का भाई एक तरफ़. सुन्या है कि नही काके.'' ''सुन्या है जीजू सुन्या है. सुन्या तो ये भी है, जीजू कि तुसी कहानी, शहानी लिख दे... पेये हो हमारी भी कहानी लिख द्यो. वो दिल्ली स्टेशन की रात. वो लाशें, वो दहशत, वो पानी में ज़हर वाली बात.''

नहीं भुला सकता गुरदीपे... नहीं भुला सकता. काका तो लिख रहा हूं तीस बरस पुरानी, तुम्हारी कहानी.

जी हां... बात इकतीस अक्टूबर ८४ की है. दोपहर में ख़बर जंगल की आग-सी फैल गयी थी, तरह-तरह की अफवाहों ने उस आग में तेज़ हवा-सा काम किया था. ख़बर थी, कि इंदिरा जी की हत्या उनके ही बॉडी-गार्ड ने कर दी थी. अफ़वाहें भर हवा में थीं, कि सिखों ने जगह-जगह मिठाइयां बांटी है. इस ख़ुशी में कोई जलजला आयेगा, यह पूर्वा भास तो नही था, परंतु एक संशय–सा उछल कूद मचाये था, कि अब क्या होगा?

दीदी का गाज़ियाबाद लौटना ज़रूरी था, किन्ही घरेलू कारणों से. माहौल को देखते हुए, मैं साथ हो लिया था. क़रीब चार बजे हम अलीगढ़

बस स्टैंड से चले थे. हल्की गुलाबी ठंड शुरू हो चुकी थी, इक्का–दुक्का मर्द आधी बांह के स्वेटर में नज़र आ रहा था. मई-जून के आतंकी सूर्यदेव, अब अहिंसक गांधीवादी हो चले थे, धूप उनके विनम्र शब्दों-सी हो चली थी. अंधेरों के साये लंबे होने लगे थे.

गभाना पार करते ही, दस-पंद्रह लोगों की एक चाकू-हॉकी वाली भीड़, बस रोककर, उसमें जबरन आ घुसी थी. भीड़ का मुखिया धमकी भरे स्वर में बोल रहा था, ''है कोई बारह-बज्जू, इस बस में? है, कोई सरदार? आज हम करेंगे, उसका उद्धार.'' दो लड़कों ने पूरी बस भलीभांति देखी. सीटों के नीचे झुककर भी. ''नहीं है, कोई शि-का-र.''

क़रीब दस किलोमीटर चले, तो फिर उसी प्रकार की आक्रामक हथियार बंद भीड़ ने बस को रोका. भीड़ के मुखिया ने सिर पर दायां हाथ गोल-गोल घुमा कर, जूड़े का इशारा किया, ''है कोई...? है कोई सरदार? उसे पहुंचाना है, नरक के द्वार.'' कंडक्टर ने घुसते ही कह दिया था, ''कोई नहीं है, भइया,'' परंतु भीड़ का तलाशी अभियान जारी रहा. तब तक अंधेरा हो चुका है. दो लड़कों ने टार्च से हर सीट के ऊपर–नीचे देखा.

गाज़ियाबाद पहुंचते-पहुंचते नौ बज गये थे. हाकियों और चाकुओं और पिस्तौलों से लैस भीड़ ने बस को लगभग सात जगह रोका. हर बार कंडक्टर ने कहा, कि कोई नहीं है. परंतु हर भीड़ ने पूरी गाड़ी को भली प्रकार जांचा, सीटों के नीचे झुक-झुक कर देखा.

गाज़ियाबाद शहर में, इस समय दंगाइयों का राज था. आकाश में काला धुआं उठ रहा था, शायद कुछ दुकानें और घर जलाये गये थे. सामने एक जला स्कूटर खड़ा था, पास ही एक लकड़ी के खोखे के पीछे कोई ज़िंदा जल रहा था. जलन वाले की कराहें, कुछ पल सुनायी दीं, ड्राइवर कुछ पल रुका रहा, फिर उसने गाड़ी दौड़ा दी. बस स्टैंड के पास आबादी क्षेत्र में मज़बूरन बस धीमी करनी पड़ी थी. बस स्टैंड के पास एक तिपहिया वाहन जल रहा था, आग टायरों और सीटों तक थी, टैंक पर पहुंचते ही यह बम की तरह फटेगा. काला धुआं यहां भी आसमान छू रहा था. सवारी उतारने के उद्देश्य से पल भर को बस रुकी. पास की एक गली से, ''मारो-मारो... पकड़ो बचइओ रे... वाहे गुरू... बजइयो रे...''

''हाय... रब्बा...'' के स्वर आ रहे थे. यहां फैली अफरा-तफरी को देखकर ड्राइवर ने बस फिर स्टार्ट कर दी थी. ''माहौल सही नहीं है. सवारियां, दिल्ली किसी सुरक्षित जगह उतारूंगा. सुन लो सब. गाज़ियाबाद वाले बैठे रहो, उतरना मत.'' बस की दो सवारियां बात कर रही थीं, ''दिल्ली, गाज़ियाबाद में तो सुना है, कि बंदे को रोका, उसके स्कूटर से पैट्रोल निकालकर, उसी पर छिड़का और आग लगा दी. बड़ी दरिंदगी हो रही है.''

''अरे तो इन सिखों की भी तो मति मारी गयी है. अरे इंदिरा जी मर गयी, तो मिठाई बांटने की क्या ज़रूरत थी?''

''अरे क्या पता कहां बटी...? कब बटी? कितनी बात सच, कितनी झूठ?''

एक यात्री कंडक्टर से कह रहा था, ''वो आदमी ज़िंदा जल रहा था, इंसानियत के नाते, गाड़ी रोक कर उसे अस्पताल में भर्ती करा देते. इंसानियत की खातिर. ''भाई मेरे, मैं और मेरा ड्राइवर भाई, साथ में तीस-चालीस जान लेकर चलते हैं. साथ में डीज़ल का भरा टैंक. ऐसे लोग बारदात करके आस-पास छुप जाते हैं, या जाते-जाते लौट भी पड़ते हैं. दंगों में हर आदमी अपनी सेफ़्टी ख़ुद करता है. दंगाई आधा नहीं, पूरा पागल होता है, उसका क्या भरोसा, कब क्या कर बैठे? पुलिस का क्या है, वो घायल को भर्ती करने वाले के ही पीछे पड़ जाती है. तुम क्या लाये? तुम्हीं ने ठोंक दिया होगा, वग़ैरह न जाने कितने सवाल?''

कुछ दुकानों का सामान निकला पड़ा था, कुछ से धुआं उठ रहा था. बस ऐसे इलाक़े से गुज़र रही थी, जहां से दीदी का घर, पास पड़ता था. मैंने कंडक्टर से उतारने को कहा तो बोला, ''उतारने को उतार दूं, मेरा क्या जाता है, और ज़िम्मेदारी ही कम होगी, लेकिन माहौल देख रहे हैं, आप? और आपके साथ तो लेडीज सवारी भी हैं, बहन जी ने सलवार-कुर्ता भी पहना हुआ है. इस समय, पता है, दंगाइयों को हर औरत सिखनी दिखायी दे रही होंगी.'' दीदी यह सुनकर सहम गयी थीं, भांजे अमित को कस कर अपने से चिपटा लिया था.

बगल में बैठा यात्री बोला, ''बहुत से सिख मारे गये, औरतों की इज़्ज़त लुटी, दुकानें लुटीं, और जलीं, बहुत बड़ी साजिश है. इकत्तर का बदला ले रहा है, पाकिस्तान, बंग्लादेश तरह ही कश्मीर या पंजाब, हिंदुस्तान से अलग हो जाय.''

''हां, इंदिरा जी ने भिंडरावाले को पैदा करके आग में

घी झोंक दिया. एक और भस्मापुर पैदा कर लिया, उन्होंने.''

क़रीब साढ़े नौ बजे पुरानी दिल्ली स्टेशन पहुंच गयी थी, बस. कंडक्टर ने कहा, ''देखिए स्टेशन पर पुलिस का चौकस इंतज़ाम है. यहां आप लोग रात गुज़ारो, सुबह अपने-अपने ठिकानों पर सुरक्षित पहुंच जाना. थक गये यार, हम भी यहां खाना-पीना करेंगे, देखेंगे कि बस डिपो ले जाय, या यहीं खड़ी कर दें.''

स्टेशन, ख़ास तौर पर सारे प्लेटफॉर्म लुटे-पिटे, घायल, अधमरे यात्रियों से अटा पड़ा था. किसी ने होल्डाल बिछाया था, तो किसी ने दरी-चादर, लेकिन सब सटे हुए. इतने सटे हुए कि बीच से निकलना भारी था.

स्लीपर क्लास, फ़र्स्ट क्लास, फ़र्स्ट क्लास एसी, सबके सब यात्रियों से अटे हुए. यहां तक कि उनके लैट्रीन-बाथरूम के आगे भी बिस्तर बिछे हुए थे. दरअसल, दहशत के मारे जो भी यात्री ट्रेनों से उतरे थे, शहर में न घुस कर प्लेटफ़ॉर्म पर ही रुक गये थे. वैसे भी शहर में कर्फ़्यू लग गया था.

चाय पीने की इच्छा हो रही थी, दीदी को सिरदर्द भी था. बड़ी मेहनत के बाद फ़र्स्ट क्लास बेटिंग रूम में दोनों अदद रखने लायक जगह मिली. विचार बना कि ब्रीड दोनों सामानों पर बैठे-बैठे रात काट दी जायेगी. अमित को सामान पर बैठाकर, हम दोनों चाय की लाइन में लग गये थे. ये लंबी लाइन थी, दूध ख़त्म हो गया था. चाय मिली वह भी बिना दूध वाली, वो भी पांच रुपये की एक. फिर भी चाय पीकर कुछ राहत–सी लगी थी, अब हमें खाने की थाली के लिए लाइन में लगना था. लाइन चाय की लाइन से भी दुगुनी लंबी थी. नंबर आने तक पता चला, कि चावल ख़त्म हो गया है. यह सोचकर संतोष कर रहे थे, कि दो थालियों में, तीन जनें काम चला लेंगे. रात के क़रीब सवा ग्यारह बज रहे थे. हम थालियां (पैक्ड) लेकर लौट रहे थे, तभी सामान वाली ट्राली पर एक लाश आ रही थी. दाढ़ी-मूंछें ख़ून से लथपथ एकाकार होती हुई, सामने के दांत टूटे हुए, नीली जींस और सफ़ेद टी-शर्ट जो लहू से लाल हो चुके थे, बाल नीचे लटके हुए, चेहरे पर मक्खियां, पैरों से जूते ग़ायब थे, पगड़ी खुली हुई कंधे पर लटक रही थी. लाश कभी एक सजीले सिख युवक ही रही होगी.

हम इस दर्दनाक दृश्य से उबर भी नही पाये थे, कि पीछे से किसी ने पुकारा, ''जीजा... जीजा जा..'' गोरा रंग, काली आंखें, मिली हुई भोंहें, क़रीब पांच फुट क़द का आठ-नौ वर्षीय बालक, फटे कपड़ों, शरीर पर अंग-प्रत्यंग पर लगी चोटों-खरोंचों के साथ, एक दीन-हीन दृष्टि से मुझे देख रहा था. यहां जीजा कहने वाला कौन आ गया, संशयग्रस्त था, मन. तभी उसने बिखरे हुए बालों को एक ओर सरका कर चेहरा मेरी ओर किया. ''मैं गुरुदीप, वीरू के बर्थडे में आया था.'' फिर अकस्मात डर से उसकी आंखें फैल गयी थीं, ''बो फेर आवोगे... मम्मी पाछ जाऊंगा... मम्मी पास... मैंनू बचा लो जीजा... मैंनू...'' और वह जोर-जोर से रो रहा था.

लड़का बदतर हालत में था, फिर भी पहचान में आ रहा था. यह मेरे छोटे साले साहब, वीरेंद्र उर्फ वीरू का दोस्त व पड़ोसी था. लड़का बहुत शैतान व बातूनी था. शोले के गब्बर सिंह की 'कितने आदमी थे' की अच्छी चटपटी मिमिक्री की थी, उसने. उसे थोड़ा सहज करने के उद्देश्य से, मैंने उसे पुचकारा था, पिछली याद दिलाते हुए गब्बर सिंह की ही तर्ज पर उससे पछा था, ''अरे ओ सांभा, कितने आदमी थे?'' इस प्रश्न पर वह रोना भूल गया, आंखें भय से फैल गयीं, ''वो फिर आवोंगे, वो फिर... मम्मी पाछ जाऊंगा, बेब्बे पास जाऊंगा. मैंनू बचा लो जीजा.'' कह कर मेरे पैरों से लिपट कर रोने लगा था.

दंगाई तो पशु होते हैं, आज कल वह सिखों के पीछे हैं. हवन करने में कहीं अपने हाथ न जल जाय. इसे घर पहुंचाने में कहीं मैं भी किसी हिंसक भीड़ का शिकार न हो जाऊं. मैं संशयग्रस्त था, दीदी के बच्चे छोटे व शैतान थे, सो वह एक छोटा किट बॉक्स रखती थी, जिसमें पट्टी, रुई, छोटी कैंची, टेप और एक एंटीसैप्टिक मल्हम रखती थी. ''दीदी इसकी चोटों पर जरा थोड़ा सा मल्हम लगा देना, मैं अभी इसके लिए एक थाली लेकर आता हूं.''

पैक्ड थाली लेकर लौटा तो, सामाने गाड़ी पर एक और सिख की लाश जा रही थी. तहमद पहने अधेड़ उम्र का, खिचड़ी हो रहे सिर और दाढ़ी के बाल लहू से सने हुए, एकाकार होते हुए. एक पैर में जूती, पगड़ी खुली हुई, पेट तक लटक रही थी और चेहरे पर मक्खियां भिनभिना रही थीं. लौट कर आया तो वह उनींदा–सा था. उसके शरीर पर आठ-दस जगह थोड़ा मल्हम लगा था. मुझे देखकर भयभीत हो कहने लगा था ''जीजा बो फेर आवेंगे.'' मैंने पूछा कौन आवेगा? तो बोला ''डाकू गब्बर पापा को मारा ऊपर से नीचे फेंक दिया.

मम्मी पास जाऊंगा... बेबे पास जाऊंगा.''

वह दीदी में अपनी मां ढूंढ रहा था, ''पुत्तर इत्थे कोई नहीं आवेगा फिकर ना कर. अब तू खाना खा ले, और देख भइया सोया है, तू भी खाना खा के सो जा.'' तो फिर चार जनों का, तीन थाली से पेट भर लिया था. खाने के बाद वह बैठा-बैठा ऊंघने लगा था. दीदी ने कहा देख भइया, जमाना ख़राब है किसी के फटे में कोई टांग नहीं अड़ाता. लेकिन अब तूने हां कर ही दी है, तो पहले इसे इसके घर पहुंचा दे. और हां छोटी कैंची मेरी किट में है, इसका हुलिया बदल दे. कोई पूछे तो बोल देना कि मनोज नाम है, इसका.'' दीदी ने चादर तानकर ओटकर दी थी, अधिकतर लोग ऊंघ रहे थे. सच्चे बादशाह से माफ़ी मांगते हुए, मैंने गुरुदीप को मनोज बनाया दिया था.

आखिर थके-हारे गुरुदीप ने दीदी में अपनी मां ढूंढ ली थी. वह बैठी ऊंघ रही थी, बायीं जांघ पर भांजा अमित तो दायीं जांघ पर सरदार गुरुदीप सिंह सिर टिकाये साधिकार सो रहे थे. मैं सोच रहा था, हर युवती में एक मां छिपी होती है, बाप के मुकाबले एक मां का दिल ज़्यादा बड़ा होता है. मुहब्बत से, ममता से लबरेज. मल्हम लगने से शायद गुरुदीप को राहत मिली थी. दीदी ने उसे एक पेन किलर गोली भी दे दी थी.

पीछे एक सरदार जी बुज़ुर्ग थे, क़द छह फुट से अधिक था, शरीर जगह से चुटैल था. उनके पैर मेरे नितंबों का छू रहे थे. ज़्यादातर लोग बैठे-बैठे ऊंघ रहे थे. किसी बुज़ुर्ग मुसीबतजदा को सोते से जगाना पाप है, यह सोचकर, मैं ही आगे खिसक गया था. दायीं ओर एक बूढ़ी महिला बेचैनी में बड़बड़ा रही थी. दोनों हाथ उठाकर किसी को कोस रही थी, बाल बिखरे हुए, आंखें लाल अंगारों जैसी, पंजाबी में, 'खसमानुखाने और मरजाणे' जैसे शब्द ही समझ में आ रहे थे. बायीं ओर बिखरे बालों वाली, एक गोरी चिट्टी युवती, अपनी लाल कुर्ती उघाड़कर, अपने लाल को बिंदास स्तन-पान करा रही थी. बच्चा तंदुरुस्त था, मां के बड़े-बड़े स्तनों में से एक को पी रहा था, दूसरे से खेल रहा था. विचार जनमा क्या इस समय वह किसी सम्राट या शंहशाह से कम है, क्या? विचार यह भी आया कि पंजाब में बड़े पुत्र को गुरू को अर्पण कर, सिख बना दिया जाता था. अब भी सिखों और हिंदुओं में रोटी और बेटी का संबंध है. स्वप्न में भी कोई सोच सकता था, कि हिंदू, सिखों के ख़ून के प्यासे हो जायेंगे. बहुत बड़ी साजिश है, जिसने अनहोनी को होनी बना दिया. कहते हैं, गुरू ग्रंथ साहब में लगभग सात सौ बार हरि और हर शब्दों का प्रयोग हुआ है.

रात डेढ़ बजे स्टेशन के प्रसारण केंद्र से घोषणा हुई, ''यात्रीगण कृपया ध्यान दें. हमें सूचना प्राप्त हुई है, कि स्टेशन की पानी की टंकी में किसी ने ज़हर मिला दिया है. पानी के परीक्षण की व्यवस्था की जा रही है. आपसे अनुरोध है, कि जब तक पानी पीने योग्य घोषित न हो जाय, तब तक यहां के पानी का प्रयोग न करें. कृपया हमारी अगली घोषणा की प्रतीक्षा करें.

एक अनजाने से भय का कोहरा छा गया था. जो पानी में जहर घोल सकते हैं, वह वातावरण में भी ज़हर घोल सकते हैं. क्या पता किसी प्लेटफॉर्म या प्रतीक्षालय में कोई बम फूट पड़े. वह बम तथाकथित इस्लामिक भले हो, लेकिन बख्शेगा न हिंदू को, न मुसलमान को. मैं बैठा सोच रहा था कि हमारे साम्राज्य का एक छोटा–सा तबका है, जो इस अवसर की तलाश में रहता है, किसी बहाने लोगों की भावनाओं में पेट्रोल डाल कर, उन्हें भड़का कर, अफरा-तफरी की स्थिति बने, तो कुछ दुकान और घर लूटने को मिलें, सड़कों को रक्त से नहलाया जा सके, किसी बहाने से ही सही, औरतों का बलात्कार करने को मिले. ऐसे लोग प्रायः मुखौटे लगा लेते हैं, कभी हिंदुत्व का, तो कभी इस्लाम का, आज वह इंदिरा-प्रेमी व देशप्रेमी का मुखौटा लगाये हैं.

पानी में ज़हर की घोषणा के समय प्यास नहीं लग रही थी. आज तो नवंबर का पहला दिन था, पेट भरा था, सुबह होने को थी, फिर भी धीरे-धीरे ऐसा प्रतीत होने लगा, जैसे प्यास लग रही है. पास बैठी दीदी ने अपनी बोतल से शायद तीन घूंट पानी पिया था. मैंने भी उनसे लेकर, तीन-चार घूंट पानी पिया था. बोतल एक चौथाई बच गयी थीं, वर्जना में भी अजब शक्ति होती है. वह प्यास हमसे यही कह रही थी. मेरे पास थोड़ी भुनी सौंफ थी, वह खायी. दीदी को भी दी. थोड़ी देर बाद दीदी के पास से, दो टॉफ़ी लेकर, हम दोनों ने, एक-एक टॉफ़ी खायी. गले में जैसे कैक्टस उग आया था, रेगिस्तान की प्यास थी, जिसका कोई ओर-छोर नहीं था. लाल कुर्ती वाली युवती दीदी से पूछ रही थी, ''पाण्णी हैगा भैंड जी?'' दीदी ने खाली बोतल दिखला दी थी. युवती लाल कुर्ती उघाड़ कर बच्चे को फिर स्तनपान कराने लगी थी, शायद वह चाहती थी, कि इस कठिन घड़ी में बच्चा रोये नहीं, सोता रहे.

क़रीब साढ़े चार बजे प्रसारण तंत्र से घोषणा हुई ''यात्रीगण कृपया ध्यान दें. स्टेशन के पानी का परीक्षण हो चुका है. पानी पीने के योग्य है. आप पानी का प्रयोग कर सकते हैं. यात्रियों की असुविधा के लिए हमें खेद है.'' अमित और गुरुदीप इस दौरान गहरी नींद सोते रहे. घोषणा के बाद हुए शोर-शराबे से गुरुदीप जग गया था, ''जीजा बो फेर आवेंगे. जीजा, मम्मी पास जाना, बेबे पास जाना है.'' ''सो जा पुत्तर कोई नहीं आवेगा.'' दीदी ने कहा और वह सो गया. फिर पहला काम मैंने यह किया, कि दीदी की पानी की बोतल भरी. रेलवे के नल पर नवंबर की पहली तारीख़ की सुबह ख़ासी भीड़ थी. मुझे पहली बार अनुभव हुआ कि वर्जना में कितनी शक्ति है.

सुबह क़रीब सात बजे गुरुदीप उठा, तो सिर पर हाथ फिरा कर मेरी ओर प्रश्नवाचक दृष्टि की. मैंने हौले से उसके कान में कहा, ''तेरी हिफ़ाजत वास्ते, तेरे केश काट डाले, और कड़ा मेरे बैग में है. घर के रास्ते में तेरा नाम, मनोज शर्मा है, याद रखना.''

दिल्ली-बिजनौर के रास्ते में भी दो जगह भीड़ ने बस रोकी परंतु पहले जैसी आक्रामकता नहीं थी. शायद पुलिस सक्रिय हो चुकी थी. फिर गुरुदीप का हुलिया बदला होने के कारण, वह सब प्रकार से सुरक्षित रहा. हां, जब दो बार भीड़ घुसी तो ज़रूर उसने मेरे हाथ जकड़ लिये थे. गुरुदीप घर पहुंच कर मां से लिपट कर रोता रहा. रोना थमा, तो उसने कहा, ''मम्मी वो फिर आयेंगे. मम्मी... पापा को उन्होंने मारा... मार के गाड़ी के नीचे फेंक दिया. वो डाकू... वो मम्मी... वो कै रए थे, कि तुमने इंदिरा को मारा... मम्मी, पापा... तो मेरे नाल अमृतसर गये थे, उन्होंने इंदिरा को कब मारा? मम्मी ... मैं सीट के नीचे छिप गया सी...'' फिर गुरुदीप बेबे बेबे से लिपटकर (दादी) लिपट गया ''बेबे... पापा को...'' और वह रोता रहा. मैंने बेबे से अपने गुनाह की माफ़ी मांगी, ''बेबे इसकी हिफ़ाजत के वास्ते, केश काटने पड़े, ये इसका कड़ा है. ''कोई गल नहीं पुत्तर... तेरा शुक्रिया जिउदां रह पुत्तर...''

गुरुदीप के दादा गुरूदयाल सिंह अपने बेटे की लाश की शिनाख्त के लिए जा रहे थे. दरअसल, लाश की जेब से दुकान का एक वाउचर मिला था. गुमसुम थे, आंखों के आंसू सूख गये थे. बाप के कंधे पर बेटे का जनाजा, दुनिया का सबसे भारी बोझ होता है, शायद उस बोझ को उठाने की ताकत जुटा रहे थे. थोड़ी देर गुरुदीप को भी सीने से लगाये खड़े रहे. मेरे कंधे पर हाथ रखा, कुछ बोले नहीं. उनके छोटे भाई गुरूनाम सिंह ने मुझसे तीन सवाल किये थे, जो मुझे आज भी याद हैं. पहला, एक सिख ने गुनाह किया, तो क्या सज़ा हर सिख को दोगे? दूसरा, तुम्हारे गांधी को एक ब्राह्मण ने मारा तो कितने ब्राह्मण मारे तुमने? तीसरा, ये भिड़रावाले किसका पुत्तर था?

द्वारा श्री अनिल कुमार कुलदीप,
८६, खजियान,
बिजनौर- २४६७०१ (उ. प्र.)

लघुकथा

विरासत

शुभम वैष्णव

चुनाव के दिन नज़दीक आ गये थे सभी राजनीतिक दल टिकट बंटवारे पर मंथन कर रहे थे.

मुझे तो ख़बर लगी है कि इस बार आपको टिकट नहीं मिलेगा नेताजी से उनके ही दल के एक समर्थक ने कहा.

वैसे भी हमने तो अपनी आधी ज़िंदगी सत्ता सुख भोगते हुए बिता दी अब तो बस बेटे की चिंता है, नेता जी ने अपने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा.

कहीं आपका इरादा अपने बेटे को टिकट दिलवाने का तो नहीं है समर्थक ने धीरे से कहा.

कोशिश तो यही कर रहे हैं, जैसे–तैसे रुपए ले देकर टिकट का जुगाड़ हो जाए, वैसे भी कोई ना कोई दल टिकट तो दे ही देगा. वैसे भी हमारी जाति में हमारा ही तो प्रभुत्व है अगर अपनी पार्टी टिकट नहीं देगी तो हम पार्टी ही बदल लेंगे. आख़िरकार अपनी राजनीति की विरासत अपने बेटे के हाथों में ही तो सौंपनी है, सोचता हूं उसकी ज़िंदगी भी सेट कर दूं जीवनभर आराम से बैठा–बैठा खाएगा. वैसे भी हमारी तो उम्र हो चली है अब तो उसके दिन हैं, अगर बाप की विरासत बेटा नहीं संभालेगा तो कौन संभालेगा, नेताजी ने हंसते हुए कहा.

११, हम्मीर नगर- २,
सवाई माधोपुर- ३२२००१ (राज.).
मो. : ८०५८११९७४२.

काली लड़की

काव्या कटारे

जन्म : ५ नवंबर २००७
शिक्षा : आठवीं कक्षा में अध्ययनरत
: प्रकाशन :
प्लूटो. राष्ट्रीय बाल रंग म. प्र. स्कूल शिक्षा विभाग आदि.
: विशेष :
कोरोना काल में कई प्रतिष्ठित मंचों से लाईव कार्यक्रम.
: रुचियां :
कविता, पेंटिंग, मेंहदी कला, पठन पाठन.

कार तेज़ी से हवा को चीरते हुए आगे बढ़े जा रही थी. रात के सन्नाटे में रास्ते में दूर-दूर तक कोई भी नहीं दिख रहा था. लंबी दूरी तय करने के बाद भी हम अभी तक हमारी मंज़िल तक नहीं पहुंचे थे. मैं गाड़ी की खिड़की खोल देख रही थी निद्रा में लीन हरे-भरे ऊंचे-ऊंचे वृक्षों को. उन्हें देख एक अजीब-सी शांति का अनुभव हो रहा था. हवा मेरे गालों को चूम आहिस्ता से आगे बढ़ जाती तो कभी मेरी जुल्फ़ों को बिखेर देती. चांद भी इस सुंदर रात का मजा ले रहा था. और बह रहा था. इस चंचल हवा के साथ कीड़ों-मकोड़ों का मधुर संगीत मानो लोरी बन कर सुला रहा हो इस घने जंगल को. मैं इस शांति में गुम हो चुकी थी कि अचानक मुझे शहर का शोरगुल सुनाई दिया. आगे देखा तो पाया कि हम शहर में प्रवेश कर चुके थे. शहर में प्रवेश कर मुझे एहसास हुआ कि हम चारों ओर प्रकाश फैलाने के चक्कर में अंधकार की ख़ूबसूरती को नष्ट कर रहे हैं. मेरे मन की शांति खो गयी और मैं गहरे विचारों में डूब गयी कि तभी मुझे मां ने आवाज़ दी, 'चलो रूही. नीचे नहीं उतरना क्या?' मुझे ऐसा जैसे मेरी नींद टूट गयी हो. मैं विचार मुद्रा से बाहर आयी और देखा कि सामने मैरिज़ हॉल था. दोपहर से रात तक का सफ़र तय करने के बाद आख़िरकार हमारे सामने हमारी मंज़िल थी. मैं फ़ौरन ही कार से उतरी. लंबे समय तक कार में बैठे रहने के कारण मेरे पैर अकड़ से गये थे पर जैसे ही मैंने मैरिज़ हॉल को देखा तो हक्की-बक्की रह गयी. फूलों और लाइटों से सजा यह मैरिज़ हॉल बहुत ही ख़ूबसूरत लग रहा था. बिल्कुल वैसा जैसा परियों की कहानियों में परियों का घर होता है. वहां पहुंच कर मुझे बहुत ख़ुशी हो रही थी इसलिए नहीं कि यह मेरी दीदी की शादी थी बल्कि इसलिए भी क्योंकि दोपहर से पेट में कबड्डी खेलने वाले चूहों को शांति मिलने वाली थी. मां ने बताया था कि जो दुल्हन है वह उनके बड़े ताऊजी की सबसे बड़ी लड़की की लड़की है इसलिए वह रिश्ते में मेरी दीदी है. जैसे ही मैं अंदर शादी के

हॉल में पहुंची तो एक पल के लिए तो ऐसा लगा जैसे मैं किसी मेले में पहुंच गयी हूं. इतनी भीड़ तो कुंभ के मेले में भी नहीं पड़ती. मैं खड़ी-खड़ी सोच ही रही थी कि तभी मेरा हाथ पकड़ मां मुझे होटल के रूम में ले गयी. वहां उन्होंने मुझे मुंह-हाथ धोने के लिए बाथरूम में भेज दिया. जैसे ही मैं बाहर आयी तो देखा कि बिस्तर पर मेरा लहंगा रखा था. काले रंग का चमचमता हुआ लहंगा जिसमें सफ़ेद रंग के गुलाब लगे थे बेहद ही प्यारा लग रहा था. मेरी नज़रें उस पर से हट ही नहीं रही थीं. मैंने जल्दी से उसे पहन लिया और बढ़िया-सी चोटी बनाने लगी. मैंने अपनी पसंदीदा चोटी बनायी. तब तक मां भी तैयार हो चुकी थी. हम दोनों जल्दी से नीचे हॉल में पहुंचे. मां सभी रिश्तेदारों से मिलने लगीं. नाना, नानी, मामा, मामी सभी वहां पर मौजूद थे पर मेरा ध्यान आकर्षित तो केवल कोने में लगा फुलकी का स्टॉल ही कर रहा था. कि तभी एक आंटी आयी और मेरे गाल खींच कर कहने लगी, 'अरे! रूही इतनी बड़ी हो गयी. वैसे तुझसे ज़्यादा तो तेरा काला लहंगा ही चमक रहा है.' यह कहकर वे आंटी जोर-जोर से हंसने लगीं. मुझे उनकी बात बहुत बुरी लगी और मैं मां से खाना खाने का बहाना बना ऊपर कमरे में आ गयी और रोने लगी. मेरे आंसुओं की धारा रुकने का नाम नहीं ले रही थी. मेरे मन में उनकी वह बात घूमने लगी. क्यों हूं मैं इतनी काली? क्यों सब लोग मुझे हमेशा ताने सुनाते रहते हैं? क्यों मेरी वजह से मेरी मां, मेरे पिता को सबके सामने शर्मिंदा होना पड़ता है? क्या यह सब मेरी ग़लती है? मुझे अच्छी तरह याद है कि जब वह मेरा मेरे नये स्कूल में पहला दिन था तो मैं कितना ख़ुश थी. सबेरे जल्दी उठकर अपना बस्ता लगा के मैं बेसब्री से स्कूल जाने का इंतज़ार कर रही थी. कितना उत्साहित थी मैं नये दोस्त बनाने को, अपनी नयी कक्षा अध्यापिका से मिलने को, अपनी नयी शुरुआत करने को, पर सब हमारी इच्छा अनुसार नहीं होता. मेरे रंग के कारण किसी ने भी मुझसे दोस्ती नहीं की. कितने अच्छे से मैंने उनसे बात की थी. दोस्ती तो दूर की बात मुझे जिस लड़की के साथ बैठने को बोला था वह लड़की तो मुझसे बात तक नहीं करना चाहती थी. क्या कसूर था मेरा? मैं काली हूं इसलिए आज तक मुझे इन परेशानियों से जूझना पड़ता है. क्लास की गोरी लड़कियां मुझे अफ्रीका से आयी हुई लड़की कहकर चिढ़ाती हैं. मुझे यह सब बहुत बुरा लगता था लेकिन मैं करती भी तो क्या करती? मेरी कक्षा अध्यापिका ने तो ख़ुद स्कूल के पहले दिन जब मेरा परिचय क्लास को देने के लिए बुलाया था तो मुझे 'काली लड़की' कह कर संबोधित किया था. मुझे पता है कि उन्हें मेरा नाम मालूम ना था लेकिन उस दिन बेटा बच्ची यह शब्द कहां चले गये थे. हां, मैं काली हूं. तो क्या मुझे जीना छोड़ देना चाहिए? उस दिन पूरी कक्षा के सामने मेरी आंखें नम हो गयी थीं. मेरे अंदर जो तूफ़ान उठ रहा था उसे तो मैंने दबा लिया पर अपनी आंखो का पानी ना रोक पायी. मुझे अभी भी याद है कई साल मैंने ऐसे ही अकेले रहकर बिताए थे. लंच के समय सब अपनी सहेलियों के पास लंच करने जाया करते थे पर मैं अकेले ही खाया करती थी. ना कोई मेरे पास आता था, ना मैं किसी के पास जाती थी. क्योंकि मुझे अच्छी तरह पता है कि मेरी कक्षा की लड़कियां मुझे पसंद नहीं करती थीं. दोस्तों से बातें करना, उनके साथ मस्ती करना, खेलना-कूदना इनमें से कुछ भी मैंने आज तक अनुभव ना किया. लंच, खेल और संगीत के पीरियड तो मुझे काल से लगते क्योंकि इन पीरियडों की शोभा तो दोस्त होते हैं. अगर दोस्त हैं तो यह समय सबसे अच्छा है और अगर नहीं है तो यह काल से कम नहीं है. मुझे तो इस सब की आदत हो गयी थी. इसका मतलब यह तो नहीं कि मेरा दिल नहीं दुखता. मुझे भी बहुत बुरा लगता था पर मैं करती भी तो क्या करती इसलिए मैंने लोगों की बातों पर ध्यान देना बंद कर दिया. आख़िर कब तक मैं ऐसे ही दूसरों की बातों को दिल से लगा कर रोती रहूंगी, पर हद तो तब हो गयी जब मां ने भी मेरे साथ ऐसा ही किया. पहले कभी भी अगर कोई मुझसे ऐसे कहता जैसे आज आंटी ने मुझसे कहा तो मैं उनसे एक बात ज़रूर कहती, 'मेरी बेटी जैसी भी है मुझे पसंद है.' यह बात तो मुझे भी पता है कि मेरा रंग तो उन्हें भी पसंद नहीं है पर मुझे इस बात की बहुत ख़ुशी होती थी कि कोई मेरा साथ दे या ना दे पर मेरी मां हमेशा मेरे साथ खड़ी रहेगी. भले ही झूठ, पर कहती तो थी. इससे सामने वाले पर असर भी होता था. वह आगे से दोबारा मेरे बारे में कम से कम मेरे सामने तो मेरे रंग के कारण मुझे ताने नहीं मारता था पर आज जब उन आंटी ने मेरे बारे में इतना बुरा कहा तब मां ने उनसे कुछ भी नहीं कहा. मां चुपचाप वहीं पर खड़ी रही. जितना दुख मुझे उन आंटी की बात का ना लगा उतना मुझे मेरी मां की चुप्पी का लगा. ख़ैर यह पहली बार न था. पिछले दो-तीन बार से मां

चुप ही है. पर क्यों? कल जब मैं और मां शादी में पहनने के लिए कपड़े ख़रीदने जा रहे थे तब हमें एक आंटी मिली थीं. उनका रंग भी सांवला था पर मेरे रंग से तो अच्छा ही था. मुझे लगा वे ख़ुद सांवली हैं इसलिए मेरा दर्द समझ सकेंगी. कम से कम मुझे ताना तो नहीं मारेंगी पर मैं ग़लत थी. जैसे ही उनकी नज़र मुझ पर पड़ी उन्होंने मां से पूछा, 'क्या यह लड़की तेरे साथ है?' तो मां ने उन्हें बताया कि मैं उनकी बेटी हूं. जिसे सुन उन आंटी के चेहरे पर आश्चर्य के भाव आ बैठे और उन्होंने मां को अपनी ओर धीरे से बुलाया. जब मां उनके पास गयी तो उन्होंने उनके कान में कुछ कहा. मैं भी धीरे से उनके पास खड़ी हो गयी तो सुनायी दिया कि वह आंटी मेरी मां से पूछ रही थी, 'यह बेटी तेरी ही है या गोद ली है?' यह बात सुन मेरी मां के चेहरे पर ग़ुस्से के भाव साफ़ दिखायी देने लगे पर उन्होंने उनसे कुछ भी ना कहा. थोड़ी देर बाद वे आंटी चली गयीं. उनके जाते ही मैंने मां से बिना देर किये पूछ ही लिया, 'आख़िर यह कौन थी जो मुझे गोद लिया हुआ कह रही थी?' मेरी मां को पता लग गया कि मैंने सब कुछ सुन लिया था. मेरी मां को शायद मेरी शिकायत का अंदाजा भी हो गया. तब उन्होंने मुझे प्यार से समझाया कि जब हम किराए पर रहा करते थे तब यह आंटी हमारी मकान मालकिन थी. उन्होंने मुझे बताया कि जब हम वहां रहा करते थे तो वे अक़्सर हमारी मदद किया करती थी इसलिए हम उनसे अपने संबंध अच्छे रखना चाहते हैं और इसीलिए मेरी मां ने उनसे कुछ ना कहा. मेरे मन में तभी एक सवाल आया जो मैंने अपनी मां से पूछा, 'उन्होंने मुझे पहचाना क्यों नहीं?' तो मां ने मुझे बताया कि जब वे वहां रहा करती थीं तब मैं पैदा ही नहीं हुई थी. मुझे नहीं पता था मेरी मां सच बोल रही थी या झूठ पर तब मैंने इस बात को सच मान लिया और कुछ ना कहा. पर हद तो तब हो गयी जब एक दिन मैं और मेरी मां भोपाल गये और वहां पर भी यही हुआ. मैं और मेरी मां जब भोपाल के एक बड़े मॉल में ख़रीदारी कर रहे थे तब एक दीदी वहां पर आ गयी. वह दीदी बहुत सुंदर लग रही थी. वह बहुत पतली थी. उनके बाल भी काले और लंबे थे और वे अंग्रेज़ों की तरह गोरी भी थी. मुझे तो वह किसी हीरोइन से कम नहीं लग रही थी वे जल्दी से हमारी ओर आयी और सीधे मां के गले लग गयी. मां भी उन्हें देख बहुत ख़ुश हो गयीं. वह कुछ भी कहती इससे पहले ही मां ने मुझे उनका परिचय दे दिया. वे उनकी कॉलेज़ की बेस्ट फ्रेंड थी. मैंने उनसे हेलो कहा तो उन्होंने मुस्कुरा दिया और मां से पूछा, 'यह तेरी बेटी है?' तो मां ने भी हां में सिर हिला दिया. तभी उन्होंने मुझे देख कर कहा, 'वैसे यार तू बहुत बदल गयी है.' मेरी मां ने हामी भरते हुए कहा, 'हां यार, मोटी हो गयी हूं.' तो उन्होंने कहा, 'वह तो तू पहले भी थी पर अब तेरा स्वभाव बदल गया है.' 'झूठी कहीं की' ऐसा कहकर मेरी मां ने उन्हें गोली मार दी और पूछा, 'अच्छा वह छोड़ यह बता मेरे स्वभाव में ऐसा क्या बदलाव आया जो तुझे एक बार में मिलकर ही दिख गया.' 'तुझे याद है प्रिया?' उन्होंने मां से पूछा तो मां ने कहा, 'हां' उन्होंने अपनी बात को ज़ारी रखते हुए कहा, 'प्रिया तुझसे दोस्ती करना चाहती थी पर तूने उससे दोस्ती नहीं की इसलिए क्योंकि वह सांवली थी और अब तेरी बेटी भी काली है फिर भी तू उसे अपने सीने से लगा कर रखती है.' यह सुन मेरी मां की नज़रें झुक गयीं और वे मुझे लेकर वहां से चली गयीं. तब भी मां ने उन्हें कुछ ना कहा. दरअसल बात तो यह है कि मां भी लोगों को जवाब देते-देते थक गयी हैं. जब अपना ही सिक्का खोटा हो तो दुकानदार को कसूरवार नहीं ठहराना चाहिए. शायद मां भी इसी बात पर अमल करने लगी थी. तब मैंने निश्चय कर लिया था कि अब मैं बाहर जाऊंगी ही नहीं पर अब बस. अब मैं यह सब नहीं सोचूंगी सब लोग एक समान होते हैं काले गोरे सब बराबर होते हैं. हां, हमारे संविधान के अनुसार सबको समान अधिकार दिये गये हैं तो फिर आज के बाद मेरे आंसू मेरे रंग के लिए नहीं बहेंगे. मैं किसी को भी अपने रंग का मजाक उड़ाने नहीं दूंगी. हां, मैं ऐसा ही करूंगी कह कर मैंने अपने आंसू पोंछ लिये पर मैं झूठ किससे बोल रही हूं. मैं भी यह अच्छी तरह से जानती हूं कि सब बराबर होते हैं. सब रंग प्रकृति ने हमें दिये हैं तो हमें उन्हें अपनाना चाहिए. पर यह सब बातें कहने सुनाने की ही है. कोई भी काले रंग को नहीं अपनाना चाहता. मैं औरों से क्या शिकायत करूं जब मैं ख़ुद अपने रंग, अपनी सूरत से नफ़रत करती हूं. क्यों मुझे ही इस रंग की त्वचा मिली है? मां-पापा दोनों गोरे हैं. यहां तक कि मेरे भाई बहन भी गोरे हैं. तो मैं ही क्यों इस रंग की वजह से पूरी शाम घर में अकेले रहती जबकि दूसरे बाहर खेलते क्योंकि मेरे मोहल्ले

(शेष पृष्ठ ७६ पर देखें....)

(गतांक पृष्ठ ३७ से आगे :)

मुझे वापस लौटना है

✍ डॉ. गरिमा संजय दुबे

अगले दिन बेटी जल्दी उठ गयी, आज उसने तय कर लिया था अपने बाबा के साथ वैसे ही रहेगी जैसे दूसरी सहेलियां रहती हैं, जिद्द करती, लाड़ लड़ाती, रूठती मनाती, जल्दी जल्दी चाय बना के दो गिलास में डाल वो मां-बाबा के कमरे के बाहर जाकर खड़ी हो गयी, 'आयी बाबा, जल्दी उठो कब तक सोते रहोगे, देखो सूरज चढ़ आया है, नल आने वाला है, बाबा के साथ पानी भरना है, फिर सब काम निपटा कर दोपहर में सारे खेल खेलना है, बाबा बाबा उठो,' दोनों पति पत्नी हैरान, रोज़चुप्पी-सी लगा बैठी इस लड़की को क्या हुआ, हड़बड़ाते हुए दोनों बाहर आये, तो चाय टेबल पर रख कर दौड़कर वह बाबा से लिपट गयी, 'बाबा बाबा मुझे माफ़ कर दो, तुम सबसे अच्छे बाबा हो,' बाबा ने उसे सीने से चिपटा लिया, बेटे की तरफ़ देखा, निग़ाहों में समझ आ गया कि बेटी को सब हक़ीकत पता चल गयी है, भाव विभोर हो गया, बेतहाशा बेटी को चूमते हुए आंसू बहने लगे. भावनाओं का ज्वार जब थमा तो पत्नी झिड़कते हुए बोली, 'चलो चाय ठंडी हो रही है बेटी क्या मिली सब भूल गये, चलो उसके हाथ की चाय पीते हैं.' आज का दिन उनके लिए नयी सुबह लेकर आया था, उसने कहा, लॉकडाउन में क़ैदियों को जेल में नहीं रख सकते थे, इसलिए उन्हें जांच कर घर भेज दिया, मुझे नहीं पता था कि इस बीमारी में मुझे मेरा परिवार वापस मिल जाएगा, बड़ी उलझन में था इतने साल बाद कैसे बच्चों से जुड़ूंगा, क्या वो मुझे वैसे ही अपना लेंगे, आने में डर रहा था, लेकिन अब पंद्रह दिन बाद वापस जाना है जेल कुछ महीनों के लिए. वापस जाना है, सुनकर चारों लोग उदास हो गये.

तभी उसने कहा, 'अरे, जाना है ताकि वापस लौट सकूं, इतने सालों में घर को याद कर करके जीता रहा, लौट कर आया तो डरा हुआ था, लेकिन अब जब लौटूंगा तो पूरा-पूरा घर का होकर.'

उसके बाद के पंद्रह दिन तो मानो पंख लगा कर उड़ गये, आया था तो दिन भारी-भारी थे, जैसे किसी ने वक़्त के पैरों में मन-मन भर क पत्थर बांध दिये हों, जेल के दिन रात भी वैसे ही गुज़रे धीरे-धीरे, लेकिन यह वक़्त तो जैसे पर से भी हल्के हो गये और पलक झपकते ही बीत गये. अपनी सिलाई का हुनर दिखा पत्नी की साड़ी से एक मैक्सीड्रेस उसने बेटी के लिए बनायी, आये गये के रखे कपड़ों से बेटे के लिए और अपने लिए शर्ट बना ली. बीबी के लिए एक दो सूट भी सिल दिये उसने. बेटी उसका हुनर देख हैरान थी, बोली, 'बाबा आप तो जादूगर हो, जब आप लौट कर आओगे तो एक बुटीक खोल लेना, ख़ूब चलेगा, ऐसी ड्रेस के तो हज़ारों मिलते हैं आजकल,' और वह ड्रेस पहन इठला रही थी. वह एक चपत लगा मुस्कुरा दिया, 'हां अब ज़िंदगी के फटे हिस्से की सिलाई करनी है.'

आख़िर उसके जाने का दिन भी आ गया, 'जेल से गाड़ी लेने आयी, सुबह से पत्नी बच्चे और वह ख़ुद भी अनमने थे, इतने साल जेल में मन को मना लिया, लेकिन अब यह कुछ महीने गुज़ारना उसके लिए भारी हो जाएगा. जैसे किसी लंबी यात्रा पर जाने वाला व्यक्ति अभी गंतव्य बहुत दूर है कि निश्चिंतता के साथ बैठ जाता है, दूर जाना है वक़्त बहुत है का सोच धैर्य से बैठता रहता है, लेकिन जैसे ही गंतव्य के क़रीब पहुंचता है थोड़ी दूरी शेष रह जाती है उसका धैर्य जवाब देने लगता है, जैसे परीक्षा में बैठे विद्यार्थी और परीक्षक दोनों के लिए अंतिम पंद्रह मिनट बहुत बेचैनी वाले होते हैं, वैसे ही वे सब भी अधीर हो रहे थे.

बेटी बेटा लिपट कर बोले, 'बाबा जल्दी आना,' पत्नी ने भरी आंखों से वापसी की लौ जगायी.

वह नम आंखें लिये जब गाड़ी में बैठने लगा तो, कॉन्स्टेबल बोल उठा, 'कहो कैसे गुज़ारे ये दिन,' तुम तो क़ैदी हो कर अपने घर वालों से मिलते रहे और हम पुलिस वाले घर न जा सके भइया, भगवान किसी को अपने घर परिवार से दूर न करे, कहते-कहते कांस्टेबल की आंखें भर आयीं.

वह बोला, 'सच है साब, घर जैसी कोई दूसरी जगह

है भला, अब तो मुझे ज़ल्दी से घर लौटना है, बेटा-बेटी का ब्याह करना है, पत्नी को थोड़ा आराम देना है, अपनी सिलाई की दुकान फिर खोलना है, अब तो बस ये महीने जल्द गुज़र जाएं, मुझे बहुत जल्दी वापस लौटना है साब.'

'हां, हां, बहुत जल्दी हम सब अपने-अपने घर वापस लौटेंगे,' कहते हुए कॉन्स्टेबल ने गाड़ी का दरवाज़ा बंद किया.

वह पत्नी बच्चों को गाड़ी से और पत्नी बच्चे उस गाड़ी को गली के मोड़ तक मुड़ते हुए, जाते हुए देखते रहे, ताकि वह उसे वहीं से वापस आते हुए भी देख सकें. उनकी आंखों में धुंधलापन छा गया था, यह धुंध उड़ने वाली धूल की वजह से थी या वापसी के इंतज़ार में आंखों में भर आये आंसुओं की...

१८ बी, वंदना नगर एक्स.
इंदौर-४५२०१६. (म. प्र.)

काली लड़की

पृष्ठ ७४ का शेष भाग...

की लड़कियों को भी किसी काली लड़की के साथ खेलना मंजूर न था. इसी रंग के कारण मेरे माता-पिता को शर्मिंदा होना पड़ता. जब भी मैं उनके साथ बाहर जाती तो कोई ना कोई उन्हें ताना ज़रूर मार देता और आज भी यही हुआ. शायद इसलिए मम्मी जिस क्रीम के बारे में सुनती यह गोरा बना देती है बिना देर किए उसे ले आतीं. फिर एक महीने तक रोज मुझे घिस-घिस कर लगातीं. पर जब कोई असर ना होता तो कोई दूसरी गोरा बनाने वाली क्रीम ले आतीं. ऐसे ही न जाने मैंने कितने फेस वॉश लगाये. न जाने कितने पाउडर के डिब्बे बर्बाद किये. पर इस श्याम रंग पर कोई भी असर न हुआ. जब–जब स्कूल में कोई कार्यक्रम आयोजित होता या हम सब मिलकर छब्बीस जनवरी या पंद्रह अगस्त जैसे महापर्व को साथ मिलकर मनाते तो हर कक्षा से कुछ बच्चे सांस्कृतिक गतिविधियों तो कुछ साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेते. पर मुझे कोई भी सम्मिलित नहीं करता. मेरा मन भी करता था सबके साथ मिल जुलकर उन गतिविधियों में हिस्सा लेने का. क्या मैं इतनी बुरी हूं कि कोई भी मेरा दोस्त बनना नहीं चाहता. आज भी मेरा कोई दोस्त नहीं है. इसीलिए मैंने अपना सच्चा दोस्त पुस्तकों को ही बना लिया. पर क्या क़िताबें मुझसे बात कर सकती हैं? क्या मैं उनसे अपने दिल की बात कह सकती हूं ? क्या वह मेरे साथ खेल सकती हैं? नहीं यह सब बातें मेरे मन में एक जाल की तरह रूप ले रही थीं. जिसमें मैं फसती ही जा रही थी. इससे बाहर निकलने के लिए जैसे ही मैंने अपनी नज़रें इधर-उधर घुमायीं तो पाया कि मेरे सामने आईना था. वही आईना जिससे मैं हमेशा बचने की कोशिश करती थी. जिस से रू–ब-रू होने से मुझे डर लगता था. पर हर रोज़ इस से रू-ब-रू हो ही जाती थी. लेकिन आज मैंने पहली बार अपने चेहरे को गौर से देखा था. हमेशा मैं अपने आपको दुनिया की नज़रों से देखती रही धी. पर आज मैंने पहली बार ख़ुद को अपनी नज़रों से देखा तो एहसास हुआ कि दुनिया आपको कितना भ्रमित करती है. मेरे क़दम ख़ुद-ब-ख़ुद उस छवि की ओर आगे बढ़े जा रहे थे. पास जाकर जैसे ही मैंने उस आईने को छुआ मुझे एहसास हुआ कि किस से अपना मुंह फेर रही थी. मेरे होठों पर एक बड़ी–सी मुस्कान आ बैठी. इस ख़ूबसूरती से मैं पहली बार मिली थी. मुझे एहसास हुआ कि हर प्राणी अपने आप में बहुत ख़बसूरत होता है. आज मैं भी गर्व से कह सकती हूं मैं जैसी भी हूं ख़ुद से बहुत प्यार करती हूं. उस चेहरे को देखकर मेरे लबों पर अचानक से एक गाना आ गया. जिसे गुनगुनाते हुए मैं नीचे शादी के हॉल की ओर शान से अपना सिर उठाकर बढ़ गयी...

चेहरा है या चांद खिला है जुल्फ़ घनेरी शाम है क्या
सागर जैसी आंखों वाली ये तो बता तेरा नाम है क्या

द्वारा महेश कटारे सुगम,
चंद्रशेखर वार्ड, बीना,
ज़िला : सागर (म. प्र.) ४७०११३
मो. : ९७१३०२४३८०

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. **- संपादक**

आमने-सामने

''वो लड़की गांव की!''

✍ *एम. जोशी हिमानी*

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा, वंदना शुक्ला, गिरीश पंकज, डॉ. हंसा दीप, कमलेश भारतीय, अजीत श्रीवास्तव, डॉ. अमिताभ शंकर रायचौधरी, श्याम सुंदर निगम, देवेंद्र कुमार पाठक, आनंद सिंह, डॉ. इंद्र कुमार शर्मा , आचार्य नीरज शास्त्री और ताराचंद मकसाने से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है एम. जोशी हिमानी की आत्मरचना.

पैंतालीस साल से शहर में रह रही इस लड़की को बाल्यकाल की यादें उस अंधेरे गांव से शहर की चकाचौंध भरी ज़िंदगी में आज तक नहीं विलीन कर पायी हैं. आपा-धापी की इस ज़िंदगी में और जीवन के संघर्षों तथा तमाम उतार-चढ़ाव के बीच मैं अब तक केवल चार पुस्तकें, दो कहानी संग्रह 'पिनड्राप साइलेंस' व 'ट्यूलिप के फूल' एवं उपन्यास 'हंसा आएगी ज़रूर' तथा कविता संग्रह 'कसक' प्रकाशित करा पायी हूं. इन दिनों उत्तराखंड के सुदूर जनपद पिथौरागढ़ के अति लघु गांव 'नैनी' की अपनी यादों जहां मैंने अपने जीवन के प्रारंभिक पंद्रह वर्ष बिताये, जहां मैंने हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त की, वहां के जीवन के पहाड़ जैसे संघर्षों, आकांक्षाओं, सात्विक, आध्यात्मिक जीवन वृतांत को समेटती अपनी संस्मरणात्मक पुस्तक 'वो लड़की गांव की' लिख रही हूं. लिखने के साथ ही आंतरिक रूप से अपने बाल्यकाल तथा किशोरावस्था की देहरी पर खड़ी उस किशोरी के अंतर्मन को फिर से जी रही हूं. आज वानप्रस्थ की आयु में पहुंचकर, ज़िंदगी में तमाम सुविधाएं भोगकर, अच्छी सरकारी नौकरी, अच्छा पद पाकर, देश-विदेश की सैर करने के बाद भी मैं भीतर से, वो गांव की लड़की ही हूं और उसी में परम आनंद का अनुभव करती हूं. आज भी मैं स्वप्न में उसी गांव में विचरण करती हूं. शहर की मशीनी ज़िंदगी, यहां की दिखावे भरी ज़िंदगी में मैंने रोज़ी-रोटी ज़रूर कमाई परंतु यह

कविता

वह गांव की लड़की

गांव उसकी आत्मा में
इस कदर धंस गया है कि
शहर की चकाचौंध भी
उसे कभी अपने अंधेरे गांव से
निकाल नहीं पायी है,
वो गांव की लड़की बड़ी
बेढब-सी है
खाती है शहर का,
ओढ़ती है शहर को
फिर भी गाती है
गांव को,
उसके गमले में लगा
पीपल बरगद का बौनसाई
जब पंखे की हवा में
हरहराता है
और उसकी बैठक में
एक सम्मोहन-सा पैदा करता है,
वो गांव की लड़की
खो जाती है
चालीस साल पहले के
अपने गांव में
और झूलने लगती है
अपने खेत में खड़े
बुज़ुर्ग मालू के पेड़ की
मज़बूत बाहों में पड़े
प्राकृतिक झूलों में
अब किसी भी गांव में
उसका कुछ नहीं है
सिवाय यादों के,
वो लड़की थी
इसलिए किसी
खसरा-खतौनी में
उसका जिक्र भी नहीं है,
शहर में ब्याही
वो गांव की लड़की
अपनी सांसों में
बसायी है अब तक
काफल, बांज, चीड़, देवदार
बड़, म्योल, उतीस के पेड़ों को
सभी नौलों-धारों गाड़-गधेरों और
बहते झरनों को,
लाल-काले रसीले काफलों को
पीले रस टपकाते हिसालुंओं को
सभी डानों और
बुग्यालों को,
वो गांव की लड़की
बहुत ख़ुदगर्ज़ है
केवल अपनी देह को
शहर में लायी है
आत्मा अपनी
बचपन के उसी गांव में
कहीं छोड़ आयी है.

जीवन मेरी आत्मा को नहीं छू पाया, अपनी अधिकांश रचनाओं में भी मैंने पहाड़ के उसी निश्चल ग्रामीण जीवन को जिया है और मुझे अपनी एक कविता भी बहुत पसंद है, जो हाल ही में एक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका में प्रकाशित भी हुई है.

मेरी मां स्व. कुंती देवी पांडेय मेरा जीवन आदर्श रही हैं, मेरी रचनाओं में वे किसी न किसी पात्र के रूप में अनायास जीवंत हो जाती हैं. अनपढ़ मेरी मां जो मात्र उनतालीस वर्ष की आयु में विधवा हो गयी थीं, जिस संघर्ष के साथ उन्होंने हम तीन भाई-बहनों को पाला, उन्हें जीवन में स्थापित किया, उन्हें अपने आचरण से जीवन का पाठ पढ़ाया, उससे बड़ा आदर्श मेरे जीवन में और कोई हो ही नहीं सकता है. बहुत पढ़ी-लिखी, आत्मनिर्भर, स्त्रियों को भी जब मैं आंसू बहाते अथवा किसी पुरूष का कंधा ढूंढते देखती हूं तो मुझे अपनी मां का जीवन याद आने लगता है. मेरी मां एक ग्रामीण कृषक महिला थी, जो अपने सीढ़ीनुमा खेतों में थोड़ा सा अनाज उगा पाती थी. नाते-रिश्तेदार पिता के न रहने के बाद उन खेतों से भी मां को बेदख़ल करने का हर संभव प्रयास करते रहते थे लेकिन पौने पांच फुट की

मेरी मां के हौसलों के आगे सब भाग खड़े होते थे. मैंने एक बार अपनी मां को कुल्हाड़ी हाथ में लिये एक आदमी को ललकारते हुए भी देखा था — 'तू अपने बाप का बेटा है तो आ मेरे नजदीक मैं तेरा सिर इसी कुल्हाड़ी से उतारती हूं...'

हम ग्रामीण जीवन की जितनी भी तारीफ़ करें लेकिन गांवों में भी हर जगह तमाम भेड़िए भी मौजूद रहते हैं, जो किसी कमज़ोर स्त्री को देखकर छुप-छुप कर घात में बैठे रहते हैं. ऐसी निडर, साहसी, साध्वी स्त्री की कोख़ में जन्म लेकर मैं ख़ुद को धन्य समझती हूं.

प्रकृति के आंगन में इस दुनियां में मेरी पहली आंख खुली. होश आने के बाद मैंने अपने चारों तरफ़ वनों से लदे पहाड़, घाटियां, झरने, हरियाले सीढ़ीनुमा खेत, गोष्ठ में पले दुधारू पशु, फलों से लदे पेड़ देखे, बिजली, सड़क, शहर, रेलगाड़ी तो मैंने स्कूल जाने के बाद क़िताबों में ही देखे, पंद्रह साल की उम्र तक मैंने किरोसिन से जलने वाले लम्फू (लैंप) ही देखे थे, जिसकी मद्धिम-सी रोशनी में मैं घर में नियमित रूप से गीता प्रेस, गोरखपुर से आने वाले कल्याण मासिक और वार्षिक कल्याण ग्रंथों में छपे रंगीन चित्रों को देख-देखकर स्वप्नलोक में खोये रहती थी. छठी-सातवीं किसी कक्षा में आने के बाद मुझे कहीं से 'धर्मयुग' की एक पुरानी प्रति मिली थी. उसे पाकर मैं इतना विस्मृत हो गयी थी कि जैसे मैंने किसी नयी दुनियां का आविष्कार कर लिया हो, मैं उसमें छपे कार्टूनों को देखकर अचंभित थी और जिज्ञासा में भरकर अपने बड़ों से पूछ रही थी कि — 'ये किस देश के लोग हैं....?' उन दिनों बच्चों की जिज्ञासा का सही उत्तर देने का रिवाज ही नहीं था. मेरे एक चाचा बोले थे — 'ये चीन के लोग हैं...' मैंने वह बात गांठ बांध ली और मैं कई वर्षों तक यही मानती रही कि कार्टून के वे पात्र चीन के लोग हैं, कितना भोला था वो बचपन, शायद इन्हीं सब कारणों से मेरी रचनाओं में अक्सर प्रकृति नृत्य करती हुई-सी दिखती है. मैं प्रकृति के हर रूप में ईश्वर की उपस्थिति महसूस करती हूं.

मुझे हिमालय अपने पिता समान दिखता है और शीतल वनों में मुझे अपने मां के आंचल का-सा सुखद स्पर्श महसूस होता है, सागर तट पर जाती हूं तो लगता है उसकी लहरों में ब्रह्म का नाद सुनायी पड़ रहा है.

सच ही तो है सब कुछ इसी सृष्टि में है. स्वर्ग यहीं है मृत्यु के बाद कुछ नहीं है, यह जगत भी सत्य है, ब्रह्म भी सत्य है. मिथ्या केवल हमारी अज्ञानता है.

कुमाऊं के सीमांत जनपद पिथौरागढ़ के एक सुदूरवर्ती गांव नैनी में ६० के दशक में फाल्गुन पूर्णिमा के दिन एक कुलीन कर्मकांडी ब्राह्मण परिवार में मेरा जन्म हुआ था. मेरा बचपन सांसारिक सुख-सुविधाओं की दृष्टि से बहुत अभावों में बीता था परंतु प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर वातावरण, कल-कल करते झरने, माता-पिता, दादा-दादी के स्नेह वात्सल्य की छाया, उनके जीवन संघर्षों की पाठशाला, उनकी आध्यात्मिकता, सरलता तथा सात्विकता से परिपूर्ण आचरण ने सांसारिक वस्तुओं की कमी के बावजूद मेरे जीवन की नींव को गहरी मज़बूती दी.

उन दिनों उस घोर गंवई क्षेत्र में लड़कियों की शिक्षा को समय और धन की बर्बादी माना जाता था, समाज में परिहास का विषय माना जाता था. स्त्री शिक्षा तथा स्वावलंबन के पुरज़ोर हिमायती, भारतीय थल सेना के बहुत ही खुले विचारों वाले तथा ज्योतिष के प्रकांड विद्वान मेरे पिता श्री लक्ष्मीदत्त पांडेय ने किसी बात की परवाह न कर हाईस्कूल पास करते ही १५ वर्ष की उम्र में आगे की शिक्षा के लिए मुझे प्रदेश की राजधानी लखनऊ पहुंचा दिया.

लखनऊ ने मुझे अच्छी सरकारी नौकरी दी. पति दिया, दो प्यारी, होनहार, आत्मनिर्भर बेटियां दीं. मैं परिवार पर आयी विपदा के कारण मां का सहारा बनने के लिए मात्र उन्नीस बरस की उम्र में सूचना एवं जन संपर्क विभाग, उत्तर प्रदेश की सेवा में आ गयी थी, अपनी साहित्यिक रुचियों के कारण मैं जल्द ही पदोन्नत होकर विभागीय साहित्यिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' में उप–संपादक बन गयी थी. तदुपरांत सूचना अधिकारी के राजपत्रित पद पर मैंने कई वर्षों तक प्रदेश की सेवा की. शासन प्रशासन के अनेक वरिष्ठ अधिकारियों/मंत्रीगणों के साथ काम करते हुए मैंने जीवन में बहुत अनुभव कमाए, जो बाद में मेरे साहित्य को भी समृद्ध करते रहे.

मैं अपने कर्म और ईश्वर की कृपा की बहुत शुक्रगुज़ार हूं कि 'उत्तर प्रदेश' जैसी साहित्यिक पत्रिका का मुझे बाद में संपादन करने का भी अवसर मिला, जिसमें मैंने सामान्य अंकों के अतिरिक्त उत्तर प्रदेश की सांस्कृतिक, आध्यात्मिक विरासत को दर्शाने वाले ''ब्रज विशेषांक'', ''काशी विशेषांक'' और ''प्रयाग विशेषांक'' का भी संपादन किया. सहायक निदेशक के महत्वपूर्ण पद से मैं सेवानिवृत्त हुई हूं. बचपन से ही क़िताबों ने मेरे जीवन में पथ प्रदर्शक, मित्र की भूमिका

लघुकथा

कोरोना

पारस कुंज

कोरोना-काल चल रहा था. आठ-नौ माह बाद भी इसके लिए कोई वैक्सीन ईजाद नहीं हो पायी थी. अनलॉक-लॉकडाउन के बीच ही विधानसभा चुनाव की अधिसूचना ज़ारी हो गयी.

वेबीनार एवं वर्चुअल-कॉन्फ्रेंसों द्वारा चुनाव की सरगर्मी तेज़ होने लगी.विभिन्न राजनैतिक दल एवं निर्दलियियों का चुनाव-प्रचार जोर-शोर से होने लगा. इसी दरम्यान अपने कार्यकर्ताओं के बीच राज्य के मुख्यमंत्री की वर्चुल-कॉन्फ्रेंस चल रही थी.

वे विगत पंद्रह-साल अपने शासन की उपलब्धियों को गिनाते-गिनाते 'कोरोना' से बचने का रास्ता भी बताते जा रहे थे –

'...साथियों जब तक इस महामारी की कोई प्रामाणिक-दवा नहीं आ जाती, तब तक हमें शारीरिक-दूरी बनाकर रखनी है. बार-बार हाथों को धोते रहना है और अपनी नाक-मुंह को हमेशा मास्क से ढके रखना है !'

तभी अचानक कॉन्फ्रेंस को देख-सुन रहे कार्यकर्ता के नौ वर्षीय पुत्र राहुल ने पिता से आश्चर्य व्यक्त करते पूछा – 'पापा ! पापा ! सीएम साहब किस मास्क से नाक-मुंह ढकने को कह रहे हैं वही जिसे वो ख़ुद गले में लटकाए भाषण दे रहे हैं ? क्या 'कोरोना' उनके लिए...?'

संपादक : 'शब्दयात्रा', सीता निकेतन; जयप्रभा पथ, भागलपुर-८१२००२. (बिहार)
मो.: ६२०१३३४३४७, ९५७२९६ ३९३०. ईमेल : paraskunjbgp@gmail.com

अदा की है. जीवन के बारे में बताने वाली और मुझे नैराश्य के पलों में उबारने वाली पुस्तकें ही थीं. कॉलेज़ जीवन से मुहल्ले की समस्याएं 'पाठकों के पत्र' नामक कॉलम में लखनऊ से निकलने वाले दैनिक पत्र 'नवजीवन', 'स्वतंत्र भारत' में भेजा करती थी और उनमें छपा हुआ अपना नाम देखकर मेरी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहता था. धीरे-धीरे मैंने कुछ बाल कहानियां भी लिखीं और प्रकाशित करवायीं, फिर जीवन के झंझावतों में फंसकर कई वर्षों तक मेरा लिखना बंद रहा. वर्ष १९९१ में मैंने कहानी लिखने के लिए खुद को तैयार किया और पहली ही कहानी ''अधिकार'' उसी वर्ष ''साप्ताहिक हिंदुस्तान'' में प्रकाशित हुई तथा उस वर्ष की श्रेष्ठ कहानियों के लिए चुनी गयी, तब मेरा आत्मविश्वास ख़ुद पर दृढ़ हुआ और मैं साल दो साल में एक-दो कहानियां लिखने लगी. जिस तरह अच्छी पुस्तकें हमारा मार्गदर्शन करती हैं. मैं मानती हूं कि हमारे अंदर जीने का ज़ज्बा भी पैदा करती हैं. उसी तरह लिखना हमारे मन के लिए टॉनिक का काम करता है. इसीलिए शायद मैं आज भी जब अपने बचपन के गांव की यादों में खोने लगती हूं तो कुछ इस तरह लिखकर ख़ुद को संवारने लगती हूं —

फागुन में,
मेरे गांव के सीढ़ीनुमा खेतों में
गेहूं बीच खिलखिला उठते थे ट्यूलिप
बर्फ से ढकी चोटियां मुस्करा उठती थीं,
फेंक कहीं दूर सफ़ेद चादर
झाड़ियां दमक उठती थीं,
प्यूली के पीले जंगली फूलों से
बुरांस की कोपलें
खिलने को आतुर दिखतीं थीं,
होली की मधुर तान
हवा में घुलने लगती थी
बेटियां फागुन लगते ही
भिटोली की आस में
मायके की दिशा का पथ
एकटक निहारने लगतीं थीं,
फागुन में
हर शाख पै कोयल
पिहू-पिहू का राग अलापती थी
तब आता था रंगीला फागुन.

८२/४४ए, पंत नगर कॉलोनी, खुर्रम नगर, विकास नगर, लखनऊ- २२६०२२
मो.: ८१७४८२४२९२

'किसी को फ़ुर्सत नहीं कि मुख्य धारा में हर पल विसर्जित हो रही आंचलिक जलधाराओं के योगदान की चर्चा भी हो!'

डॉ. विद्याभूषण

(बहुमुखी रचनाशीलता के धनी कलमकार विद्याभूषण से अनिता रश्मि की बातचीत)

० साहित्य में सबकी शुरुआत छात्र जीवन में हो जाती है. आपकी कब हुई? कौन से ऐसे तत्व रहे, जो हाथ पकड़ आपको साहित्य की गली तक छोड़ गये?

मेरे स्कूली दिन गया शहर में बीते हैं. बड़े भाई राजकमल राय और उनके संगी साथी शिवशंकर प्रसाद उत्तर छायावादी प्रभाव के कवि-लेखक थे. उन दिनों शहर में 'साहित्य सम्मेलन' भवन में मासिक गोष्ठियां हुआ करती थीं जहां उस दौर के चर्चित कवि मोहनलाल महतो 'वियोगी', हंस कुमार तिवारी, गुलाब खंडेलवाल, रामनरेश त्रिपाठी भी यदाकदा आया करते थे. वहां नगर की रचनाकार बिरादरी का बड़ा मजमा जुटता था.

रचना पाठ और बहसों के उतार-चढ़ाव से परिचित होने का पहला अवसर मुझे वहीं मिला. श्री मन्नूलाल पुस्तकालय और मारवाड़ी पुस्तकालय के रीडिंग रूम में लगभग नियमित आने-जाने से साहित्य के प्रति मेरे लगाव और समझ को खिलने-खुलने का अनुकूल मौसम मिला था. उसी दौर में मित्रों के कर्मठ सहयोग से 'लौ' नाम की एक हस्तलिखित पत्रिका के संपादन का अवसर भी मिला. वह पत्रिका शहर के तमाम पुस्तकालयों में बारी-बारी से रखी जाती थी. प्रारंभ का दूसरा चरण शुरू हुआ जहानाबाद के सहजानंद सरस्वती कॉलेज़ में इंटरमीडियेट में एडमिशन लेने के बाद. वहां के प्राचार्य छोटे नारायण शर्मा अंग्रेज़ी साहित्य के मर्मज्ञ थे और हिंदी विभाग के प्राध्यापक शुकदेव राय और मदनमोहन शर्मा की देखरेख में कॉलेज की हिंदी परिषद सक्रिय थी. स्व. राधावल्लभ राकेश जैसे छात्र-कवि इस साहित्यिक वातावरण के जीवंत प्रमाण थे. पहली बार प्रो. शुकदेव राय के सौजन्य से साप्ताहिक 'उत्तर बिहार' के दो अंकों में मेरी दो कविताओं का प्रकाशन हुआ था.

सच कहूं तो इस सांस्कृतिक मानस की संरचना में गीता प्रेस की पुस्तकों, विशेषतया महाभारत और पुराण, के पाठ-अध्ययन की परिस्थितियां भी प्रेरक रही होंगी. बात यह थी कि फ़ीस नहीं भर पाने की आर्थिक विवशता में लगभग दस महीनों तक मैं स्कूल नहीं जा पाया. दसवीं कक्षा में पहुंच कर इस जबरन घर बैठकी ने मुझे अपने नजदीकी रिश्तेदार स्व. आदित्य सहाय के निजी पुस्तकालय की पुस्तकों का नियमित पाठक बना दिया था. आज की तारीख़ में इन सभी व्यक्तियों और प्रसंगों का ऋणभार मुझे स्वीकार करना चाहिए जिन्होंने मुझे इस मुकाम तक पहुंचाया, लेकिन यह कोई 'साहित्य की गली' नहीं, जीवन का महासागर है.

० अपने बृहदजीवनानुभव में वह कौन सी बात है जो सबसे अधिक आपको छूती है?

एक लंबी उम्र अगर बृहद अनुभव का प्रमाण पत्र देती है तो मैं इस दावेदारी से पीछे कैसे हट सकता हूं! बेशक मैंने समय का एक लंबा फ़ासला तय किया है. लेकिन इस सफ़र के हर मोड़ पर मैंने अपने गंतव्य की दिशा तलाशने का सिलसिला जारी रखा है. कई बार लगता रहा कि दूरी तो बहुत तय हुई, लेकिन मंजिल बदल गयी. इस दिशांतर से अभिशप्त भी हुआ हूं. सन ७० से ८४ तक साहित्य लेखन की यात्रा स्थगित कर चौदह बरस के वनवास की तरह रोज़ी-रोटी के लिए भटकना पड़ा है. सन १९६२ में एम. ए. कर लेने के बाद की अवधि में अध्यापकी, सरकारी नौकरी, प्रेस व्यवसाय, खेती-बारी, पत्रकारिता, मंचों और संस्थाओं के लिए भागदौड़ जैसे काम मेरे वक़्ती हमसफ़र बने. अब अपनी नियति के बारे में मन की बात कहूं तो अपनी ऊर्जा का तीन चौथाई हिस्सा ज़िंदगी की छोटी लड़ाइयों में खप गया और रचनात्मक क्षमता का बमुश्किल दस प्रतिशत भर इस्तेमाल हो पाया. नतीजा सामने है कि पहले पहर के मेरे सहयात्री साहित्य के शिखरों पर प्रतिष्ठित हो चुके और मैं

डॉ. विद्याभूषण

अनिता रश्मि

'नयों' के बीच पुराना और 'पुरानों' बीच नया बन कर खुद की माप-तौल कर रहा हूं. शायद तमाम मंजिलें अनछुई रह गयी हैं. रवि बाबू की एक सूक्ति मुझे बहुत छूती है — 'जेचाइ से पाइ ना, जेपाइ से ना.'

० एक कवि, संपादक, प्रकाशक और आलोचकीय व्यक्तित्व का कहानीकार एवं उपन्यासकार में ढल जाना सुखद है. यह क्योंकर संभव हो पाया? क्या कारण रहे?

हर व्यक्ति की क्षमताओं के कई पहलू होते हैं. अपनी शुरुआत कविता से हुई, लेकिन कहानी लेखन भी समांतर चलता रहा. पत्रिकाएं गवाह हैं कि सन १९६३ से से ७३ के बीच मेरे शब्दकर्म के सारे रुझान सतह से ऊपर दिखने लगे थे. कविता, कहानी, आलोचना-समीक्षा. मई १९६३ में इलाहाबाद की 'कहानी' में प्रकाशित मेरी पहली कहानी मई ६४ में कोलकाता की गुजराती मासिक 'महेंदी' में अनूदित-प्रकाशित हुई. उस साल मेरी चार कहानियां प्रकाश में आयी थीं. उसी दौर में आजकल, नई धारा, ज्योत्स्ना, माध्यम, कल्पना, सा. हिंदुस्तान, स्थापना जैसी पत्रिकाओं में कविता, कहानी, आलोचना विधाओं की रचनाएं आती रहीं. 'क्रमशः', 'अभिज्ञान' और 'प्रसंग' पत्रिकाओं के दर्ज़न भर अंकों का संपादन भी किया. प्रेस और प्रकाशन का काम अव्यावसायिक था जो शिवशंकर मिश्र, शैलप्रिया, शंभु बादल और विद्याभूषण की लगभग दर्ज़न भर पुस्तकों और 'प्रसंग' (अनियतकालीन संकलन-पत्रिका) के कुछेक अंकों के छपने के बाद बंद हो गया. पुस्तकों का संपादन का कार्य चल रहा है, परिस्थितियों के दबाव के हिसाब से. इस पृष्ठभूमि की चर्चा के बाद अब यह कहने-बताने की ज़रूरत नहीं लग रही कि एक कवि-कहानीकार-आलोचक व्यक्ति उपन्यासकार के रूप में क्यों और कैसे रूपांतरित हो गया. वस्तुतः यहां रूपांतरण जैसी कोई चीज़ नहीं है. हर रचनाकार अपनी अंतर्वस्तु या कथ्य के मेल में अभिव्यक्ति का सांचा गढ़ता-चुनता है. अनुभव के रेशे अपने मिजाज के हिसाब से शिल्प-शैली विकसित कर ही लेते हैं. हर पाठक और रचनाकार की मानसिक बुनावट में एक सहयात्री आलोचक जन्मतः जुड़ा होता है. लिहाजा अपने लेखन की विविधता को मैं किसी विशिष्टता का खिताब नहीं देता. वैसे शुरू में, बहुत वर्षों तक, आलोचना विधा में लेखन मेरे लिए आत्मरक्षा की ढाल बनी रही और बाद में अपनी सोच-विचार का पक्ष रखने के औजार के रूप में सहयोगी बन गयी.

० आज अनेक पीढ़ियां रचनारत हैं, सार्थक रच रही हैं. सोशल मीडिया ने उन्हें एक पहचान दी है. आपके शुरुआती समय में साहित्यकारों के लिए क्या चुनौतियां रही हैं?

आज की स्थिति सामने है. उसके बारे में अधिक कुछ कहने की ज़रूरत नहीं. सही है कि आज की तारीख़ में हिंदी में कम से कम तीन रचना पीढ़ियां लिख-पढ़ रही हैं. प्रिंट मीडिया में भी और सोशल मीडिया या डिज़िटल मीडिया में भी. सोशल मीडिया में बरसाती नदी का परिदृश्य है, अभिव्यक्ति का तेज़ बहाव कहीं गहरा है तो कहीं उथला भी. कभी कहीं बाढ़ के मटमैले पानी जैसा अराजक संप्रेषण प्रदूषण की हद पार कर जाता है. इसके बावजूद, समग्रता में देखें तो सोशल मीडिया की कवरेज़ आज की अनिवार्य उपज है. उसमें विभिन्न सामाजिक इकाइयों के आक्रोश और असंतोष का विस्फोट झलकता है और वैचारिक आलोड़न की ऊर्जा भी.

इस बिरादरी को मैं साहित्य के दायरे से बाहर की गतिविधियों के लिए अधिक प्रासंगिक मानता हूं. जहां तक साहित्य की अभिव्यक्ति के माध्यम और मंच के रूप में सोशल मीडिया की भूमिका का सवाल है, मेरी राय में वहां अकूत संभावनाओं का संपादनमुक्त निवेश हो रहा है. समय उसकी उपलब्धियों को रेखांकित करेगा और आज की कोई भी कसौटी उसका तुलन पत्र नहीं बना सकती.

० सभ्यता-संस्कृति, साहित्य-समाज के स्तर पर आज देश कहां खड़ा नज़र आता है?

कोई भी सभ्यता या किसी भूभाग की संस्कृति रातोंरात नहीं बन जाती. सदियों की यात्रा में कोई समाज अपने जीवन मूल्य गढ़ता है, अपनी जीवन शैली विकसित करता है, अपनी बुनियादी ज़रूरतों और संसाधनों का समन्वय करता है, पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा, सुंदर-कुरूप या श्रेष्ठ और निकृष्ट की कसौटियां तय करता है, तब एक सभ्यता और संस्कृति का सांचा तैयार होता है. इस प्रकार उनका जितना संबंध वर्तमान से है, उससे अधिक जगह अतीत के घेरे में है. लिहाजा सभ्यता और संस्कृति के विषय में कोई भी निष्कर्ष मूलक टिप्पणी मधुमक्खियों के छत्तों को छेड़ने से कम मुश्किल नहीं. अगर उसे समकालीन परिस्थितियों से जोड़ कर देखना हो तो उसके लिए संस्कृति के इतिहास और समाजशास्त्र की परिक्रमा एक अनिवार्य शर्त होगी.

हर समाज गतिशील हुआ करता है. परिवर्तन के अनेक मोड़ों और पड़ावों से गुज़र कर ही उसका वर्तमान अपनी पहचान तय करता है. भीड़ को समाज के रूप में संगठित होने के सूत्र कहीं भाषा से नियंत्रित होते हैं, कहीं धर्म से, कहीं भूभौतिकी से, मगर हर जगह साझा हितों से. सामाजिक विज्ञान की विभिन्न शाखाओं ने इस मानवीय नियति की एनाटॉमी में विशाल शोध-साहित्य प्रस्तुत किया है. समग्रता में विचार करते हुए अगर हम संश्लेषणवादी पद्धति से किसी नतीजे तक पहुंचना चाहें तो कहना होगा कि बहुलतावादी समाजों में अपने विभिन्न घटकों की निरंतर अंतःक्रिया के जरिए सहअस्तित्व की रूपरेखा तय होती है. एकल आबादी वाले समाज अधिक सुसंगठित माने जाते हैं. देश और राष्ट्र की अवधारणा इसी रास्ते चल कर विकसित होती है.

इस पृष्ठभूमि में यह प्रश्न इकहरी प्रकृति का कतई नहीं है कि सभ्यता-संस्कृति के स्तर पर यह देश आज कहां खड़ा है! बड़ी बात यह है कि विविधताओं से भरा यह देश एक ठोस नींव पर मज़बूती से खड़ा है. अनेक प्रजातियों, भाषाओं, धर्मों, क्षेत्रीय संस्कृतियों और भौगोलिक विभिन्नताओं के बावजूद यह देश एकता की मिसाल बन कर इतिहास की चुनौतियों के सामने निष्कंप खड़ा है. यह देश जिस संविधान के लचीले प्रावधानों से अनुशासित होता है, उसमें समय-समय पर वर्गीय असहमतियों और क्षेत्रीय अंतर्विरोधों के शमन की भरपूर सामर्थ्य संरक्षित है. इसी तरह समाज और साहित्य के स्तर पर देश की स्थिति पूछने वाला सवाल भी पेचीदा है और उसका कोई इकहरा उत्तर भी आधा-अधूरा ही हो सकता है. यथार्थतः वस्तुस्थिति यह है कि परंपरा और आधुनिकता के मेल के लिए कृत संकल्पित भारतीय समाज इतिहास में नवसृजन की प्रसव-पीड़ा से आंदोलित है. इक्कीसवीं सदी की चुनौतियां वही नहीं है जिनसे पिछली सदी में गुज़र कर मौजूदा पड़ाव तक हम आये हैं. आज की चुनौतियां बहुमुखी भी हैं और नुकीली भी. उनके निदान का कोई सरलीकृत उत्तर नहीं हो सकता. अपना समाज इतिहास के जिन दबावों को झेल रहा है, उसके दायरे में मूल्य मानकों का संपूर्ण परिदृश्य समाहित है. भारतीय भाषाओं में अपने समय और परिवेश का साहित्य-कोश लिखा जा रहा है. हिंदी की क़लम भी नवोन्मेष के इस बहुपक्षीय अभियान में अपनी रचनात्मक भूमिका के साथ युद्धरत है. अभी यहां विलक्षण प्रतिभाओं की एकल उपलब्धियों के कथित एकाधिकार की चर्चा का कोई औचित्य नहीं है, हमारी भागीदारी लोकतंत्रीय व्यवस्था के अनुरूप सामूहिक प्रयत्न में प्रतीकित होती है.

० हमारे समृद्ध राज्य की साहित्यिक समृद्धि कितनी संतोषप्रद है?

दुनिया जानती है कि झारखंड की धरती प्रचुर खनिज संपदा से समृद्ध है. यहां के धरती पुत्रों ने खेल, वानिकी और सांस्कृतिक परंपरा की रक्षा में कीर्तिमान रचे हैं. अंग्रेज़ों के उपनिवेशी शासन के खिलाफ संघर्ष की पहली पटकथा सन १८५५ में संताल हूल के जन नायकों ने लिखी थी. इस प्रदेश की लोक भाषाओं में समृद्ध गद्य और गीति की वाचिक परंपरा संरक्षित है. संताली, मुंडारी, कुड़ुख, हो, खड़िया और नागपुरी जैसी क्षेत्रीय भाषाओं में सृजन-लेखन के आधुनिक अध्याय का तेज़ी से विस्तार हो रहा है. इनके समांतर हिंदी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनेक शब्दकारों ने कथित मुख्य धारा में हस्तक्षेपकारी भूमिका

निभायी है. राधाकृष्ण और फादर कामिल बुल्के की पीढ़ी से लेकर महुआ माजी और रणेंद्र की पीढ़ी तक यह सिलसिला जारी है.

मैं इस गुलदस्ते के रंगों और गंधों को संतोष या असंतोष की क्यारियों में रख कर कभी नहीं देखता. तुलनाएं हमेशा सापेक्ष होती हैं और सृजन का कोई तुलन पत्र नहीं होता.

० यदि रिवाइंड की सुविधा हो, इतिहास के किस पन्ने को आप पलट देना चाहेंगे?

झारखंड आवागमन के लिहाज से एक खुला क्षेत्र रहा है. सदियों से मैदानी इलाक़ों के लोग यहां आते रहे हैं और बसते गये हैं. मुगल काल तक इस आवागमन की गति मंथ-मंथर रही, लेकिन अंग्रेज़ी सल्तनत की पैठ के बाद नये पैरों की हलचल तेज हुई. इसी दौर में संपत्ति की निजी अवधारणा पायेदार हुई. भूमि स्वामित्व की परंपरागत व्यवस्था को अंग्रेजी शासन व्यवस्था ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया. जमींदारी प्रथा लागू होने पर ज़मीन मालिक सिर्फ़ रैयत माने गये. लगभग पौने दो सौ सालों के अंग्रेज़ी शासन के हस्तक्षेपी दमन के खिलाड़ इस इलाक़े में दस बड़े विद्रोह हुए. आजादी के बाद जब केंद्र की विकास नीति में कृषि की जगह उद्योग को प्राथमिकता मिल गयी तो इन दुर्गम इलाक़ों का सन्नाटा टूटा. खनन और उद्योग-धंधों के विस्तार के साथ बाहरी आबादी की बसाहट तेज़ होती गयी. इस अंचल में बड़े पैमाने पर विस्थापन के कारण मूल निवासियों-आदिवासियों की संस्कृति और समाज संगठन अपूर्व संकट से घिर गये. अलग राज्य आंदोलन में विकास को विनाश का वाहक माना गया. जंगल उजाड़ होते गये, नदियां प्रदूषण की जद में आ कर रेत की चादर बनती गयीं. दमन और शोषण के दौर ने इस अंचल-प्रदेश को जिस मुकाम तक पहुंचा दिया है, उसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यही है कि इस राज्य में आदिवासी आबादी कुल जनसंख्या का सिर्फ़ ३० प्रतिशत भर रह गयी. इंफाल और रांची की जनसांख्यिकी इसकी एक बानगी है.

अगर क्षेत्रीय इतिहास के पन्नों को पलटना संभव हो तो मैं आदिवासी आबादी की आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था को पुनर्जीवित देखना चाहूंगा, उनकी मातृभाषाओं को शिक्षा और रोज़गार के लिए अधिकृत करना चाहूंगा और चाहूंगा कि उन्हें अपने इलाके में प्रथम नागरिक होने का मान दिया जाये.

० झारखंड और उसके साहित्य पर भी आपने काफ़ी लिखा है. उसके भूत-भविष्य-वर्तमान पर संक्षेप में कुछ कहना चाहेंगे?

झारखंड की समाजिक व्यवस्था, सांस्कृतिक परंपरा और साहित्य पर मेरी कई क़िताबों हैं. संयोग है कि उनमें से कुछेक क़िताबें रांची विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में संदर्भ पुस्तकों के रूप में शामिल हैं. उनमें झारखंड में लिखे जाते रहे हिंदी साहित्य के वैशिष्ट्य और पहचान के विवेचन-मूल्यांकन पर विमर्श के सूत्र प्रस्तावित हैं. इसके समांतर हिंदी की केंद्रीय धुरी में उनकी अनदेखी जैसे सवाल भी कई पुस्तकों और आलेखों में मौजूद हैं. समय-समय पर इन चिंताओं को जानी-मानी पत्रिकाओं और प्रमुख पत्रों में भी साझा किया है. मेरे विवेचनात्मक लेखन को अगर विधाओं के अक्स में देखा जाये तो संस्मरण, रिपोर्ताज़, समीक्षा, आलोचना और संपादन जैसी तालिकी बन सकती है. लेकिन इसे अपनी निजी उपलब्धि की तरह मैं कभी नहीं देखता, बल्कि आज और अभी यह कहना चाहता हूं कि मैंने इन क्षेत्रीय मुद्दों पर लिखते हुए शायद अपना वक़्त जाया किया. सभी जानते हैं कि मैं विश्वविद्यालय सेवा में कभी नहीं रहा. लिहाज़ा मेरे लिए उनका कोई एकेडमिक महत्व नहीं रहा. कभी-कभी मुझे अफ़सोस होता है कि मैंने अपने जीवन का उत्तरार्द्ध इस हाशिए के काम में क्यों लगा दिया! श्रम और समय के इस दिशांतर के कारण मैं उपन्यासों और कहानियों में अपने अनुभवों का निवेश नहीं कर पाया. हिंदी में शोध और आलोचना की गतिविधियों पर नज़र डालिए तो दिखेगा कि वहां श्रेष्ठता के आसन पर सुप्रतिष्ठ लगभग चार दर्ज़न आचार्यों, कथाकारों और कवियों के कृतित्व का दिन-प्रतिदिन कीर्तन या खंडन-मंडन चल रहा है. प्रमुख हिंदी केंद्रों, बड़े शहरों और लेखक संगठनों से अभिप्रमाणित क़लमकारों के अतिरिक्त जहां कहीं कुछ लिखा जा रहा हैं, वह घुप्प अंधेरे में डूबा है. विज्ञजनों को फ़ुर्सत नहीं कि मुख्य धारा में हर पल विसर्जित हो रही आंचलिक जलधाराओं के योगदान की चर्चा भी हो. संप्रति मैं इससे विरत होना चाहता हूं.

० आपकी स्मृतियों के खजाने से कोई दो महत्वपूर्ण स्मृतियां?

आठ दशकों की जीवन यात्रा में यादों के पर्वतीय

कबाड़ का जमा हो जाना अचरज की बात नहीं हो सकती. स्मृतियों के संग्रहालय में महत्व का निर्धारण समय सापेक्ष ही हुआ करता है. लिहाज़ा उसे मैं इस बातचीत में नहीं जोड़ रहा. यह संस्मरण का विषय-क्षेत्र है, साहित्य विमर्श का नहीं.

० आपकी सक्रियता सबको प्रेरणा के सूत्र थमाती है. कहां से यह ऊर्जा पाते हैं?

मुझे अंदाज नहीं कि यह कथित सूत्र कहीं वजूद में हैं भी या उदार सहयात्रियों की कोरी मनोकामना है. बेशक अपनी आधी-अधूरी शब्द-यात्रा का एहसास अक्सर मुझे अपने कंप्यूटर पर खींच लाता है. असंतोष और अतृप्ति उसके दो चक्के हैं जो मुझे अब तक गतिशील करते आये हैं.

० अपनी कथाओं में, आगामी उपन्यास में आपने आस-पास के जीवन को मुखरता से स्थान दिया है. जीवन को आप कैसे देखते हैं, महसूस करते हैं?

यूं तो साहित्य की हर विधा जीवन के अनुभवों से ही जीवंत होती है. आदमी किसी ऐसी आकृति की कल्पना तक नहीं कर सकता जिसके किसी अंश से उसका परिचय नहीं हुआ हो. इसीलिए कल्पना पुनर्सृजन की कोख़ है. जहां तक मेरे लेखन में विविध विधाओं की रचनाओं की उपस्थिति का सवाल है, उसका सीधा-सादा जवाब यही हो सकता है कि मेरा सफ़र भटकाव का सफ़र है, उम्र के हर मोड़ पर मैं अपनी सही दिशा की तलाश करता रहा हूं. रोटी-रोज़गार के चश्मे से विगत को देखूं तो बताना पड़ेगा कि जॉब के नाम पर कभी ट्यूशनें कीं, कभी स्कूल में पढ़ाया, कभी प्रूफ़रीडरी की तो कभी सरकारी नौकरी से लगा. फिर इन सबसे अलग होकर प्रेस व्यवसाय में चौदह साल गुज़ारे, सालों साल खेतीबारी में लगा, पत्रिकाओं और पत्रकारिता से जुड़ा, संगठनों और संस्थाओं की गतिविधियों को समय दिया. कहीं न शांति मिली, न कोई विराम.

जाहिर है, एक कवि-मन को अपने घोंसले से बाहर निकल कर आदमियों का अछोर जंगल दिखा या मिला, तो अभिव्यक्ति की दिशाएं भी बदलती चली गयीं. कविता, नाटक, समीक्षा, आलोचना, कहानी, उपन्यास, संस्मरण.

० कहानियों और उपन्यासों में भोगे हुए, देखे गये, जाने-सुने अनुभवों-प्रसंगों का निवेश होना ही था, और हुआ भी.

आपके सवाल का आख़िरी सिरा बहुत उलझाने वाला है. मैं जीवन को फ़्लैशबैक में देखता हूं और वर्तमान के आईने में पढ़ता हूं. शायद सुकरात ने कहा था कि एक संतुष्ट जानवर से एक असंतुष्ट आदमी होना हमेशा बेहतर है. मैं इस बात का कायल हूं. एक और सूक्ति मुझे ताकत देती है — 'कम वाट मे' यानी जो होगा, देखा जायेगा.

० विविधवर्णी कार्यों से किस कार्य ने सबसे अधिक संतुष्टि प्रदान की है?

निष्कर्षतः मैं संतुष्ट व्यक्ति नहीं हूं. मेरी कार्यतालिका अब तक असमाप्त रह गयी है. अपने बारे में मेरा मानना है कि ज़ैक ऑफ ऑल ट्रेड्स मास्टर ऑफ़ नन, यानी इनसाइक्लोपैडिक रुझान का अर्द्धज्ञानी.

कमज़ोर लोगों की मदद कर मुझे ख़ुशी मिलती है.

० मैंने सदा मदद के लिए बढ़े आपके हाथों को महसूस किया है. आपने मित्रों के चिंदी-चिंदी पर लिखी इबारतों को जोड़ कर पुस्तक रूप में थमाया है. यह ज़ज्बा कब से, कहां से?

आपकी प्रतीति सही लगती है. यही मेरी स्वाभाविक प्रकृति है. यह भी सच है कि मैंने अपने मित्रों और सहयात्रियों के लिए अपने समय और ऊर्जा का सहज संभव उपयोग किया है. मन में यह ज़ज्बा बचपन से लेकर आज तक अटूट है. शायद इसकी बुनियाद उन्हीं दिनों पड़ गयी थी जब मैं अक्षरशः अभावग्रस्त और बेसहारा बच्चा था. अज्ञेय के शब्द याद आते हैं — 'दुःख सबको मांजता है.'

० कोई साहित्यिक चाह, जो अब भी अधूरी है?

कल तक मुझे मिर्जा ग़ालिब का शेर याद रहता था — 'हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी.... अब महाप्राण निराला अधिक याद आते हैं. मुझे उनकी यह गीति रचना बहुत आत्मीय लगती है — मैं अकेला... मैं अकेला...देखता हूं आ रही मेरे दिवस की सांध्य बेला....

द्वारा श्री नीरज कुमार,
गेट नं १, सरला बिरला यूनिवसिटी कैंपस,
महिलौंग, टाटा सिलवे, रांची-८३५१०३
मो.: ९९५५१६१४२२

अनीता रश्मि,
१ सी, डीब्लॉक, सत्यभामाग्रैंड, कुसई
बस्ती, डोरंडा, राँची, झारखंड -८३४००२
ईमेल - anitarashmi2@gmail.com
मो. : ९४३१७०१८९३

कविता

हौसला अन्वेशी

अच्छे मन के अच्छे लोग।
कहां गये वे अच्छे लोग ।।
शून्य यहां कैसे पसरा है ।
कहां खड़े हैं अच्छे लोग ।।

गांधी, नेहरू, बुद्ध कहां हैं ।
पूछ रहे हैं अच्छे लोग ।।
भगत सिंह जैसे बलिदानी ।
ढूंढ रहे हैं अच्छे लोग ।।

जिनके मन में परहित बसता ।
कहां लुप्त हैं अच्छे लोग ।।
लंपट हवा कहां से आयी ।
प्रश्न कर रहे अच्छे लोग ।।

काला मौसम काली बातें ।
समझ न पाते अच्छे लोग ।।
जीने में मुश्किल है फिर भी ।
जीते रहते अच्छे लोग।।

सोच रहे हैं समझ रहे हैं ।
कैसे आयें अच्छे लोग ।।
सुनते-सुनते तंग आ गये ।
अब बोलेंगे अच्छे लोग ।।

कहते हैं जब एक साथ सब ।
हो जायेंगे अच्छे लोग ।।
तब तो अच्छा देश बनेगा ।
आज कह रहे अच्छे लोग ।।

११ ई, सराह विला नं. २,
बाज़ार रोड, बांद्रा, मुंबई-४०००५०.
मो. : ८६५७८३४३४८.

गीत

सतपाल 'स्नेही'

जो उजाले थे वातावरण में उन्हें
अपने आनन में तिमिरों ने यूं धर लिया,
दिल सुलगता रहा, शाम ढलती रही
धीरे-धीरे अंधेरों ने घर कर लिया.

आदमी सो रहा था किसी नींद में
जब जगा तो वो बदला हुआ-सा लगा,
मन पड़ा ही रहा नींद की गोद में
तन-बदन ही उसे झेलता-सा लगा.
उग तो आयी सुबह, दिन भी निकला मगर
रात ने अपने हक़ में सफ़र कर लिया....
धीरे-धीरे अंधेरों ने घर कर लिया.

सो गये खो गये पेड़-पौधे सभी,
पत्ते-पत्ते में जिनके थीं अठखेलियां
जिनमें पानी था कम, वो भी कीचड़ हुआ.
ऐसे तालों की प्यासी मरीं मछलियां,
यूं लगा जैसे नींदों ने हर चीज़ को
प्यार से ज़ोर से बांह में भर लिया....
धीरे-धीरे अंधेरों ने घर कर लिया.

हर तरफ़ एक सुनसान छाता रहा
हर लम्हा कुछ-न-कुछ यूं गिरा टूट कर,
आदमी एकला गुनगुनाता रहा
चल पड़ें ज्यों सभी से सभी रूठ कर.
आंगनों में अंधेरों के मेले हुए
यूं उजालों ने रुख़ रात का कर लिया....
धीरे-धीरे अंधेरों ने घर कर लिया.

३६२, गली नं.-८, विवेकानंद नगर,
बहादुरगढ़-२४५०७. (हरियाणा)
मो. : ९४१६५३५६९६.

वीरांगना झलकारी बाई

✍ डॉ. राजम पिल्लै

स्वतंत्रता-सेनानी, 'एक भारतीय आत्मा', प्रतिबद्ध रचनाकार माखनलाल चतुर्वेदी की कालजयी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' में एक खिला हुआ, रंगीन, पुष्प अपनी सारी आकांक्षाओं-महत्वाकांक्षाओं को परे रखकर बनमाली - निर्माता रचयिता 'परमात्मा' से बस इतनी ही कामनापूर्ति चाहता है —

'मुझे तोड़ लेना बनमाली
उस पथ पर तुम देना फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ पर जावें वीर अनेक!'

भारत भूमि को पराधीन से स्वाधीन बनाने का संघर्ष एक अनवरत सक्रिय प्रयास था. किसी एक व्यक्ति, समुदाय या युद्ध को इसका पूरा श्रेय बिल्कुल नहीं दिया जा सकता. हां, यह तो मानव-सुलभ प्रतिक्रिया है कि वह किसी भव्य भवन के स्वर्णिम शिखरों की ओर इंगित कर उस भवन की भव्यता को सराहे, यहां तक कि भवन में प्रतिष्ठापित देवता का मूल्यांकन भी मानव-निर्मित 'गोपुरम' से किया जाए.

यह दृष्टि की दुर्बलता भी हो सकती है, विचारों की संकीर्णता भी या निरा नकद स्वार्थ भी कि नींव के पत्थरों के योगदान को लगभग नज़रअदाज़ कर दिया जाता है और रहा इतिहास लेखन वह तो बड़े नि:संकोच-भाव से केवल 'विजेता'-'शक्तिमान' की गाथाओं का संकलन भर कर देता है कई बार. अनेक बार! सो समय के बीतते-बीतते वह यथार्थ का दस्तावेज़ नहीं वरन मिथक भर बनकर रह जाता है. फिर भी... कुछ बच जाता है. 'खंडहर बताते हैं कि इमारत कभी बुलंद थी.'

श्रमिक परिवार- मेहनतकश व्यक्तित्व :

झलकारी बाई भी, ऐसा ही एक, अनेक पत्थरों में से एक पत्थर थी. सन १८५७ के 'प्रथम स्वतंत्रता युद्ध' का विरुद पाने वाले युद्ध में सम्मिलित हुई एक वीरांगना थी. जुझारू, सतर्क, रण-चातुरी से परिपूर्ण और आत्म-बलिदान के लिए सदैव तत्पर एक, कद्दावर व्यक्ति लेकिन सामान्य गिने जाते वर्ग की युवती!

'बुंदेले हरबोलों' ने अपने वाचिक-मौखिक परंपरा में जिसे यह कालजयी पंक्तियां गाकर चिरंजीवी बना दिया कि 'ख़ूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी!' - उसी झांसी की रानी मरदानी लक्ष्मीबाई की 'जनाना फ़ौज' की वह एक सिपाही थी.

जन्म, उसका २२ नवंबर १८३० को झांसी रिसायत के क़रीब के गांव में, कोली परिवार में हुआ. पिता सदोबा सिंह, माता जमुनादेवी ने ग़रीब, श्रमजीवी परिवार में जितना लाड़ प्यार दिया जा सकता है उतना दिया. कुछ सालों में मां भी नहीं रही सो उस ज़माने की लड़कियों को जो-जो ज़िम्मेदारियां सहज ही उठानी पड़ती थीं, वे झलकारी ने भी उठायी. वह घर के ईंधन के लिए, लकड़ियां काटने जंगल भी जाती थी. उसकी शादी, छोटी उम्र में ही पूरन कोली से कर दी गयी और बाद में अपने पति की ही पहचान पर शायद उसे झांसी के किले में महारानी लक्ष्मीबाई से मिलने और उनकी 'पल्टन' में शामिल होने का अवसर मिला.

साहसी, झलकारी!

झलकारी बाई का सब कुछ अन्य युवतियों-सा ही सामान्य था लेकिन दो विशेषताएं असामान्य थीं. वह बड़ी

निर्भीक, साहसी और त्वरित निर्णय लेने में माहिर थी. उसके साथ तो कथाएं जुड़ गयी थीं कि उसने कैसे हंसिया-दरांती से बाघ का सामना किया, उसे भगा दिया.

और झलकारी की दूसरी बड़ी विशेषता यह थी कि उसका चेहरा-मोहरा, क़द-काठी झांसी की रानी लक्ष्मीबाई से आश्चर्यजनक रूप से मिलता-जुलता था. जरा वेश-भूषा, बदल दी जाए तो उन्हें क़रीब से न जाननेवाले लोगों को भ्रम हो सकता था कि वे रानी लक्ष्मीबाई से रु-ब-रु हैं. और इन दोनों ही विशेषताओं ने झलकारी को सदैव के लिए मिथकीय वीरांगना बना दिया.

'रानी' झलकारी!

डॉ. राजम पिल्लै

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ सरकार के निर्णयों के खिलाफ़ विद्रोह कर दिया था. तत्कालीन सरकारी आदेश के अनुसार यदि किसी राज-रियासत के शासक की अपनी औरस संतान नहीं होती थी तो उत्तराधिकारी नियत करने का उसका अधिकार समाप्त, ख़ारिज हो जाता था. राजा यदि अपने धार्मिक नियमों के अंतर्गत भी किसी को उत्तराधिकारी बनाकर दत्तक लेता था तो उसे मान्यता नहीं मिलती थी. उसके बाद यह ईस्ट इंडिया कंपनी की अंग्रेज़ सरकार तय करती थी कि किसे वारिस नियुक्त किया जाये या उस राज्य को कंपनी के स्वामित्व में रखा जाये. झांसी के राजा गंगाधरराव की कोई औरस संतान नहीं थी. मृत्यु से पूर्व उन्होंने अपने परिवार के एक बालक को गोद लिया और उसे अपना उत्तराधिकारी झांसी का भावी शासक घोषित किया. अंग्रेज़ सरकार ने इसे नामंजूर किया और झांसी के भविष्य का निर्णय करने का अधिकार अपने हाथ में ले लिया.

रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ों के इस निर्णय को मानने से इंकार कर दिया और घोषणा कर दी, ''मैं अपनी झांसी नहीं दूंगी.'' और अंग्रेज़ों से बगावत कर लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी.

अंग्रेज़ों से युद्ध :

सन १८५७ क़ा 'ग़दर' बग़ावत युद्ध बनकर उत्तरी, मध्य भारत में जगह-जगह से फूट पड़ा. सन १८५८ में झांसी रियासत पर, अंग्रेज़ी फ़ौज ने हमला किया क्योंकि झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपने पति राजा गंगाधरराव की मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी नियुक्त करने के अंग्रेज़ों के विशेषाधिकार को मानने से इंकार कर दिया था और अंग्रेज़ जानते थे कि विद्रोही भारतीय सेना और कुछ शासकों का समर्थन रानी को मिला हुआ है. इससे पहले कि वे सभी एकजुट हो जायें, अंग्रेज़ों ने एक मज़बूत केंद्र को ही नेस्तनाबूद करने की योजना बनायी.

रानी भी तैयार थी अपनी फ़ौज के साथ जनानी पल्टन भी जिसमें शामिल थी और रानी को इस कठोर वास्तविकता का अच्छी तरह एहसास था कि यदि बाहर के मित्र राज्यों-गुटों से सैनिक सहायता नहीं मिलेगी तो झांसी उनके हाथ से निकल जायेगी. सो, पूरे अभियान के दूसरे-तीसरे चरणों-विकल्पों के बारे में अनवरत मंत्रणा होती थी और झलकारी बाई भी उन बैठकों में शामिल रहती थी. उन्होंने सोच लिया था कि अगर बाहरी मदद किसी वजह से वक़्त रहते पहुंच न पाये तो दूसरा विकल्प था — रानी को किले से बाहर निकल जाने और आगे कालपी जैसे सुरक्षित स्थान पर पहुंच जाने का अवसर दिया जाये.

आख़िरकार, वह निर्णायक घड़ी आ ही गयी. सामने, बाहर, अंग्रेज़ों की विजयी फ़ौज थी, रानी कैसे बाहर निकले? और तभी झलकारी बाई की दूसरी विशेषता रानी जैसी क़द-काठी और चेहरा-मोहरा और गौरवपूर्ण आत्मविश्वासपूर्ण, शारीरिक गतिविधियां काम आयीं. तुरंत झलकारी बाई ने रानी की सी वेश-भूषा पहन ली, अपनी और दुश्मनों की फ़ौज को विशिष्ट पहचान दिलानेवाले शिरस्त्राण, कवच पहन लिये और फ़ौज की एक छोटी-सी टुकड़ी को लेकर, वह सामने की अंग्रेज़ी, फ़ौज पर टूट पड़ी. वहां के सैनिक भ्रमित हो गये, संशय में पड़ गये. उन्हें तो बताया गया था कि झांसी की रानी लक्ष्मीबाई हार गयी है, वह अपनी बची-खुची सेना के साथ अंदर किले में घिरी हुई है और बस, किले का दरवाज़ा खोलकर या तोड़कर अंदर घुसना भर है और रानी को, फ़ौज को गिरफ़्तार कर लेना है.

पर यहां तो साक्षात वीरांगना लक्ष्मीबाई, खुली तलवार लेकर अंग्रेज़ी फ़ौज का ही विनाश करने के लिए टूट पड़ी थी.

घमासान युद्ध हुआ. रानी लक्ष्मीबाई की वेश-भूषा में वीरांगना झलकारी बाई ने लगभग पूरे दिन अंग्रेज़ी फ़ौज से लड़ाई ज़ारी रखी. जान को हथेली पर रखकर, प्राणों की बाजी लगाकर झलकारी बाई के नेतृत्व में वह छोटी-सी टुकड़ी लड़ती रही.

और दिन समाप्त होते-होते, झलकारी बाई और उनके वीर सैनिकों को इस बात पर विजय प्राप्ति जैसी ख़ुशी मिली कि 'अब तक रानी लक्ष्मीबाई कालपी पहुंच गयी होंगी, उन्हें अपने मित्र-समुदाय की सहायता मिल गयी होगी, अब वे अपनी अस्मिता, अधिकार और स्वाधीनता की रक्षा करने के संकल्प को नये जोश और उत्साह के साथ आगे बढ़ा पायेंगी.'

और आगे की संघर्ष-गाथा :

इतिहास तो यों भी झलकारी बाई के अस्तित्व से ही अनजान रहा, जनश्रुतियां भी, लोकगीत भी लगभग अनसुने ही रह गये.

झलकारी बाई की मृत्यु कब हुई, कैसे हुई? बस अनुमान-मात्र किया जाता रहा है.

१८ जून १८५८ को, ग्वालियर में अंग्रेज़ी फ़ौज से जूझते-जूझते रानी लक्ष्मीबाई ने वीरगति पायी. जनमान्यता यह रही है कि संभवत: झलकारी बाई भी आख़िरकार ग्वालियर पहुंच गयी होंगी और वहीं संभवत: ४ अप्रैल, १८५८ को उनकी मृत्यु हुई.

पर क्या, झलकारी बाई केवल स्मृति शेष रह गयीं?

इतिहास का पुनर्पाठ : 'दलित-विमर्श' और 'स्त्री-विमर्श' के ज्वलंत निष्कर्ष :

सन १९४७ को भारत देश को विदेशी शासकों के वज्र-शिकंजे से राजनीतिक आज़ादी मिली. इससे कई दशक पहले ही से भारतीय समाज की दीर्घजीवी अधिकार-प्रणाली पर प्रश्न उठने लगे थे. 'दलित विमर्श' और 'स्त्री-विमर्श' के रूप में वे प्रकट हुए.

और वीरांगना झलकारी बाई के व्यक्तित्व और कृतित्व का पुनर्मूल्यांकन किया जाने लगा.

व्यक्तिगत, संस्थागत और राजकीय स्तरों पर झलकारी बाई को उनका समुचित सम्मान प्रदान करने की मांगें उठने लगीं, लगभग आंदोलन ही होने लगे.

बुंदेलखंड की इस दलित समुदाय की कन्या-स्त्री को 'प्रति लक्ष्मीबाई' भी घोषित किया जाने लगा.

वीरांगना झलकारी बाई की अदम्य वीरता, अखंड आत्मबलिदान की भावना आज जाति, वर्ग, काल देश से ऊपर उठ चुकी है. उन्हें नमन! शत-शत नमन!

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : *pillai.rajam@gmail.com*

फॉर्म–४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत "कथाबिंब" त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :

१. प्रकाशन का स्थान	:	*पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.१ के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई–४०००७५*
२. प्रकाशन की आवर्तिता	:	*त्रैमासिक*
३. मुद्रक का नाम	:	*मंजुश्री (मंजु सक्सेना)*
४. राष्ट्रीयता	:	*भारतीय*
५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	:	*उपर्युक्त, ए–१० बसेरा, ऑफ दिन–क्वारी रोड, देवनार, मुंबई – ४०० ०८८.*
६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	:	*स्वत्वाधिकारी – मंजुश्री (मंजु सक्सेना)*

*मैं, **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

*(हस्ताक्षर – **मंजुश्री**)*

कठिन समय का दस्तावेज!

✍ सीमा जैन

मैं कैसे हंसू (कहानी संग्रह) : **सुशांत सुप्रिय**

प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन प्रा. लि., सी -५६/यू.जी.एफ. - IV, जीवन विहार अपार्टमेन्ट्स, शालीमार गार्डेन, एक्सटेंशन- II, गाजियाबाद - २०१००५.

मूल्य : ३५०/-

सुपरिचित रचनाकार सुशांत सुप्रिय के सद्यः प्रकाशित कहानी संग्रह 'मैं कैसे हंसू' में याद रखने लायक पच्चीस कहानियां हैं. सुशांत अपनी पुस्तकों में भूमिका या आत्मकथ्य प्रायः नहीं लिखते. शायद इनका मानना है जो कहना है कहानियों में कह दिया है जिसका मूल्यांकन पाठक कर लेंगे. सचमुच, पुस्तक में मूल्यांकन करने के लिए बहुत कुछ है. इतने विषय, प्रसंग, स्थितियां, घटनाएं, सूत्र हैं कि एक बृहत्तर समय की मौजूदगी दर्ज़ होती है. सुशांत सुप्रिय एक ख़बर या विचार मात्र पर क़िस्सागोई शैली में ऐसी सुदृढ़ बुनावट-बनावट के साथ कहानी रच देते हैं कि स्थिति-परिस्थिति-मनःस्थिति के कारण और कारक दोनों स्पष्ट हो जाते हैं. कहानियों का फैलाव गांव, क़स्बे, नगर, महानगर, ब्रम्हांड तक जाता है. कहानियों में उस अतीत का वैभव है जब ज़मींदार होते थे, लाट साहब, राय बहादुर जैसी उपाधियां होती थीं, पेड़, पुष्प, पवन, पानी, पर्यावरण (शुद्ध) की प्रचुरता होती थी, तो आज का वह कठिन समय भी है जब जालसाजी, मक्कारी, करोड़ों के घपले, बदनीयत, बदहाल क़ानून और व्यवस्था, असामाजिक तत्वों के उपद्रव, आतंकवादी हमले विचार और कर्म में आ गये फ़र्क के कारण असुरक्षा और भय का माहौल है. ''यह इक्कीसवीं सदी का दूसरा दशक था जब देश के अय्याश वर्ग के पास अथाह संपत्ति थी, वह ऐश कर रहा था जबकि मेहनतकश वर्ग भूखा मर रहा था.'' (कहानी - मैं कैसे हंसू), जैसी स्थिति सुशांत सुप्रिय को अधीर करती है. वे बहुत कुछ हड़पने वाले साधन संपन्न लोगों और देसीपन लिये साधनहीन लोगों के मध्य ऐसी आवाजाही बनाना चाहते हैं जब उभय पक्ष को उनका प्राप्य मिले. हम जानते हैं चापलूसी, चाटुकारिता उत्कर्ष पर है. रिश्ते-नाते स्वार्थ से प्रेरित हैं. धन और पद का दुरुपयोग हो रहा है. राजनीति और धर्म में फ़रेब आ गया है. ऐसी मनुष्य विरोधी चेष्टाओं और ख़तरनाक इरादों ने नींद में ख़लल और सपनों में भय भर दिया है, ''अक्सर सपनों में मुझे चिथड़ों में लिपटा एक बीमार भिखारी नज़र आता है जिसके बदन पर कई घाव होते हैं, जो बेतहाशा खांस रहा होता है .... देखते ही देखते वह बीमार भिखारी मेरे देश के नक्शे में बदल जाता है.'' (कहानी - मैं कैसे हंसू). ये पंक्तियां भयावह पटल नहीं बनाना चाहतीं बल्कि सबक देती हैं कि यदि चाह लें तो अब भी प्रतिबद्ध सोच और संवेदना का पुनर्जागरण हो सकता है. रोबोट में बदलते जा रहे लोगों को कर्तव्य की ओर उन्मुख किया जा सकता है.

संग्रह की अधिकांश कहानियां प्रथम पुरुष में लिखी गयी हैं. जो बिना लाग लपेट के इस सहजता से आरंभ होती हैं मानो बतकही की जा रही है, ''रेलगाड़ी के इस डिब्बे में वे चार हैं जबकि मैं अकेला हूं. वे हट्टे-कट्टे हैं, मैं कमज़ोर-सा. वे लंबे-तगड़े हैं, मैं औसत कद-काठी का.'' (कहानी - वे). इसी सहजता से हमारी दैनंदिनी में आता जा रहा विरोध, अवरोध, प्रतिरोध व्यक्त हुआ है. ''गांधी जी के विचारों को लोग नहीं अपनाना चाहते. उनकी तस्वीर ज़रूर हर नेता, अधिकारी के कक्ष और सरकारी संस्थानों में लगी रहती है,'' (कहानी - हे राम). कहानी 'हे राम' के भागीरथ प्रसाद और कहानी 'कबीरदास' के कबीरदास टोले-मोहल्ले में फैले कूड़े-करकट को तो हटाते ही हैं, वैचारिक प्रदूषण को भी ख़त्म करना चाहते हैं लेकिन लोग इनसे प्रेरित नहीं होते वरन इन्हें पागल और सिरफिरा मान कर क्रूर उपहास करते हैं कि इनके लिए पागलखाना उपयुक्त स्थान है. विडंबना है लोग स्वयं निष्क्रिय बने रहते हैं, यदि कोई सामाजिक हित में कर्तव्य करे तो उसे हताश करते हैं. इसीलिए दंगे, उपद्रव, अशांति, आगजनी, आतंकवादी

गतिविधियां इस तरह बढ़ती जा रही हैं कि तृतीय विश्व युद्ध का ख्याल आने लगा है. वस्तुतः कोई भी काल खंड दंगों से मुक्त नहीं रहा. ''श्रीकांत जिस दिन अठारह साल का हुआ उन्मादियों ने अयोध्या में बाबरी मस्जिद गिरा दी. देश में दंगे होने लगे. उसके पिता जब अठारह साल के थे १९७५ में देश में इमरज़ेंसी लगी, दंगे होने लगे... १९४७ के दंगों में दादा अठारह के थे. परदादा ने १९१९ में हुआ जलियांवाला हत्याकांड देखा.'' विरासत, दाग, हत्यारे और फिर अंधेरा आदि कहानियों में दंगों के कारण और कारक स्पष्ट होते चलते हैं. 'दाग' का खालिस्तान का मूवमेंट चला रहा जसवीर, सुरिंदर को अपने समूह में भर्ती कर लेता है. सुरिंदर (पुलिस का मुख़बिर है) की सूचना पर जसवीर और कई सरदारों को मुठभेड़ में पुलिस मार गिराती है. सुरिंदर की आत्मा उसे जीवन भर धिक्कारती है कि जिस जसवीर ने कभी उसकी जान बचायी थी उसने उस जसवीर के साथ गद्दारी की. 'हत्यारे' के राकेश शर्मा को रजत शर्मा समझ कर गुंडे मारते-पीटते हैं. यह वस्तुतः राकेश शर्मा है ज्ञात होने पर उसे धमका कर चले जाते हैं. देश और देश के बाहर बनती ऐसी हिंसक स्थितियों से तृतीय विश्व युद्ध की आशंका को बल मिलता है. ''इतने दिनों से यहां सूरज नहीं उगा. चारों ओर घुप्प अंधेरा है. सूरज की गर्मी के बिना ठंड बढ़ती जा रही है. परमाणु युद्ध की वजह से धरती पर बहुत समय के लिए न्यूक्लियर विंटर आ जायेगी. सारे जीव-जंतु, पेड़-पौधे नष्ट हो जायेंगे. हवा जहरीली होती जा रही है. चारों ओर कड़वा धुंआ फैला हुआ है. पीने का पानी बदबूदार हो गया है. उबालकर पीने के बावजूद हमें उल्टी हो रही है. मेरी मम्मी ने मरे हुए बच्चे को जन्म दिया. उसके हाथ-पैर नहीं थे. यह परमाणु हथियारों के इस्तेमाल से होने वाले रेडिएशन की वजह से हुआ.'' यदि शांति की ओर वापसी न की गयी तो कोई गजब नहीं कहानी 'और फिर अंधेरा' की चकित बल्कि आक्रांत करती यह विभीषिका भविष्य की व्याख्या बन जाए. वस्तुतः संग्रह का विषय वैविध्य चकित करता है. कहानी 'एक दिन अचानक' का कथा नायक और 'लौटना' की कथा नायिका लाइफ़ सपोर्ट सिस्टम पर हैं लेकिन मृत्यु को पराजित कर जीवन में लौटते हैं. 'भूकंप' की मलबे में दबी ग्यारह साल की मीता मृत्यु को पराजित नहीं कर पाती. तीन दिन तक क्रेन की प्रतीक्षा कर दम तोड़ देती है. 'एक उदास सिम्फनी' और 'इंडियन काफ्का' में घर-बाहर उपेक्षा और मानसिक प्रताड़ना से गुज़रते बेरोज़गार युवकों की अस्थिरता, छटपटाहट, हताशा इस तरह व्यक्त हुई है, ''समय मुझे बिताता जा रहा है. मैं यूं ही व्यतीत हो रहा हूं. मेरा होना भी जैसे एक नहींपन में बदलता जा रहा है. सिगरेट मुझे कश-कश पी रही है. जीवन के कैलेंडर के एक और दिन ने मुझे ख़र्च कर लिया है.'' 'छुईमुई' में उच्च व निम्न वर्ग का आदिम विभेद है. पारिवारिक-सामाजिक दबाव के वशीभूत कथा नायक बचपन में निम्न वर्ग के बच्चों की मदद नहीं कर पाता पर बड़ा होकर एन. जी. ओ. स्थापित कर उनके उत्थान का यत्न करता है. 'चिकन' का बड़ी रुचि से चिकन ख़रीदने आया जिंदर कत्ल होने जा रहे मुर्गे की आंखों में कातरता और जीने की चाह (भले ही वह दड़बे का जीवन है) को देख कर चिकन ख़रीदना स्थगित कर देता है. 'बाघ' का सूरज मल्टिपल पर्सनालिटी डिसॉर्डर से पीड़ित है. दिन में सभ्य व्यक्ति, रात में बाघ की भांति आचरण करता है. सूरज मनोचिकित्सक से उपचार करा रहा है तथापि उसके आचरण से प्रेमिका भ्रमित है उससे विवाह करे अथवा नहीं. कहानी में पांच अंत दिये गये हैं कि पाठक किस अंत को सर्वाधिक उचित समझते हैं. मेरी राय में पाठक ''मनोचिकित्सक की दी गयी दवाइयों की वजह से सूरज बिल्कुल ठीक हो जाता है. निशि के साथ सुखमय जीवन व्यतीत करने लगता है.'' जैसे धनात्मक अंत की अनुशंसा कर उस पारिवारिक-सामाजिक-मानवीय मूल्यों को मज़बूत करना चाहेंगे जिनको इस संग्रह की कहानियां बचाये रखना चाहती हैं.

हमला, स्पर्श, उड़न तश्तरी, क़िताबों की आल्मारियां, पूर्वज और पिता आदि आभासी संसार की कहानियां हैं. इनका फंतासी शिल्प देखने जैसा है. कहानियां काल्पनिक हैं पर क़िस्सागोई शैली में कथ्य-कल्पना की जो संगति बैठायी गयी है वह कहानियों को रोचक बना देती है. 'क़िताबों की आल्मारियां..' में उन आल्मारियों में आग लग जाती है जिसमें पुस्तक प्रेमी पिता की पुस्तकें और पांडुलिपियां रखी हैं. आग बुझाते हुए पिता अदृश्य हो जाते हैं. फिर कभी दिखाई नहीं देते, ''क्या आल्मारियों में आग लगने पर वहां समय में कोई गुप्त पोर्टल, कोई रहस्यमय कपाट खुल गया था जिनसे होकर पिता अपनी विरल क़िताबों और पांडुलिपियों समेत पूर्वजों की दुनिया और समय में सुरक्षित चले गये?'' जैसी जबरदस्त फंतासी और भी कहानियों में है पर समीक्षा

की एक स्थान सीमा होती है. सभी की चर्चा संभव नहीं हैं इतना ज़रूर कहूंगी सुशांत सुप्रिय कम शब्दों में संपूर्ण ध्येय को व्यक्त कर देते हैं. इसीलिए कहानियां आकार में छोटी हैं पर प्रयोजन बड़े हैं. कम शब्दों में ध्येय स्पष्ट करने के लिए जो तराश और करीना अपरिहार्य है उसे सुशांत अच्छी तरह समझते हैं. यह उनका अपना ढंग है. अपनी व्याख्या है.

आशा है यह कहानी संग्रह कथा जगत को समृद्ध करेगा.

द्वितीय तल, फ्लैट नं. ७, रीवा रोड,
सतना -४८५००१. (म. प्र.)

समय के साथ-साथ

शशि कांडपाल

समय की लकीरें (पत्र-संग्रह) : **रूपसिंह चंदेल**
प्रकाशक : श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४, अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००९३. **मू.** ६०० रु.

नानी के घर जाने पर रात में, दो किलोमीटर नीचे बहती, रामगंगा नदी की कलकल सुनाई देती. रोज़ की आदत न होने से आवाज़ अच्छी तो लगती लेकिन नींद न आती, ऐसे में नानी कोई कहानी सुनाओ की इल्तिजा शुरू हो जाती. नानी हम बच्चों को हमेशा कुछ नया सीखने वाली कहानियां सुनाया करतीं. वो शुरू हो जातीं, 'अच्छा सुनो एक था हरकारा...'

हरकारा? ये क्या होता है?

हरकारा जो पत्र इधर-उधर ले जाता था उसकी जगह अब डाकिये आ गये हैं. हरकारा बड़ी-बड़ी दूरियां तय करता था और रात को भी चलता रहता था. उसकी जांठी में घुंघरू लगे होते थे जिससे लोगों को पता चल जाता था किसी की सुख-दुख की पाती लेकर हरकारा जा रहा है.

हम फिर टोकते नानी जांठी क्या है?

जांठी माने हाथ की लाठी और हम रंगबिरंगे हरकारे की कल्पना करते, बूझते कब सो जाते कि सुबह ठंड और रामगंगा की कलकल से नींद खुलती. फिर गांव में डाकिया देखा जो चिट्ठी, पत्री, मनीऑर्डर लाता. अनपढ़ों के पोस्टकार्ड पढ़ भी देता और उत्तर लिखकर पोस्ट बॉक्स में डालने ले भी जाता. डाकिये के आने का सबको बड़ा इंतज़ार होता. धीरे-धीरे ये जगह मेल, फोन, मैसेज़ ने ले ली और पत्रों की उपयोगिता उनके देरी से आने के कारण ख़त्म-सी होती गयी, लेकिन क्या सचमुच पत्र महत्व नहीं रखते? पत्र आज भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं बल्कि इस काल में तो और ज़्यादा ही हैं. भाषा, लगाव, कालखंड का जीता जागता सबूत हैं. आधुनिक तरीक़ों में सब कुछ है बस न लगाव है न बार-बार पढ़कर मुदित होने का आनंद !

कुछ दिन पूर्व कथाकार रूप सिंह चंदेल की क़िताब 'समय की लकीरें' मिली जैसा कि क़िताब का निचोड़ जानने हेतु भूमिका की अपनी महत्ता है लेकिन ये भूमिका तो पूरा पत्रों का इतिहास थी. ईसा से पांच हज़ार वर्ष पूर्व प्रारंभ हुई चित्रलिपि के उपयोग के बाद ही आज हम आधुनिक लिपि तक पहुंचे हैं और इसी लिपि के प्रारंभ के बाद पत्रों का आदान-प्रदान शुरू हुआ होगा. हर्षचरितम में पत्रवाहक के लिए लेखहारक शब्द का इस्तेमाल हुआ है जबकि अभिज्ञान शाकुंतलम में शकुंतला की सखियां शांतनु को पत्र भेजने के लिए प्रोत्साहित करती हैं. श्रीमद् भागवत में रुक्मिणी द्वारा कृष्ण को पत्र लिखे जाने की बात है. अंग्रेज़ों में सर्वप्रथम निजी पत्रों को प्रकाशित करने का श्रेय अलेक्ज़ेंडर पोप को है. भारत की पत्र व्यवहार की व्यवस्था को सुचारु शेरशाह सूरी ने बनाया और आधुनिक डाक व्यवस्था लॉर्ड डलहौजी ने प्रारंभ की.

कुछ प्रसिद्ध पत्राचारों में चित्रकार 'वॉनगाग' का अपने छोटे भाई को हज़ारों पत्र लिखे जाने की घटना है जिसे 'लस्ट फॉर लाइफ़ के नाम से संपादित किया गया और उसके आत्मकथ्य की कहानी बना. हिंदी साहित्य में पत्रों के प्रति गंभीर दृष्टिकोण का परिचय पंडित बनारसी दास ने दिया. उन्होंने लगभग एक लाख पत्रों को संग्रहीत कर कुछ को प्रकाशित करवाया. कथाकार रूप सिंह चंदेल बताते हैं कि उनका पत्राचार साहित्यकारों से १९७८ से प्रारंभ हुआ और तबसे पत्रों का सिलसिला चल निकला हालांकि किराए के मकान बदलने से काफ़ी कुछ नष्ट हो गये फिर भी १९८१ से २०११ तक के वरिष्ठ, समकालीन तथा अपने बाद की पीढ़ी के साहित्यकारों के एक हज़ार से ज़्यादा में से ५०० पत्र ही बच पाये. उनमें से ५९ लेखकों के २४० पत्र इस संकलन में प्रकाशित हुए हैं.

ये पत्रों की क़िताब पढ़ने में आधा दिन उस भावनात्मक लगाव को समझने में लग गया जो पत्रों की आत्मा हुआ

करते थे. वो आशीष, प्रेम,शब्दावली अब अन्यत्र मिलना असंभव है. पत्रों के माध्यम से सबके जीवन ऐसे जुड़े हुए थे मानों मनकों की माला. घर बच्चे, साहित्यिक जीवन,साहित्यिक जगत की दुश्वारियां सभी इन पत्रों में समाहित हैं. उलाहना भी है तो मान मनव्वल भी है. समय का हिसाब तो है ही जो अपने आप में एक इतिहास होगा कि उस काल खंड में कौन-सी क़िताबें छपीं, कौन सी पत्रिकाएं छप रही थीं. कितने महत्वपूर्ण लेखन हो रहे थे?

क़िताब की शुरुआत में ही विष्णु प्रभाकर जी के पत्र हैं. मेरे प्रिय लेखक डॉ. शिवप्रसाद जी के पत्र हैं. जिन्हें पढ़कर पता चलता है कि कथाकार को किस वटवृक्ष का प्रेम मिला था. उच्च स्तरीय भाषा प्रयोग पत्रों को ऐतिहासिक बनाता है. प्रिय चंदेल से शुरू हो प्रिय भाई और प्रिय रूप तक पहुंचा संबोधन रिश्ते की प्रगाढ़ता को दर्शाता है. चंदेल नाम से मज़ाक करते हुए शिवप्रसाद जी लिखते हैं, 'आपको कहीं नीला चांद के कीर्ति वर्मा चंदेल के गौरव गान ने आकृष्ट तो नहीं कर लिया? क्योंकि मुझ पर यह कहा जा रहा है कि मैंने यह उपन्यास अपने वंश की प्रतिष्ठा के लिए लिखा जबकि मुझे तो पता ही नहीं था कि ये सम्मान पाने की हैट्रिक करेगा. शिवप्रसाद जी के अड़तालीस पत्रों के साथ उन्होंने अपने रिश्ते और प्रेम का रेशा-रेशा खोला है. आज तक भवदीय के स्थान पर कई संबोधन पढ़े, देखें हैं लेकिन 'सस्नेहाधीन' का संबोधन रिश्तों की पराकाष्ठा है, मैं तुम्हारे स्नेह के आधीन! तमाम काम, सुझाव, उलझनों को साझा कर कहते हैं, 'मेरे लिए तो तुम दिल्ली के समाचारों के लिए सूचना कॉउंटर बन गये हो.' 'सब छोड़-छाड़ कर लेखन में मन लगाओ तुम्हारे अंदर क़िस्सागोई की प्रतिभा है,' मतलब कृतित्व पर पूरी नज़र रहती थी. एक सलाह देते हुए लिखते हैं, 'लेखक की स्पृहा होनी चाहिए, शिवप्रसादी टच, जिसकी कोई नकल नहीं कर सकता तुम भी रूपीयटच लाओ, चिरकुट लोगों के कहने से उदासी कैसी? तुम आगे बढ़ो, पहली पंक्ति में गिने जाना एक साधना से मिलता है. 'चंदेल सर को कितना बड़ा संबल मिला होगा!'

कमलेश्वर लिखते हैं, 'आप तो खुद आज की कहानी के मार्मिक सृजेता हैं उसी दृष्टि से आपने कोहरा की कहानियों को देखा और परखा है.' आगे लिखते हैं, 'मेरा कोई भी शब्द कमज़ोर हो सकता है लेकिन वह मेरे पसीने से नहाया हुआ शब्द है.' यह एक दूसरे के प्रति सम्मान है. ज्ञानरंजन जी रमला बहू की भूरि-भूरि प्रशंसा कर कहते हैं 'आपके उपन्यास का शिल्प की कलात्मक गुणवत्ता अच्छी है. आपने अपनी रचनात्मक मशक्कत से अपना स्थान बनाया है एक रचना किसी को पसंद/नापसंद हो सकती है इससे विचलित और क्षुब्ध होने की ज़रूरत नहीं है.'

मधुरेश जी डाक खोने की बाबत बताते हैं तो अपने रिटायरमेंट के बाद की चिंताओं सहित रचनाओ पर चर्चा करते हैं. उनतीस पत्रों में एक लंबा रिश्ता दिखता है. हृदयेश जी से भी लंबा पत्राचार है. वो अपनी समस्याएं बताकर घनिष्ठ संबंध का परिचय देते हैं और सहयोग मांगते हैं. 'आपको बार-बार स्वार्थवश कष्ट देते हुए बड़ा संकोच होता है,' लेकिन ऐसा संबंध गहरे लगाव का द्योतक है यहां तक कि चंदेल जी ने अपना कहानी संग्रह उन्हें समर्पित किया था. हृदयेश जी उपन्यासों, बिठूर से खासा प्रभावित होने की बात लिखते हैं और पुरस्कृत होने पर बधाई भी. कुल सत्ताईस पत्र अलग कहानी कहते हैं और उनका 'सआत्मीय नमस्कार' लिखना अनूठा लगा.

प्रकाश जैन जी का अति संक्षिप्त पत्र अनूठा है उदाहरणार्थ :

'भाई,

कार्ड. कहानी. पते. आभार.

लहर के फैलाव में सहयोग.

अभिशप्त स्वीकृत है?

रमेश उपाध्याय, श्रीनाथ, चंचल चौहान, जगदीश चंद्र, कलाधर सभी रचनाओं के पारखी और तब की वर्तमान स्थिति पर अपने विचार रखते दिखते हैं, नमिता सिंह 'कथाबिंब' में प्रकाशित 'आत्मकथ्य' की साफ़गोई और बेबाकी से प्रभावित हो पत्र लिखने को मज़बूर हुईं. एस. एल. भैरप्पा के दो पत्र अंग्रेज़ी में हैं. राजपाल एंड संस के विश्वनाथ जी कमलेश्वर के उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' की समीक्षा की भूरि-भूरि प्रसंशा करते हैं.

सबसे रोचक पत्र १४ मार्च १९९५ को डेसू की चोरी रोकने के उपाय से सुझाव संबंधित मदन लाल खुराना, तात्कालिक मुख्यमंत्री का धन्यवाद पत्र है. मतलब कथाकार सामाजिक दायित्व के प्रति भी सजग थे जिसका मुख्यमंत्री ने धन्यवाद किया है. सुमति अय्यर ने भी अपने दो अपेक्षाकृत लंबे पत्रों में प्रकाशन हेतु सुझाव मांगे हैं. बालकृष्ण बलदुआ, कन्हैयालाल नंदन, गोविंद मिश्र, विश्वनाथ (धर्मयुग संपादक),

प्रतिभा राय, शौरीरंजन, योगेंद्र कुमार लल्ला, यादवेंद्र शर्मा चंद्र, डॉ. रत्न लाल शर्मा, सुभाष नीरव, अशोक गुप्ता, अजीत कौर, हिमांशु जोशी जी के पत्र भी उल्लेखनीय हैं.

'मैं दस साल का था जब भारत का विभाजन हुआ था खस्ता हालत में हम दिल्ली आये. धर्मशालाओं और कैंपों में भटकते रहे. टायलेट जाने के लिए तीस, चालीस लोगों की कतार लग जाती थी. सुबह की रोटी है तो शाम की नहीं, लेकिन पाकिस्तान को करोड़ों रुपये दिये जा रहे थे. शरणार्थियों के लिए नयी दिल्ली जाना वर्जित था, यह गांधी का फरमान था. यह आपबीती है प्राण शर्मा जी की, जो रोंगटे खड़े कर देती है. आगे लिखते हैं....

'गर भूल जाऊं हर निशानी आपकी मुमकिन है,
पर भूल जाऊं मेहरबानी आपकी मुमकिन नहीं.'

बीच में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, शैलेश मटियानी, डॉ. प्रभाकर श्रोतीय, कमर मेवाड़ी जी के विचार भी समय-समय पर पहुंचते रहे हैं.

वर्तमान समय में बदलते माध्यमों के बीच भी जो मित्र मुझे दिखते हैं उनमें डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' जी का नाम प्रमुख है. १० जनवरी ९२ के लिखे पत्र में उल्लेख है कि 'कथाबिंब' नियमित प्रकाशन के चौदहवें वर्ष में प्रवेश कर रही है. परिस्थितियों के अनुकूल-प्रतिकूल बहाव में भी यदि कथाबिंब ने अपना बुनियादी रास्ता नहीं छोड़ा तो इसके पार्श्व में सिर्फ़ और सिर्फ़ आप जैसे नामों का परोक्ष अथवा अपरोक्ष सान्निध्य ही है' इससे ज़्यादा आदर की बात क्या होगी! कभी कमलेश्वर जी का इंटरव्यू लेने का आग्रह तो कभी मौसम की जानकारी कुछ इस तरह...' शेष सामान्य है. बारिश ने अभी ज़ोर नहीं पकड़ा है. काफ़ी शालीन तरीक़े से पानी कभी-कभी बरस जाता है,' इससे ज़्यादा शालीनता एक पत्र की क्या होगी! उनकी बात आज कितनी सच है कि 'आज जो लोग आपको नकार रहे हैं वे ही कल हाथ जोड़ कर माफ़ी मांगेंगे.'— आपका अरविंद.

सुनील कौशिश से भी प्रेम भरे पत्रों का वार्तालाप है जिसमें उन्होंने पत्रों के उत्तर न दिये जाने पर 'बहुत नकारा आदमी हैं आप' तक कह दिया था, इतनी छूट एक बेहतरीन रिश्ता ही ले सकता है.

डॉ. राष्ट्र बंधु 'महानगर की व्यस्तता ने तुम्हें कैसा बना दिया! फ़ुर्सत नहीं कि बाल साहित्य समीक्षा मिलते रहने के प्रत्युत्तर में कुछ लिख सको.' 'भारतीय बाल कल्याण संस्थान का १७वां सम्मान समारोह कानपुर बेनाझाबर में आयोजित है, इसमें आपको सम्मानित करके गौरवान्वित होना चाहता हूं,' लेकिन कथाकार रूप सिंह चंदेल ने इस संस्था से जुड़े होने के कारण यह सम्मान कैसे ले सकता हूं कहकर टाल दिया. राष्ट्र बंधु एक मात्र उद्देश्य बाल साहित्य को जन-जन तक पहुंचाना था. वे लिखते हैं, 'मैं प्रशंसा का भूखा नहीं लेकिन तुम्हारे स्नेह का भूखा ज़रूर हूं और ये अपेक्षा इस जन्म में नहीं छोड़ सकता.'

चंद्र किशोर जायसवाल 'मुहिम' के पीछे काफ़ी परेशान दिखे और पत्र लिखकर खेद भी जताया कि 'अपने साथ आपको भी इस आग में झोंक दिया है, इसका प्रायश्चित तो मुझे कभी करना ही पड़ेगा.'

रामधारी सिंह दिवाकर, सुधीर विद्यार्थी,अरविंद कुमार, वासुदेव, तरुणलता गौतम,सत्यव्रत शर्मा, मधु सहगल, शंकर सुल्तानपुरी, विजय कुमार देव, सुधीर कुमार सिंह, डॉ. राजनारायण राय, भीखी प्रसाद वीरेंद्र, अंजना अनिल, प्रेमचंद गर्ग, प्रेमशंकर शर्मा, यज्ञ दत्त शर्मा 'प्रशांत' के पत्र भी अपनी रचनाओं के उल्लेख, कथाकार की रचनाओं की प्रशंसा और साहित्य जगत में हो रही उथल-पुथल के बारे में लिखे गये हैं.

पत्र अपने आप में बहुत शक्तिशाली होते हैं यह इस क़िताब को पढ़कर महसूस हुआ. संबंधों को पहचानने,नापने का पैमाना हैं ये पत्र. संबंधों की प्रगाढ़ता तो अवश्य रही है तभी पत्राचार का तारतम्य बन पाया. आश्चर्य कि सारे दोस्त हर पत्र में एक ना एक काम पकड़ा देते थे ये उनकी मज़बूरी भी थी क्योंकि दिल्ली में बैठा व्यक्ति सूचनाओं तथा कार्यालयों से नज़दीक था लेकिन चंदेल सर ने कैसे घर गृहस्थी,नौकरी होते हुए इतने कामों का अंजाम दिया? काम ज़रूर पूरे किये होंगे तभी तो ज़्यादातर पत्र धन्यवाद स्वरूप आये हैं. इतना लोकप्रिय होने की कुछ तो क़ीमत अवश्य रही होगी लेकिन उस क़ीमत के साथ जो साथ, प्रेम, प्रोत्साहन, प्रशंसा, संबंध कथाकार ने कमाए हैं वे अद्वितीय हैं. यह क़िताब बीते हुए कल की मिठास है क्योंकि अब टंकित पत्र भी मिलने दूभर हैं और यह हमेशा पढ़ने वालों में ख़ुशी, आशा, मित्रता की ताकत का संचार करती रहेगी. ऐतिहासिक क़िताब को अंजाम देने के लिए, अतीत को संजो कर रखने के लिए कथाकार रूप सिंह चंदेल बधाई के पात्र हैं साथ में धन्यवाद के भी!

✍ *१४/१००५, इंदिरानगर,*
लखनऊ- २२६०१६

एक बेहतरीन और बेहद पठनीय उपन्यास

✍ सूरज प्रकाश

छूटा हुआ कुछ (उपन्यास) – **डॉ. रमाकांत शर्मा**
प्रकाशक - स्टोरी मिरर इंफ़ोटेक प्रा. लि., १४५, पहली मंज़िल, पवई प्लाज़ा, हीरानंदानी गार्डन्स, पवई, मुंबई-४०००७६ **मूल्य :** ३५०/- रुपये

एक नायक और एक नायिका है. ये ऐसे वैसे नहीं हैं जैसे हम हर दूसरी फ़िल्म में और तीसरी प्रेम कहानी में देखते हैं. नायिका रिटायर्ड टीचर हैं और नायक रिटायर्ड अहलकार. दोनों पति-पत्नी हैं. कई बरस पहले उनका विवाह हुआ था, इतने पहले कि उनका बेटा प्रशांत पढ़ाई करके विदेश में बसा हुआ है और वहीं उसने विवाह भी कर लिया है.

नायक-नायिका बेशक पति-पत्नी हैं, पर वे दोनों इस रिश्ते में इतने औपचारिक हैं कि पतिदेव अपनी पत्नी को 'उमा जी' कह कर बुलाते हैं. इस संबोधन से ही आसानी से समझा जा सकता है कि दोनों के रिश्ते में कितना कुछ अनकहा और अनसुना रह गया होगा.

पतिदेव समय गुज़ारने के लिए वकीलों के लिए ड्राफ़्ट बनाते रहते हैं और उमा जी जो हैं, वे पति की ज़रूरतें पूरी करने बाद बचे समय में प्रेम कहानियां पढ़ती रहती हैं और उन कहानियों में आए क़िस्सों से खुद की तुलना करती रहती हैं. इस बहाने वे अपने स्कूल के दिनों की एक सहेली के जीवन के अधूरे प्रेम को भी याद करती हैं.

वे खुद को देखती हैं और सोचती हैं कि काश उन्हें भी किसी ने प्रेम किया होता. पति देव ने उनके प्रति पूरी तरह समर्पित होते हुए भी प्रेम के दो बोल नहीं बोले और वे खुद पति के प्रति आस्थावान होते हुए भी कभी पति से अपने मन की भावनाओं को अभिव्यक्त नहीं कर पायीं. घर की ज़रूरतों को पूरा करने में ही उनका पूरा जीवन चला गया. पतिदेव हैं कि अभी भी अपने कामकाज के सिलसिले में सारा दिन व्यस्त रहते हैं. पति की ज़रूरतें पूरी करने के बाद उमा जी के पास समय ही समय है, जिसमें उन्हें प्रेम कहानियां पढ़ना बहुत अच्छा लगता है. इसकी वजह यह भी है कि उन्हें ना तो कभी किसी ने प्रेम किया और ना ही वे किसी के प्रेम में पड़ पायीं. उनकी बचपन की एक सहेली ज़रूर प्रेम में पड़ गयी थी और उसका अंजाम बुरा ही हुआ था.

उमा जी जो भी प्रेम कहानी पढ़ती हैं उसे खुद से या अपनी सहेली से जोड़कर देखती हैं. अगर ऐसा हुआ होता तो क्या हुआ होता, अगर वैसा हुआ होता तो क्या हुआ होता. तभी उनकी ज़िंदगी में बदलाव आता है. अध्यापन के दिनों में उनके साथ काम करने वाला एक रिटायर्ड अध्यापक उनसे फ़ोन पर बात करता है, धीरे-धीरे उनके मन को टटोलता है और उन्हें मित्र बनाने का प्रस्ताव रखता है.

उमा जी घबराती हैं कि इस उम्र में यह सब क्या हो रहा है, लेकिन उनका जीवन इतना नीरस और प्रेमविहीन है कि वे इस प्रस्ताव को अस्वीकार नहीं कर पातीं और धीरे-धीरे पहले लैंडलाइन और फिर मोबाइल पर उनकी बातें होने लगती हैं. ये महोदय अपनी बातों के जरिए उमा जी के दिलो-दिमाग़ की खाली जगहों पर और उनकी अधूरी हसरतों पर अपना कब्ज़ा जमाने लगते हैं. उमाजी उनकी प्रेम-पगी बातों से प्रभावित होती हैं और उनके संदेशों का इंतज़ार करने लगती हैं. यह मामला इतना आगे बढ़ जाता है कि वे पति से छुपाने के लिए उसका फ़ोन नंबर भी अपनी सहेली के नाम से सेव कर लेती हैं. एक-दो बार पति शक भी करते हैं, पर उमा जी बहाना बना कर टाल जाती हैं. वे जानती हैं कि यह सब करने की उनकी उम्र नहीं है, लेकिन प्यारभरे बोलों का आकर्षण इतना बड़ा होता है कि वे जोखिम लेती रहती हैं. ये महोदय उन्हें मोहब्बत भरे संदेश फारवर्ड करते रहते हैं, जरा बानगी देखिए —

- ओ. के. अब मैं आपको गुड मॉर्निंग और गुड नाइट जैसे संदेश भेज सकूंगा, यह तो बहुत अच्छा हो गया.
- आपकी सादगी और भोलेपन में अद्भुत सौंदर्य है.
- दोस्ती और अच्छे संबंधों के लिए चाहिए ख़ूबसूरत दिल और न टूटने वाला विश्वास.
- ज़िंदगी का सबसे लंबा सफ़र एक मन से दूसरे मन तक पहुंचने का होता है और इसी में सबसे ज़्यादा समय लगता है.
- ज़िंदगी बहुत तेज़ी से गुज़रती है, इसका एक-एक क्षण कीमती है. हर पल को जीना और उसका आनंद उठाना चाहिए. कोई भी उम्र किसी भी काम के लिए ग़लत उम्र नहीं

हो सकती. नये रास्ते और नये तरीक़े ढूंढ़ने में उम्र कभी आड़े नहीं आती. मुख्य चीज़ यह है कि जिस चीज़ में, जिस बात में हमें ख़ुशी मिले उसे अंगीकार करें. हां, किसी भी ग़लत काम के लिए तो हर उम्र ग़लत है.

- रूहानी प्यार की पवित्रता को दैहिक प्यार के क्षणिक सुख के तराजू में रख कर नहीं तोला जा सकता. ज्ञान और सूचना का अंतर समझ आना चाहिए.

- सच्चा दोस्त मिलना क़िस्मत की बात होती है, ऐसा दोस्त आपके दिल पर अपने क़दमों के न मिटने वाले निशान छोड़ता है और आप कहीं भी रहें उसकी याद हमेशा आपके साथ रहती है.

- मीठी ज़ुबान, अच्छे व्यवहार, ख़ुशमिजाज और दूसरे के मन की बात आसानी से समझ लेने वाले लोग किसी के भी दिल में सहज ही जगह बना लेते हैं, जैसे आप.

- क्या प्यार को ज़िंदा रखने के लिए रोमांस और शारीरिक निकटता ज़रूरी है? क्या सिर्फ़ बातों के बल पर प्यार को ज़िंदा रखा जा सकता है?

यह सब चल ही रहा था कि उनके बेटे का अमेरिका से बुलावा आ जाता है, वे वहां जाने की तैयारी के साथ यह भी सोचती जाती हैं कि वे उन अध्यापक महोदय से संपर्क किए बिना वहां इतने दिन कैसे गुज़ार पाएंगी.

लेकिन जो होना होता है, वही होता है. आगे क्या होता है, मैं यहीं अपनी बात समाप्त करते हुए आपके लिए छोड़ देता हूं ताकि आप ख़ुद पढ़कर उसका आनंद उठा सकें.

यह उपन्यास चालीस वर्ष से अधिक के लंबे समय से मेरे मित्र, सहकर्मी और एक तरह से मेरे बड़े भाई डॉ. रमाकांत शर्मा ने लिखा है. वे अब तक ७६ कहानियां लिख चुके हैं. उनके पांच कहानी संग्रह, एक व्यंग्य संग्रह, तीन उपन्यास और एक अनूदित कहानी संग्रह प्रकाशित हैं. बैंकिंग, प्रबंधन और अर्थशास्त्र जैसे विषयों पर भी उनकी ७ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं.

उनकी पहली कहानी १९६२ में बहुत छोटी उम्र में उस समय की सबसे लोकप्रिय बाल-पत्रिका 'पराग' में प्रकाशित हुई थी. उन्होंने जब बड़ों के लिए लिखना शुरू किया तो पहली कहानी 'नवनीत' में प्रकाशित हुई. वे कुशल अनुवादक हैं और बहुत विनम्र, मिलनसार और शांत व्यक्ति हैं और यही बात उनकी रचनाओं के पात्रों पर भी लागू होती है.

मैंने बताया ही है कि लेखन की शुरूआत उन्होंने बाल-कहानियां लिखने से की थी, ऐसी आदर्श बाल-कहानियां, जिनमें अच्छे बच्चे हाथ पकड़कर स्कूल जाते हैं. फिर वे बड़ों के लिए कहानियां लिखने लगे. जैसा कि मैंने उल्लेख किया है वे बच्चों की कहानियों को छोड़कर अब तक ७६ कहानियां लिख चुके हैं. उनकी कहानियां संवेदनाएं जगाती हैं और मन को छूती हैं. ऐसी कहानियां जिन्हें पढ़कर हम पात्रों के साथ एकाकार होकर रोने लगें. उनकी ज़्यादातर कहानियों में खलनायक नहीं होते, अगर होते भी हैं तो उनका अंजाम बुरा होता है. उनकी कहानियों में हमेशा एक संदेश हुआ करता है और वह भी बिना लॉउड हुए.

अपना लेखन शुरू करने के लगभग ४५ वर्ष बाद उन्होंने यह बोल्ड उपन्यास लिखा है और वह भी सोशल मीडिया के प्रभाव, दुष्प्रभाव को सामने रखकर.

उपन्यास 'छूटा हुआ कुछ' एक बेहद पठनीय उपन्यास है. यह हमें बताता है कि सोशल मीडिया बेशक हमारी ज़िंदगी में आकर हमारे बहुत सारे खाली खाने भरता है, लेकिन उसके दुष्परिणाम भी कम नहीं हैं. वह हमारे संबंधों को किस तरह तहस-नहस कर जाता है और हमें पता भी नहीं चलता कि हम कहां से शुरू करके कहां पहुंच गये हैं. रमाकांत जी ने यह बात बड़े मेच्योर तरीक़े से और बिना सलाहकार बने बतायी है और यही उनकी ख़ासियत है.

मैं उन्हें इस बात के लिए बधाई देना चाहूंगा कि उन्होंने इस विषय को अपने उपन्यास की कथावस्तु का आधार बनाया है और उसे आगे बढ़ाया है. नि:स्संदेह वे एक बेहतरीन उपन्यास लेकर हमारे सामने उपस्थित हुए हैं. वे इस उपन्यास के जरिए बिना कोई संदेश दिए, बिना कोई आदर्श हम पर थोपे स्थितियों के जरिए हमें बताना चाहते हैं कि आख़िर वह परिवार ही होता है, वे अपने रिश्ते ही होते हैं जो अंत तक हमारे साथ चलते हैं. बाहर के आकर्षण कितने भी बड़े हों, वे बाहर के ही होते हैं और हमारा हाथ थामकर जीवनभर साथ नहीं चल सकते.

मैं विश्वास करता हूं कि डॉ. रमाकांत शर्मा इस गति को बनाए रखेंगे और उनकी क़लम से निकली और भी बेहतरीन रचनाएं हमें पढ़ने को मिलती रहेंगी.

ए-१ १०१, रिद्धी गार्डन, फ़िल्म सिटी रोड, मलाड (पूर्व), मुंबई–४०००७२,
मो. : ९९३०९९१४२४

आपके अपने पुस्तकालय के लिए ज़रूरी पुस्तकें

पत्रों का संकलन

मूल्य : ६०० रु.

श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४,
अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली-११००९३.
e-mail: shrisahityaprakashan@gmail.com

मूल्य :
४०० रु.

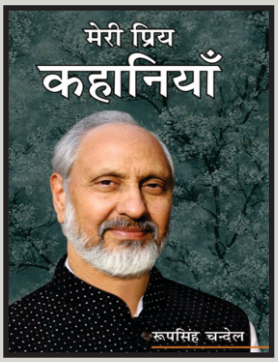

श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४,
अशोक नगर, शाहदरा,दिल्ली-११००९३.
e-mail: shrisahityaprakashan@gmail.com

प्रकाशक से सीधे मंगाने पर २० प्रतिशत छूट का लाभ उठायें.

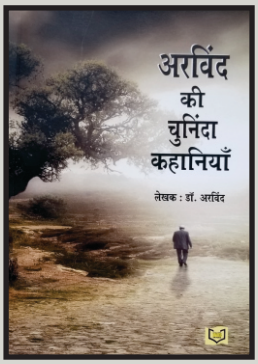

मूल्य :
२०० रु.

इंडिया नेटबुक्स प्रा. लि.,
सी-१२२, सेक्टर १९, नोएडा-२०१३०१.
e-mail: indianetbooks@gmail.com

मूल्य :
४०० रु.

श्रीसाहित्य प्रकाशन, डी-५८०, गली नं. ४,
अशोक नगर, शाहदरा,दिल्ली-११००९३.
e-mail: shrisahityaprakashan@gmail.com

amazon
Flipkart
पर भी
उपलब्ध

मूल्य :
२०० रु.

शिवना प्रकाशन,
पी. सी. लैब, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट,
बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. (म. प्र.)
e-mail: shivna.prakashan@gmail.com

पत्रिका का पता : ए-१०, बसेरा, ऑफ धिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८

Investment solutions for all your needs

ICICI Bank

Bright Career

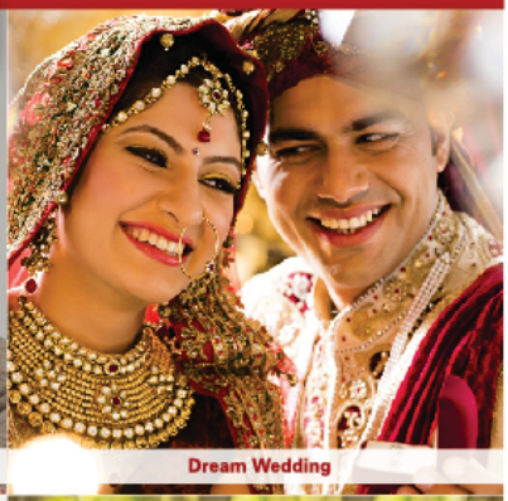

Dream Wedding

Exotic Vacation

Comfortable Retirement

♦ Life Insurance ♦ Mutual Funds

♦ Fixed Deposits ♦ PPF ♦ Recurring Deposits

For more information, please step into our Branch

Terms and Conditions apply.

मंजुश्री द्वारा संपादित व पिकॉक प्रिंट्स, बिल्डिंग नं.-1 के पीछे, अंबेडकर सर्किल, पंतनगर, घाटकोपर, मुंबई-400 075 में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, 12वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-400 071.